I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

नवंबर-दिसंबर 2024 * भाग 40 - अंक 6

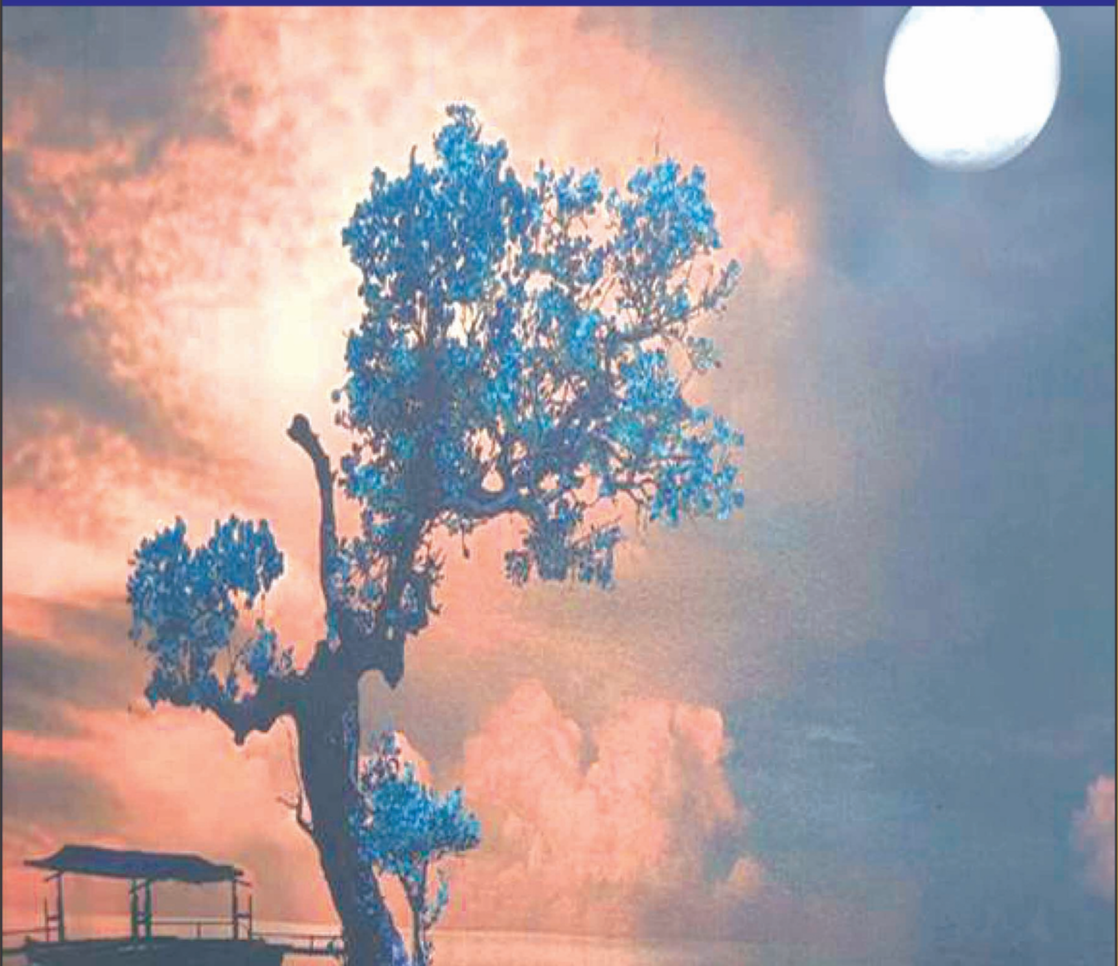

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष व प्रधान-सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध-सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

I.S.S.N. 0975-6531

वैचारिकी

वर्ष 40 : अंक 6

(धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला)

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

नवम्बर-दिसम्बर 2024 ● कार्तिक कृष्ण 15, पौष शुक्ल 1 वि. सं. 2081 ● रु. 50

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** – 03
- **सम्पादकीय** (वर्तमान में मनुष्य का आंतरिक संकट) 05
- **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, चेतना और स्वयं**– सुभाष काक 08
- **साहित्य, धर्म और विज्ञान** – प्रो. भगवानदास जैन 13
- **गौतम बुद्ध का धम्मपद** – प्रो. राजेंद्र गर्ग 18
- **स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित धर्म-दर्शन का स्वरूप** – राकेश कुमार 21
- **श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित वाणीकार** – डॉ. दविंदर के. ब्रैच 25
- **साहित्यिक क्षेत्र में किशनगढ़ का योगदान**– डॉ. सुरेश सिंह राठौड़ 30
- **पग घुंघरू बांध मीरा नाची** – डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा 35
- **संस्कृत नवलेखन में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री मंजुनाथ का योगदान** – डॉ. मंगलराम 39
- **हिन्दी सेवी साहित्यकार पं. गिरधर शर्मा 'नवरत्न'** – ललित शर्मा 42
- **हरिवंश राय बच्चन का हालावाद** – जितेंद्र निर्मोही 45
- **श्री अरविन्द का काव्य चिन्तन** – डॉ. अमरसिंह वधान 49
- **'ईदगाह' के बहाने जरूरी सवाल** – डॉ. अंजना वर्मा 52
- **काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में समाज**– डॉ. अभिलाष कुमार गोंड 56
- **हिजड़ा-किन्नर : विडम्बनाएं और समाधान** – डॉ. निशा भारद्वाज 61
- **युद्ध पीड़ितों की वेदनाओं का विकल्प** – चित्रा माली 70
- **झंडुराम मीना कृत राजा मोरध्वज की कथा** – अभिलाषा मीना 75
- **जिला चम्बा का प्रसिद्ध पिंदड़ियों का त्यौहार बसौ (वैसाखी)** – डॉ. ब्रह्मदत्त शर्मा 80
- **राजस्थान की सामंती संस्कृति में दवा-दारू** – राजेंद्र केडिया 84
- **पाठक मंच** 91

  प्राचीन शेषशायी विष्णु मूर्ति, बांधवगढ़ किला, देवी मूर्तियां और शिवलिंग, अलख भी प्रकट होता है, प्राचीन दशावतार मंदिर, सरस्वती देवी के प्राचीन मंदिर (जीतेंद्रनाथ जौहरी), दूसरा लंका दहन (डॉ. आनंद शर्मा)।
- **प्रतिस्वर** 96

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता होगा।

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल :
bvm.vaicharikі@gmail.com
वेबसाइट :
www.bharatiyavidyamandir.com

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 450/- रुपये
द्वैवार्षिक 900/- रुपये

सदस्यता शुल्क भेजने हेतु :–

Payee's Name :
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c.No. : 32030320176
Bank : State Bank of India
Branch : New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

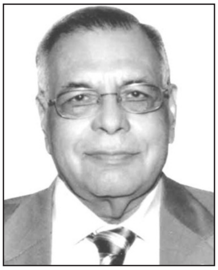

अध्यक्षीय

आदणीय पाठक वृंद ! बहुत अच्छा लग रहा है कि वैचारिकी का प्रस्तुत अंक उसके 40वें वर्ष का पूर्णांक है और 1947 में देश-विभाजन की त्रासदी से पाकिस्तान से पलायन कर बीकानेर आये हिन्दुओं के शिक्षण हेतु 1948 में एक रात्रि विद्यालय के रूप में बीकानेर में स्थापित और अभी कोलकाता में स्थित भारतीय विद्या मंदिर का 78वां वर्ष चल रहा है। इसके अंतर्गत अनेक गतिविधियां संचालित हैं जिनकी जानकारी मैं वैचारिकी के प्रबुद्ध पाठकों से साझा करना चाहता हूं जो निम्नलिखित हैं–

शिक्षण– बीकानेर में लगभग 60 वर्ष पूर्व स्थापित राजस्थान बाल भारती अभी गिरधारदास मूंधड़ा बाल भारती और गिरधरदास मूंधड़ा उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप में संचालित हैं। 8-10 वर्षों पूर्व सरकार से आवंटित 10 एकड़ के भुखंड पर निर्मित भवन में जी.डी.एम. पब्लिक स्कूल संचालित हो रहा है जिसमें अंग्रेजी माध्यम से 10वीं कक्षा तक की शिक्षा दी जा रही है। आगे यहां 11वीं और 12वीं कक्षाएं भी शीघ्र प्रारम्भ करने की योजना है। इन विद्यालयों में सेवा-भाव से नाम मात्र के शुल्क पर विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जाती है।

उद्यमिता प्रशिक्षण– भारतवर्ष में परम्परा रही है कि पिता से पुत्र को उद्यम का प्रशिक्षण मिलता था। लेकिन हाल के वर्षों में यह परंपरा टूटने लगी है। देश के विकास के साथ प्रशिक्षित कर्मियों का अभाव होने के कारण स्किल्ड वर्कर्स (दक्ष कर्मियों) की कमी हो दूर करने के लिए भारतीय विद्या मन्दिर ने सिम्पलेक्स इंफ्रास्ट्रक्चर्स लि. कोलकाता के सहयोग से निर्माण कार्य में संलग्न साधारण कर्मियों को विशेष प्रकार के तकनीकी उद्यमों का प्रशिक्षण प्रदान करना प्रारंभ किया गया है। इसके अंतर्गत कारपेन्टरी, मशीनरी, वेल्डिंग, प्लम्बिंग, इलेक्ट्रीशियन, गार्डेनिंग आदि का व्यावहारिक प्रशिक्षण, जिस स्थान पर कार्य होता है, वहीं पर दिया जाता है। इन प्रशिक्षणार्थियों की प्रशिक्षण के उपरांत परीक्षा ली जाती है और उन्हें प्रमाण-पत्र भी दिया जाता है। ये प्रशिक्षित कर्मी किसी कंपनी में भी काम कर सकते हैं अथवा अपने गांव या मोहल्ले में भी स्वयं का कार्य कर सकते हैं। भारतीय विद्या मन्दिर ने अभी तक करीब 75 हजार युवाओं को प्रशिक्षित किया है। इसके अलावा जो प्रशिक्षण प्रदान करते हैं ऐसे Trainers (प्रशिक्षकों) को भी प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे कि देश में सर्टिफाइड ट्रेनर उपलब्ध रहें। इन कर्मियों के लिए सुपरवाइजर की आवश्यकता होती है, इनके काम की देख-रेख के लिए। भारतीय विद्या मन्दिर Supervisory Development Program भी चलाता है। हमारे इंजीनियर्स अभियांत्रिकी की सैद्धांतिक शिक्षा इंजीनियरिंग कॉलेज से लेकर आते हैं, लेकिन उन्हें जमीनी कार्य का अनुभव नहीं होता है। अतः इंजीनियर्स को भी Applied Training दी जाती है। हमने KIIT University

Odisha के साथ इस Applied Technology का 3 साल तक M. Tech का प्रशिक्षण भी दिया है। अब समस्त शाखाओं को एक नया स्वरूप और नियमितता देने के लिए 'भारतीय विद्या मन्दिर इंस्टीट्यूट ऑफ अप्लाइड टेक्नोलॉजी' आरंभ करने का विचार है। इस इंस्टीट्यूट में उद्यमियों, सुपरवाइजरों और इंजीनियरों को प्रशिक्षण और प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे। इसमें विभिन्न प्रकार के ट्रेड्स की शिक्षा दी जायेगी।

संगीत प्रशिक्षण– संस्था ने 3 संगीत विद्यालयों की स्थापना की है : *(1) पं. जसराज संगीत विद्यालय, मुम्बई-* यहां पर संगीतमार्तण्ड पं. जसराजजी के शिष्य रतन मोहन शर्मा प्रशिक्षण देते हैं। 100 से ऊपर बच्चे शास्त्रीय संगीत शिक्षा का लाभ ले चुके हैं। यह संगीत विद्यालय पिछले 8-10 वर्षों से कार्यरत है। *(2) पं. जसराज संगीत विद्यालय, कोलकाता* की 2024 में स्थापना हुई। यहां पर जसराजजी के शिष्य श्री सप्तर्षि चक्रवर्ती प्रशिक्षण दे रहे हैं। यह विद्यालय 10, चौरंगी रोड में भारतीय संस्कृति संसद के सहयोग से संचालित है। *(3) श्री मदनमोहन संगीत विद्यालय, बीकानेर-* इस विद्यालय की स्थापना बीकानेर में की गई है। यहां पर पं. नारायणदास रंगा प्रशिक्षण देते हैं। हवेली संगीत का यह प्रशिक्षण प्रायः ठाकुर मदनमोहनलालजी मंदिर के प्रांगण में ही दिया जा रहा है।

पत्रिका-प्रकाशन–1950 के दशक में भारतीय विद्या मन्दिर के अंतर्गत भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर शोधकार्य हेतु भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान की स्थापना हुई। इस संस्था के अंतर्गत एक त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'वैचारिकी' आरंभ की गई। इसका संपादन श्री सत्यनारायण पारीक, डॉ. मनोहर शर्मा, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त तथा पं. अक्षयचंद्र शर्मा के पश्चात पिछले 30 वर्षों से डॉ. बाबूलाल शर्मा कर रहे हैं। आज का जमाना ई-बुक्स और मैगजीन्स का हो गया है अतः भारतीय विद्या मन्दिर एक ई-मैगजीन का प्रकाशन आरंभ करने जा रहा है, इसका दायित्व श्री प्रियंकर पालीवाल को दिया गया है।

पुस्तक-प्रकाशन– भारतीय विद्या मन्दिर भारतीय संस्कृति के विभिन्न विषयों पर मूर्धन्य विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों का प्रकाशन करता आ रहा है। पिछले 40 वर्षों से पुस्तक प्रकाशन का कार्य जारी है और इस समय भी प्रति वर्ष 8-10 पुस्तकें प्रकशित होती हैं। यह प्रकाशन कार्य पहले डॉ. बाबूलाल शर्मा के संयोजन में होता था, उनके इससे उपराम हो जाने पर अब श्री शंकरलाल सोमानी के संयोजन में हो रहा है। भारतीय विद्या मन्दिर से अब तक 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

व्याख्यान– हमारे यहां निरंतर सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं वैज्ञानिक विषयों पर व्याख्यान मूर्धन्य विद्वानों द्वारा दिये जाते हैं। व्याख्यान जूम और यू-ट्यूब के माध्यम से देश और विदेशों में जिज्ञासु श्रोताओं तक भी पहुंच रहे हैं। बाद में इन व्याख्यानों को हमारी ई-मैगजीन एवं द्वैमासिक शोध पत्रिका 'वैचारिकी' में स्थान दिया जायेगा। यदि उचित समझा गया तो इन्हें पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया जायेगा। पुष्टिमार्ग एवं वल्लभ दर्शन पर पूज्य श्री मिलनकुमारजी द्वारा व्याख्यान/प्रवचन का आयोजन किया जा रहा है। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के द्वारा विभिन्न वैष्णवों को अलग-अलग समय पर पुष्टिमार्गीय सिद्धातों को समझाने के लिए जो छोटे-छोटे स्तोत्र ग्रंथ रचे गये हैं, उन पर जूम एवं यू-ट्यूब के माध्यम से निरंतर व्याख्यान आयोजित हो रहे हैं। इससे वैष्णवधर्मियों एवं अन्य जिज्ञासु श्रोताओं को लाभ पहुंच रहा है। हमें पुराणों की विषयवस्तु के संबंध में आज भी बहुत कम ज्ञान है। भागवत पुराण को तो लोग फिर भी सुनते हैं, लेकिन अन्य पुराणों को तो बहुत कम पढ़ते या सुनते हैं। अतः पुराण-परिचय नाम से एक व्याख्यानमाला आयोजित की जा रही है। युवा भागवताचार्य डॉ. आकाश शर्मा इस व्याख्यानमाला के अंतर्गत विभिन्न पुराणों पर चर्चा करेंगे। ये व्याख्यान भारतीय संस्कृति संसद एवं भारतीय विद्या मन्दिर के संयुक्त प्रयास से आयोजित किए जा रहे हैं। इन्हें भी जूम और यू-ट्यूब के माध्यम से दूरस्थ लोगों तक उपलब्ध कराया जा रहा है।

संगोष्ठी/सेमिनार– संस्था द्वारा विभिन्न विषयों को लेकर स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन शुरू से ही होता आया है। अभी इसमें कुछ और आयाम जोड़कर अलग-अलग विषयों पर वर्ष में 2-3 सेमिनार आयोजित कराने का विचार है। जैसे हाल ही में भक्ति वेदान्त इंस्टीट्यूट के सहयोग से... ***(क्रमशः पृष्ठ 83 पर)***

सम्पादकीय

वर्तमान में मनुष्य का आंतरिक संकट

तीव्र संघर्ष, आंतरिक विद्रोह और संदेह के इस वर्तमान युग में शांति, प्रेम, व्यवस्था और जीवन के स्थान पर आज अशांति, युद्ध, घृणा, अव्यवस्था और बदलते हुए सामाजिक परिवेश ने मनुष्य को आक्रांत कर रखा है। आज मनुष्य उस खरगोश जैसा हो गया है जो एक खूबसूरत, रंग-बिरंगे सांप को देखकर मोहित खड़ा रह जाता है और उससे अपनी रक्षा का प्रबंध करना भूल जाता है। इस तरह के चित्त-विभ्रम से ग्रस्त वर्तमान पीढ़ी के संकट के कई रूप हैं जैसे– जीवन के अधारभूत मूल्यों में अविश्वास, परिवार का विघटन, विषम आर्थिक समस्याएं, राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक विशृंखलता, अंतरराष्ट्रीय तनाव, आध्यात्मिक नैतिक दिवालियापन इत्यादि। इससे मानव में जीवन-संगीत के स्वर आज भंग हैं और उसके सामने एक जटिल विकल्प उपस्थित हो गया है– महाविनाश अथवा मानव-मूल्यों की प्रतिस्थापना।

मनुष्य के इस आंतरिक संकट की जड़ें कहां हैं? बाहरी संसार में तो कदापि नहीं। ये जड़ें इंसान के अंतर्मन में ही हैं। इस संकट की तह में है इंसान के स्वभाव के साथ जुड़ा वह 'वैज्ञानिक पशुत्व' जिसकी चर्चा डार्विन ने विकासवाद के अपने बहुचर्चित सिद्धांत में की है। फलस्वरूप आज इंसान के जीवन-रंगमंच पर एक दुःखपूर्ण नाटक अभिनीत हो रहा है। यदि इस दुःखपूर्ण नाटक का यवनिका पतन कर इंसान को सुखी बनना है तो उसे इस वैज्ञानिक पशुत्व के चलते अपने अंतर्मन में खुदी खाइयों को पाटना होगा और इसके लिए उसे अपनी खाइयों को पहले पहचानना होगा।

एक बड़ी खाई है– साधन का ज्ञान, साध्य के विषय में अज्ञान अथवा स्वार्थांध ज्ञान। आज के इंसान का जीवन उस नौका के समान है जो बिना पतवार के संदेह और अनिश्चितता के सागर में चक्कर लगा रही है। आज का इंसान हर किसी रास्ते पर चल पड़ता है। उसे यह नहीं मालूम होता कि वह कहां जा रहा है या उसे कहां पहुंचना है? पाल वंटन ने एक बार ठीक कहा था– *नवयुवकों के जीवन के सारे लंगर खो गए हैं और वे भटकती हुई भावनाओं के सागर में चक्कर काट रहे हैं। उसके बुजुर्गों के यौवनावस्था के सपनों को डरावने चोर 'समय' ने ठग लिया है।* अतः प्रत्येक के अंतर में एक रहस्यमय अवसाद छिपकर बैठ गया है।

सच तो यह है कि आज के इंसान के सामने प्राचीन आदर्शों के खंडहर बिखरे पड़े हैं। जबकि वह अभी तक नए आदर्शों अथवा जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा नहीं कर पाया है। पद प्रतिष्ठा, शक्ति तथा भौतिक सुखों जैसे आदर्शों के लिए वह हर समय प्रयत्न करता है और संसार में संघर्ष, शोषण, शक्तिहीनता और युद्ध के बीज बोता रहता है। प्रकृति पर उसने विजय

प्राप्त कर ली है (अथवा इसका वहम पाल लिया है) और विज्ञान की शक्ति के रूप में उसके पास मानव-कल्याण का अचूक साधन है। परन्तु वह तो इससे ऐसा खिलवाड़ कर रहा है जैसे कोई शिशु अग्नि से खेलने लगता है।

आज के इंसान के अंतर्मन की एक और खाई है– उसका विशृंखल व्यक्तित्व। साध्य के विषय में अज्ञान ने इंसान के व्यक्तित्व की त्रिमूर्ति– शारीरिक, मानसिक और आत्मिक को पूरी तरह से विशृंखल कर दिया है। नित्यप्रति हमको ऐसे लोग मिल जाते हैं जो शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ हैं, तो कई मानसिक दृष्टि से अव्यवस्थित हैं। कुछ आत्मिक दृष्टि से प्रगति कर भी लेते हैं तो उनमें सामाजिक कल्याण की भावना का अभाव होता है। विशृंखल व्यक्तित्व बड़ी ही मूर्खतापूर्ण स्थिति है, पर है और है यह एक भयंकर वास्तविकता। आज इसके परिणाम भी खूब दिखलाई दे रहे हैं जैसे मूर्खतापूर्ण मुस्कान, चाटुकारिता, चालाकी, येन-केन-प्रकारेण स्वार्थ-साधना। फलस्वरूप विश्वास के स्थान पर संदेह, सहायता के स्थान पर धोखाधड़ी, आचार-विचार में दुर्बलता इत्यादि। ली यू टाग ने इन्हीं को देखकर कहा था- *वास्तव में यह संसार विषादपूर्ण है जिसमें हमारे पास ज्ञान रहित शिक्षा, प्रशंसारहित आलोचना, प्रेमरहित सौंदर्य, तीव्रता रहित सत्य, दया रहित धर्म और हृदयहीनतापूर्ण सहानुभूति है।* इसी से आज के इंसान का व्यक्तित्व संतुलन रहित है।

वास्तव में जब मानव के व्यक्तित्व में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तो उसकी प्रकृति में एकता के स्थान पर अनेकता की भावना घुस जाती है। सारी भावनाओं का वर्गीकरण दो ही भागों में होता है– एक जो जोड़े, दूसरा जो तोड़े। जोड़ने वाला प्रेम और तोड़नेवाला घृणा। पुण्य का दूसरा नाम एकता और पाप का दूसरा रूप अनेकता है।

प्रेम एकता और सृष्टि की क्रियात्मकता की आधारशिला है। लेकिन आज इसका पूर्ण अभाव है। आज तो भय, चिन्ता, संदेह और संघर्ष को उत्पन्न करने वाली घृणा का साम्राज्य है। बर्ट्रेंड रसेल के अनुसार *आज के इंसान के संकट और क्लेश का कारण यही है कि न तो उसके अंतर्मन में ऐक्य की भावना (प्रेम) है और न ही उसके व्यक्तित्व का समाज से तादात्म्य स्थापित हो रहा है।* इसी सबका नतीजा है कि भाषा की समस्याएं हैं, साम्प्रदायिक संघर्ष हैं और विश्व-व्यापी शीत और सक्रिय युद्ध हो रहे हैं। सच तो यह है कि घृणा की प्रत्येक लहर के जन्मते ही प्रेम की अकाल मृत्यु हो जाती है।

सर्वत्र विघटन की स्थिति ने आदमी के अंतर्मन में खाइयों को और ज्यादा गहरा कर दिया है। इससे वह अपने साधनों को ही साध्य समझ बैठता है और उन गलत साध्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति का अपव्यय करता रहता है। इसका एक बड़ा उदाहरण है– धन। धन साधन है– सामाजिक सुरक्षा, जीवन-निर्वाह, शिक्षा आदि का। लेकिन आज के मानव ने इसे साध्य बना लिया है और इसका नतीजा हुआ है सामाजिक पतन। रोगी मर रहा है और डाक्टर फीस ले रहा है। वकील जानता है कि अभियुक्त हत्यारा है, किन्तु वह उसकी पैरवी कर रहा है। व्यापारी खाद्य-पदार्थों में मिलावट कर रहा है, हालांकि वह जानता है कि वह अपने बच्चों और अपने भाइयों के साथ खिलवाड़ कर रहा है। इस 'चंचला लक्ष्मी' को साधन की जगह साध्य मानकर, हम भूल गए हैं कि मानव की मानवता की कसौटी है- 'वह क्या है' न कि 'उसके पास क्या है'!

इन सभी खाइयों ने मिलकर एक और खाई को जन्माया है, वह है– कथनी-करनी में अंतर। अंतर्मन के इस तीव्र संकट को लेकर केवल प्रोपेगेंडिस्ट (प्रचारक) ही जन्म सकते हैं, प्रोफेट्स (देवता) नहीं। आज हरेक, चाहे वह नेता हो या मंत्री, पत्रकार हो या वकील, जनता के ऊपर भाषण का न्याग्रा प्रपात उड़ेलते रहते हैं, परन्तु इनमें से कितने हैं जो अपने कथनों को अपने जीवन में लागू करते हैं, यह तो भगवान ही जानें। आज ऐसे नेता और शाहों की कमी नहीं जो शानदार मर्सिडीज में बैठकर आर्थिक विषमताओं के विरुद्ध जनता को भड़काते हैं और कहते हैं– अमीरों की सम्मत्ति खर्च कर देनी चाहिए और जब क्रुद्ध जनता पहले उसी की मर्सिडीज को नष्ट करने लगती है तो वे मिमियाकर कहते हैं– अरे भई, यह तो मेरी है।

यदि हममें से जो बहुत से जिस सिद्धांत को प्रतिपादित करते हैं, उसे ही अपने जीवन में भी क्रियान्वित कर डालें

तो हममें से कितने ही गांधी और लिंकन बन सकते हैं। वर्तमान में निरस्त्रीकरण का सिद्धांत खूब प्रतिपादित किया जा रहा है, परन्तु निरस्त्रीकरण कैसे संभव हो सकता है, जब तक आदमी अपने आपको निकृष्ट भावनाओं के अस्त्रों से निरस्त्र न कर ले तब तक निरस्त्रीकरण कहां? सस्त्रीकरण हो रहा है। रूस-यूक्रेन युद्ध, मध्य एशिया में चल रहे युद्धोन्माद, दक्षिण एशिया में युद्ध की चिंगारियों में एक-से-एक भयंकर अस्त्रों की जानकारी मिल रही है। लगा हुआ है आदमी अपनी पूरी मेधा से, अस्त्रों के निर्माण में, तंज यह है कि इसे विकास-समृद्धि बताया जा रहा है अर्थात इनसे वह समृद्धियों को जीतकर अपना बना लेगा। अस्त्र का मतलब ही संहार है। अस्त्र बन गया है तो जब-कभी संहार करेगा। चेखव ने कहानी के शिल्प के प्रसंग में कहा था कि यदि तुमने कहानी में लिख दिया कि कमरे में बंदूक लटकी हुई थी, तो जब कभी भी उसका चलना जरूरी है। तो अस्त्र का निर्माण हो गया है तो वह चलेगा और संहार करेगा। विडम्बना यह है कि उसका निर्माण कर रहा है आदमी, आदमी के संहार के लिए।

मनुष्य की स्वार्थजनित दुर्भावनाओं का संहार अस्त्रों से संभव नहीं, वह तो केवल उसके मन-मस्तिष्क में धर्म, जाति, क्षेत्र, स्वार्थ पूर्ति, लालच, अहंकार से निर्मित खाइयों को जीवन-मूल्यों द्वारा पाटने से ही संभव है। अंतर्मन की ये खाइयां ही आज के इंसान का आंतरिक संकट है। लगता है मानव-जीवन का बसंत बीत गया है और अब पतझड़ चल रहा है, रात्रि के दानवों (असत्य, घृणा, संघर्ष, असहयोग, अशांति, परपीड़ा) ने इंसान की जिन्दगी को अपनी क्रीड़ास्थली बना लिया है। यदि हम चाहते हैं कि हमें इन दानवों से मुक्ति मिले तो हमें स्वयं में प्रयत्न करना होगा। कोई भी व्यक्ति दूसरों के गुणों से गुणी नहीं बन सकता। कोई भी इंसान दूसरों की महानता और प्रगति से खुद महान नहीं बन सकता, या प्रगति कर सकता है। इसके लिए उसे खुद को महान बनाना होगा। यदि प्रत्येक मानव अपने अंतर्मन में खुदी खाइयों को पाट सके, अपने व्यक्तित्व का सही दिशा में सर्वांगीण विकास कर सके, तो एक नवीन संसार और 'नवमानव' का स्वप्न, मरीचिका न रह जायेगा।

आज मानव का कल्याण इसी में है कि वह अपनी जीवन-यात्रा का लक्ष्य निश्चित कर सार्वजनिक कल्याण और सार्वभौमिक सुख को ही साध्य बनाने का यत्न करे, हमारे शास्त्र भी कहते हैं कि 'भूमा' (विराटता अर्थात उदारता) ही वास्तविक सुख है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम इस वास्तविकता को आदर्श का रूप दें और फिर इस आदर्श को प्राप्त कर लें। यदि आज का मानव शांति चाहता है तो उसे अपने हृदय को टटोलना चाहिए और शिवजी की भांति घृणा, स्वार्थ, अहंकार, लालच और संघर्ष के विष को पीकर, सत्यनिष्ठा, जीवनमूल्यों, उदारता, प्रेम तथा सहानुभूति के अमृत को बांटना प्रारम्भ कर देना चाहिए। इस क्रम में अमेरिकी हास्य-लेखक एवं उपन्यासकार मार्क ट्वेन के कथन स्मरणीय हैं– *यदि आप सच बोलते हैं, तो आपको कुछ भी याद रखने की जरूरत नहीं है। सत्य कल्पना से अदभुत होता है, ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कल्पना को संभावनाओं से बंधे रहना पड़ता है, सत्य को नहीं। अच्छे दोस्त, अच्छी किताबें और एक शांत अंतर्मन ही आदर्श जीवन है। कभी भी कल पर उस काम को मत टालें, जिसे आप परसों भी कर सकते हैं। कभी भी उन लोगों को सच न बताएं जो इसके योग्य नहीं हैं। उन लोगों से दूर रहें जो आपके सद आदर्शों का मजाक उड़ाते हैं। महान लोग आपको महसूस कराते हैं कि आप भी महान बन सकते हैं।*

मनुष्य के इस आंतरिक संकट के युग में मनुष्यता की परीक्षा है, क्योंकि जीवन मुश्किल में है, परन्तु हमें हतोत्साहित नहीं होकर इसमें सफल होना ही चाहिए। विख्यात वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग कहते हैं कि *जब भी जीवन आपको मुश्किल लगे, तो वहां हमेशा कुछ न कुछ ऐसा भी होगा, जो आप कर सकते हैं और उसमें सफलता भी हासिल कर सकते हैं।*

– डॉ. बाबूलाल शर्मा

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, चेतना और स्वयं

सुभाष काक

1. कई वैज्ञानिक और इंजीनियर हैं जो मानते हैं कि कंप्यूटर अंततः जागरूक हो जाएगा। कंप्यूटर वैज्ञानिक बर्नाड बार्स और स्टेन फ्रैंकलिन ने 2009 में लिखा था, "चेतना का उत्पादन-मशीन पर चलने वाले एल्गोरिदम द्वारा किया जा सकता है।" अक्टूबर 2017 में एमआईटी टेक्नोलॉजी रिव्यू ने कहा कि यह बहुत दूर के भविष्य में भी हो सकता है। इस तथ्य को देखते हुए कि जैविक विकास तकनीकी विकास की तुलना में धीमा है, इस बात का डर है कि मनुष्य संवेदनशील मशीनों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ होंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि वैज्ञानिक और तकनीकी जगत में कई प्रमुख आवाजें दावा कर रही हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानवता को तबाही की ओर ले जा रही है। स्टीफन हॉकिंग ने 2014 में बीबीसी को बताया, "मुझे लगता है कि पूर्ण कृत्रिम बुद्धि के विकास से मानव जाति का अंत हो सकता है।" 2017 में नेशनल गवर्नर्स एसोसिएशन से बात करते हुए, टेस्ला के सीईओ एलोन मस्क ने कहा कि 'एआई तकनीक मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए एक मौलिक जोखिम है।' तो क्या चल रहा है? क्या बॉडी-मशीन में 'स्वयं के भूत' को गणना के संदर्भ में पूरी तरह से समझाया जा सकता है? क्या यह वास्तव में अपरिहार्य है कि जब तक एआई को सख्ती से नियंत्रित नहीं किया जाता है तब तक मशीनें जागरूक हो जाएंगी? कुछ भविष्यवादी और विज्ञान-कथा लेखक एआई और दिमाग के बीच एक प्रकार के विवाह की कल्पना कर रहे हैं, ताकि किसी दिन, प्रौद्योगिकी मनुष्यों के लिए 'मरणोपरांत' बनना संभव बना दे, मानव स्थिति की सीमाओं को पार कर जाए। ऐसे अन्य लोग भी हैं जो मानते हैं कि सभी वैज्ञानिक तथ्यों को समझने का एकमात्र तरीका वास्तविकता को अनुकरण के रूप में लेना है, एक ऐसा विचार जिसे हॉलीवुड ने द मैट्रिक्स और वॉच गेमर जैसी फिल्मों में इस्तेमाल किया था। एक अन्य परिदृश्य यह कल्पना करना है कि एक बार जब मनुष्य मस्तिष्क को पूरी तरह से चित्रित करना सीख जाते हैं, तो वे इस प्रक्रिया में खुद को कंप्यूटर में कॉपी करने में सक्षम होंगे, अपने अनुकरण या ईएमएस बना सकते हैं। इस तरह के ईएमएस को आसानी से दोहराया जा सकता है और इसलिए वे वास्तविक लोगों को जल्दी से पछाड़ देंगे।

किसी भी घटना में, अगर और जब कृत्रिम बुद्धि सचेत मशीनों में विकसित होती है, तो निश्चित रूप से दुनिया का अंत होगा जैसा कि हम जानते हैं। सचेत मशीनें सबसे अधिक संभावना से दुनिया पर कब्जा कर लेंगी और मनुष्यों को गुलाम बना लेंगी, यदि बदतर नहीं हैं। इस संभावना को देखते हुए, मशीनी चेतना की संभावना इस समय मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। कुछ लोग मशीनों में 'चेतना' के विचार पर चुटकी ले सकते हैं। यदि हम इसे 'जागरूकता' और 'व्यक्तित्व' के अर्थ में उपयोग करने के लिए सहमत हैं, तो इसके साथ मशीनों के पास उन मशीनों की तुलना में अधिक स्वायत्तता होगी जिनके पास इसकी कमी है और इसलिए, वे संभावित रूप से अधिकांश नौकरियों में मनुष्यों की जगह ले सकती हैं और इससे नैतिकता की अघुलनशील समस्याएं हो

सकती हैं। भले ही प्रत्येक मानव को भोजन, आश्रय और मनोरंजन के लिए एक सार्वभौमिक बुनियादी आय प्रदान की जाए, जैसा कि कई अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तावित किया जा रहा है, परन्तु मशीनें हमें अकेला छोड़ देती हैं- यह एक डायस्टोपिक जीवन होगा।

कंप्यूटर में चेतना के विकास के विचार के समर्थन में कई तर्क हैं। चूँकि हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि मस्तिष्क एक मशीन है, इसलिए उपयुक्त वास्तुकला वाली अन्य मशीनों को भी चेतना प्राप्त हो सकती है। कुछ लोग आपत्ति करते हैं और कहते हैं कि मस्तिष्क, शास्त्रीय कंप्यूटरों के विपरीत, तंत्रिका सर्किटरी में गहराई से क्वांटम -संचालन करते हैं। हालांकि, कोई भी भविष्य के क्वांटम कंप्यूटरों को पोस्ट कर सकता है जो सभी संभावित तरीकों से मस्तिष्क के व्यवहार की नकल करते हैं।

कई ऐसे संज्ञानात्मक कार्य हैं जिनके दौरान एजेंट में व्यक्तिपरक जागरूकता की भावना नहीं होती है। इस तरह के संज्ञानात्मक कार्य भी मशीन द्वारा किए जा रहे हैं, और ये तेजी से और अधिक विश्वसनीयता के साथ करती हैं। जागरूकता गणना से परे है, क्योंकि जो हो रहा है इसका जायजा लेने के लिए मस्तिष्क रूपी मशीन में प्रसंस्करण को रोकने की क्षमता है। 1936 में एलन ट्यूरिंग दवारा इस तरह की रुकावट की समस्या पर विचार किया गया था और उन्होंने दिखाया कि कोई भी एल्गोरिथ्म यह निर्धारित नहीं कर सकता है कि एक मनमाना कंप्यूटर प्रोग्राम रुक जाएगा या हमेशा के लिए चलता रहेगा। यदि संगणनीयता के दृष्टिकोण से बेतरतीब ढंग से चुने गए समय पर एक मनमाना इनपुट को रोकना असंभव है, और जागरूक दिमाग ऐसा करता है, तो कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि चेतना गणना योग्य नहीं है।

2. हमारे अंतर्ज्ञान में, चेतना एक ऐसी श्रेणी है जो भौतिक वास्तविकता से दोहरी है। हम अपने मन में वास्तविकता को समझते हैं न कि स्थान, समय और पदार्थ के संदर्भ में। यह अनुभव मस्तिष्क की स्थिति के आधार पर भिन्न होता है और कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अन्य-मनुष्य इसे हमसे अलग तरह से अनुभव करते हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि हमारे सचेत अनुभव में हम हमेशा भौतिक दुनिया से बाहर होते हैं और अपने शरीर से अलग खुद को देखते हैं। वैज्ञानिक सिद्धांत में भी, उदाहरण के लिए शास्त्रीय यांत्रिकी में, पर्यवेक्षक प्रणाली से दूर है, भले ही सिद्धांत के भीतर पर्यवेक्षक की कोई व्याख्या नहीं है।

इस सवाल का जवाब देने में मदद करने के लिए कि क्या मशीनें सचेत हो जाएंगी, हमें वास्तविकता की प्रकृति के सवाल पर वापस जाना चाहिए। क्या दुनिया एक मशीन है जिसका वर्णन उसके भागों और उनके अंतर्संबंधों द्वारा किया गया है, या यह मौलिक रूप से ज्ञान है? पहले दृश्य को ओन्टिक (ऑन्टोलॉजिकल, जो संरचना से संबंधित है) कहा जाता है, और दूसरे को एपिस्टेमिक (एपिस्टेमोलॉजिकल जो ज्ञान से संबंधित है) कहा जाता है। दर्शनशास्त्र में, ये दो अलग-अलग स्कूलों की स्थितियां हैं, एक यह मानते हुए कि यह वास्तविकता है, और दूसरा यह कि यह बन रहा है। दुनिया के होने की अवधारणा भौतिकवाद से जुड़ी है, जबकि इसके बनने की अवधारणा पर्यवेक्षकों को अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है।

पिछले साल, मैं एसआरआई इंटरनेशनल, मेनलो पार्क दवारा संयुक्त राज्य अमेरिका और कैम्ब्रिज, यूके में विभिन्न स्थानों पर आयोजित सप्ताह भर की कार्यशालाओं का हिस्सा था, इस सवाल पर विचार करने के लिए कि क्या भविष्य में मशीनें जागरूक हो जाएंगी। इन कार्यशालाओं में लगभग तीस प्रतिभागियों में कंप्यूटर वैज्ञानिक, भौतिक विज्ञानी, न्यूरोसाइंटिस्ट, दार्शनिक और रणनीतिक विचारक शामिल थे। हमने मशीनी प्रतिमान में स्वार्थ की अवधारणा के साथ कई कठिनाइयों का जायजा लिया। मानव तंत्रिका विज्ञान मस्तिष्क और मन की पहचान के सिद्धांत को स्वीकार करता है। इस दृष्टिकोण में मन अंतर्संबंधों की जटिलता से उत्पन्न होता है और उसके व्यवहार को पूरी तरह से संबंधित मस्तिष्क के कार्य द्वारा वर्णित किया जाना चाहिए, जिसमें व्यक्ति की एजेंसी के लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन चेतना का कोई विशिष्ट तंत्रिका विज्ञान नहीं पाया गया है और चेतना को स्थानीयकृत नहीं किया जा सकता है।

मनुष्य का स्वार्थ, उसे स्वायत्तता और स्वतंत्रता से संबंधित विरोधाभासों की ओर ले जाता है। मनुष्य इस विचार को अस्वीकार करते हैं कि वे केवल मशीन हैं,

फिर भी वे अक्सर अपने 'स्व' की तुलना शरीर की मशीनरी से करते हैं। दूसरी ओर, मानव की आत्म-छवि शरीर की है, साथ में क्षणिक विचार भी हैं, जिनके भीतर 'मैं' को अवलोकन द्वारा देखा जाता है। हम किसी की यादों और रिश्तों से संबंधित 'आत्मकथात्मक आत्म' और क्षणिक वर्तमान में निहित 'मूल स्व' के बीच अंतर करते हैं। 'आत्मकथात्मक आत्म' आंशिक रूप से किसी की कल्पना का परिणाम है क्योंकि यह अतीत की व्याख्या है और इसमें भविष्य के लिए आशाएं शामिल हैं। 'कोर सेल्फ' मायावी है; यह वह प्रकाश है जो आसपास की चीजों पर चमकता है और समय व स्थान में उनके साथ जुड़ता है। बेंजामिन लिबेट के प्रयोगों ने दिखाया कि कैसे किसी विषय द्वारा लिए गए निर्णय पहले अवचेतन स्तर पर उत्पन्न होते हैं और उसके बाद ही सचेत निर्णय में अनुवादित होते हैं। घटना के पूर्वव्यापी दृष्टिकोण से व्यक्ति इस विश्वास पर आता है कि निर्णय उसकी इच्छा के आदेश पर हुआ था। लिबेट के प्रयोग में विषय अथवा व्यक्ति द्वारा कलाई को फड़काने के लिए एक यादृच्छिक क्षण चुनना था, तब मोटर कॉर्टेक्स में संबंधित गतिविधि को मापा गया था। लिबेट ने पाया कि विषय द्वारा सचेत निर्णय लेने के लिए अचेतन मस्तिष्क कि गतिविधि लगभग आधा सेकेंड पहले शुरू हुई जब विषय ने सचेत रूप से महसूस किया कि उसने अपना निर्णय ले लिया है। लेकिन इसे पीछे हटने के उदाहरण के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए; बल्कि यह चेतन मन के संचालन में एक अंतराल का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें मन द्वारा वास्तविकता का निर्माण होता है।

कार्यशालाओं में भाग लेने वालों ने सहमति व्यक्त की कि भविष्य की एआई-मशीनें सभी संज्ञानात्मक कार्यों का अनुकरण करने में सक्षम होंगी और सभी प्रकार की नौकरियों में मनुष्यों को बेदखल करने में सक्षम होंगी। लेकिन वे इस बात पर बंटे हुए थे कि क्या मशीनें इंसानों की तरह जागरूक होंगी। विभाजन इस विचार पर आधारित निकला कि चेतना की घटना दो अलग-अलग किस्मों में आ सकती है जिसे मैं लिटिल-सी और बिग-सी कहता हूं। अगर चेतना के लिए सब कुछ लिटिल-सी है तो मशीनें जागरूक होंगी। लेकिन अगर मानव चेतना वास्तव में बिग-सी है, तो मशीनें कम पड़ जाएंगी। तो चेतना की ये दो अवधारणाएँ क्या हैं? लिटिल-सी मस्तिष्कीय प्रक्रियाओं की जटिलता से निकलने वाली चेतना है। यह उसी अर्थ में उभरती है जैसे जीव विज्ञान रसायन विज्ञान पर उभरता है। जो फिर भौतिकी पर उभरता है। यह उस विचार के समान है, जिसे आम तौर पर बौद्ध धर्म का ठहराया जाता है, कि चेतना जमीन पर उत्पन्न होती है जो कि शून्यता है। इस दृष्टि से, यदि पर्याप्त रूप से जटिल मशीन, मस्तिष्कीय प्रक्रियाओं का अनुकरण करने में सक्षम है, तो वह सचेतन होगी।

दूसरी ओर, बिग-सी मानता है कि चेतना कुछ ऐसी है जो भौतिक वास्तविकता से अलग है। दार्शनिक रूप से, यह वेदांत की स्थिति है, जिसमें मानसिक और शारीरिक घटनाएं एक ही वास्तविकता के दो पहलू हैं, जैसे एक सिक्के के दो पहलू (बुद्ध ने अपनी मृत्युशय्या पर घोषणा की थी कि वे वैदिक स्थिति से सहमत हैं)। क्वांटम सिद्धांत के अग्रदूतों ने सिद्धांत की गणितीय औपचारिकता को समझने के लिए तथाकथित रूढ़िवादी कोपेनहेगन व्याख्या (सीआई) का इस्तेमाल किया, जहां अंतर्निहित विचार बिग-सी का है। सीआई विभिन्न स्तरों पर पूरकता को मानता है और इसमें पदार्थ और मन या वस्तु और विषय का द्वैत शामिल है। चेतना के दो विचारों की और जांच करने के लिए इसकी रचनात्मकता पर वैज्ञानिक प्रयोग किए जा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रचनात्मक क्षण जानबूझकर गणना के अंत में नहीं है। रचनात्मकता के विशिष्ट कृत्यों से पहले सपनों या दर्शन के कई आत्मकथात्मक खाते हैं। इसके दो प्रसिद्ध उदाहरण एलियास होवे द्वारा 1845 में आधुनिक सिलाई मशीन की डिजाइन और अगस्त केकुले की 1862 में बेंजीन की संरचना की खोज हैं। स्व-शिक्षित होने के लिए प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन, जिनकी मृत्यु 1920 में 32 वर्ष की आयु में हुई थी, बड़ी-सी चेतना के पक्ष में प्रमाण हैं। उनकी लंबे समय से भूली हुई नोटबुक, जो 1988 में प्रकाशित हुई थी, में कई हजार सूत्र हैं जो वस्तुतः उनके समय से पहले के हैं और उन्होंने नहीं लिखा कि वे उन तक कैसे पहुंचे। जब वे जीवित थे, दावा किया था कि वे सोए हुए थे तब ये सूत्र उसके सामने प्रकट हुए थे। लेकिन

पदार्थ और मन परस्पर एक दूसरे को कैसे प्रभावित कर सकते हैं? एक संभावना अवलोकन के कार्य के माध्यम से है जो क्वांटम सिद्धांत में राज्य के कार्य के पतन का कारण बनता है। यदि अवलोकन बार-बार किया जाता है, तो सिस्टम का स्थिति स्थिर हो जाएगी। इसो क्वांटम ज़ेनो इफेक्ट कहा जाता है, इसे प्रयोगशाला में प्रदर्शित किया गया है।

यहां तक कि अगर कोई रचनात्मकता के खातों को केवल संयोग के रूप में खारिज कर देता है, तो वास्तविकता की औपचारिक समझ समस्याग्रस्त हो जाती है, जब कोई जानकारी को किसी अन्य के मिश्रण में लाता है, जैसा कि आधुनिक भौतिकी में व्यापक रूप से किया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सूचना का अर्थ है कि एक दिमाग का अस्तित्व, जो भौतिक विज्ञान के दायरे से बाहर की श्रेणी में आता है। किसी भी न्यूनीकृत कार्यक्रम द्वारा सूचना या एल्ट्रापी को स्थानीय संचलन में कम नहीं किया जा सकता है। इसके लिए वैश्विक संपत्तियों से प्राप्त संकेतों के उपयोग और विकल्प बनाने की क्षमता की आवश्यकता होती है, जो बदले में एजेंसी का अर्थ है। एल्ट्रॉपी विकार को जानने का एक उपाय है और कुछ स्थितियों में तापमान द्वारा मापा जा सकता है। इस प्रकार एक ब्लैक होल से जुड़े कई अलग-अलग क्षेत्रों का निर्धारण करने के बाद, स्टीफन हॉकिंग एक संबंधित तापमान को निर्धारित करने और उससे विकिरण की बात करने में सक्षम हुए थे। लेकिन एल्ट्रापी या सूचना के तापमान को एक कण से नहीं जोड़ा जा सकता है। एक संचार में सूचना की दो चीजें शामिल होती हैं– पहला, दो पक्षों के बीच संचार की शब्दावली में समानताएं; और दूसरा, चुनाव करने की क्षमता। इस तरह सामान्य शब्दावली की आवश्यकता है जिससे पक्षों द्वारा उपयोग किए जाने वाले अंतर्निहित अमूर्त संकेतों को साझा किया जाए, जो संचार के सामाजिक पहलुओं पर जोर देता है। क्वांटम सिद्धांत के रचनाकारों में से एक श्रोडिंगर ने क्षेत्र के कार्य की महामारी जैसी प्रकृति पर जोर दिया। वह जोर देकर कहते थे कि 'भौतिक दृष्टि से चेतना का हिसाब नहीं लगाया जा सकता है। चेतना के लिए यह बिल्कुल मौलिक है कि इसे किसी और चीज के संदर्भ में नहीं गिना जा सकता है।

चेतना के विचार के लिए न केवल चीजों के प्रति जागरूकता की आवश्यकता होती है, बल्कि इस जागरूकता की भी आवश्यकता होती है कि व्यक्ति जागरूक है। यदि जागरूकता किसी प्रकार का माप है, तो इसका एक संदर्भ होना चाहिए। यह, बदले में, दो समस्याएं उत्पन्न करता है– पहला, जागरूकता के लिए संदर्भ क्या है और दूसरा, चेतना विभिन्न संभावनाओं के बीच कैसे चुनाव करती है? जागरूकता में संदर्भ की समस्या पुरानी है। यदि हम एक एकल सार्वभौमिक, पारलौकिक चेतना को मानते हैं, तो व्यक्ति की अनुभवजन्य चेतना एक प्रक्षेपण है और इसके लिए संदर्भ सार्वभौमिक होना चाहिए। वेदांत में, व्यक्ति की अनुभवजन्य चेतना को समझाने के लिए एक ही सूर्य की उपमा है जो पानी के एक लाख विभिन्न बर्तनों में छोटे सूर्य के रूप में दिखाई देती है। यह भी प्लेटो के दृष्टिकोण के समान है जो एक गुफा में एक घृणित वस्तु का आह्वान करता है जिसे सीधे नहीं देखा जा सकता है, जिसकी दीवार पर केवल छाया पहुंचने योग्य है।

पश्चिमी दर्शन में, रैने डेसकार्टेस ने प्रस्तावित किया कि चेतना एक अभौतिक डोमेन के भीतर रहती है जिसे रेस कॉजिटन्स (विचार का क्षेत्र) कहा जाता है, जिसे भौतिक चीजों के क्षेत्र से अलग किया जाता है, जिसे रेस एक्स्टेंसा (विस्तार का क्षेत्र) कहा जाता है। उन्होंने माना कि दोनों क्षेत्र मस्तिष्क में परस्पर क्रिया करते हैं, लेकिन इस कार्टेशियन द्वैतवादी स्थिति को अब गंभीरता से नहीं लिया जाता है। दूसरी ओर, इमैनुएल कांट वैदिक परंपरा के समान एक संकल्प पर पहुंचे, यह तर्क देते हुए कि अनुभवजन्य चेतना में एक पारलौकिक चेतना (एक चेतना जो सभी विशेष अनुभवों से पहले होती है) का एक आवश्यक संदर्भ होना चाहिए। सार्वभौमिक या पारलौकिक स्थिति आम तौर पर मुख्यधारा के वैज्ञानिकों के लिए अस्वीकार्य है जो न्यूनीकरणवादी मॉडल पर जोर देते हैं।

विलियम जेम्स ने दो प्रकार के स्व के बारे में बात की : ज्ञाता के रूप में स्वयं ('मैं'), और जो स्वयं के रूप में जाना जाता है–'मैं'। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म आंशिक रूप से व्यक्तिपरक (ज्ञात के रूप में) और आंशिक रूप से उद्देश्य (जैसा कि ज्ञात है) है। वस्तुनिष्ठ स्व को इसके

तीन पहलुओं में वर्णित किया जा सकता है– भौतिक स्व, सामाजिक स्व और आध्यात्मिक स्व। कथात्मक आत्म-संदर्भ तत्काल के विपरीत है, 'मैं' को जानना के क्षणिक अनुभव की धारणा को स्वार्थ की अभिव्यक्ति के रूप में समर्थन करता है। जेम्स का मानना था कि ज्ञाता के रूप में, स्व विभिन्न मानसिक अवस्थाओं से मिलकर बना है। विचार का कोई स्थिर तत्व नहीं है और प्रत्येक धारणा सापेक्ष और प्रासंगिक है। मन की अवस्थाओं को कभी दोहराया नहीं जाता है, जबकि वस्तुएं स्थिर और असतत हो सकती हैं, विचार लगातार बदल रहा है और मानसिक अवस्थाएँ मन द्वारा किए गए विकल्पों से उत्पन्न होती हैं। जेम्स का मानना था कि विचार बहता है, और इस प्रकार वह चेतना के एक धारा के रूप में होने की बात कर सकता है। यदि किसी को चेतना के 'मैं' और 'मैं' के बीच की सीमाओं को खोजना है, तो स्वयं की 'न्यूनतम' भावना को खोजना आवश्यक हो जाता है। अंतर्ज्ञान के बारे में यह बात करना आसान है कि एक बुनियादी या आदिम कुछ है जो कि सच्चा आत्म है, और इस तरह के विश्वास के लिए सबूत प्रदान करना बहुत कठिन है। संकल्पनात्मक रूप से, कुछ स्थायी होना चाहिए– एक बिस्तर या चट्टान, चेतना की धारा के नीचे।

अनुभवजन्य पूर्व-चेतन या सचेत जागरूकता से निपटने के लिए, निम्नतम स्तर पर स्वतंत्र और वितरित तंत्रिका संरचनाओं के साथ चेतना का एक पदानुक्रमित मॉडल तैयार किया जा सकता है। विशेषताओं के बंधन की गति संचार की जटिलता और मॉड्यूल के बीच संबंधों पर निर्भर करेगी। विभिन्न स्तरों और सूचना प्रवाह की उलझी हुई प्रकृति के बीच हस्तक्षेप, धारणा की कई भ्रमों को समझाने में मदद कर सकती है। स्मृति एक ऐसा तत्व है जो संबंधित चेतना की अवस्था की प्रकृति की ओर ले जाता है। मन को यादों के पूल से चयन करना चाहिए और यह चयन सचेत रूप से नहीं किया जा सकता है और यह पिछले चेतना के क्षेत्रों की धारा और विषय की भावनात्मक स्थिति द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। यह अपेक्षा की जाती है कि कार्यकारी नियंत्रण की प्रक्रियाएं चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके अलावा, दूसरों की कीमत पर कुछ यादों का बार-बार चयन याद की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है, जिससे अवांछित यादें वापस अचेतन में धकेल दी जाती हैं। इससे तंत्र को भर दिया जा सकता है जो अवांछित घोषणात्मक यादों को जागरूकता में प्रवेश करने से रोकता है, और यह कि इस संज्ञानात्मक कार्य से अस्वीकृत यादों के स्थायी परिणाम हैं।

माइंडफुलनेस नामक अवस्था में, कार्यकारी नियंत्रण यादों को बड़ी आसानी से भरती करने में सक्षम प्रतीत होता है। कुछ वैज्ञानिक दिमागीपन को मेटा-अवेयरनेस (आत्म-जागरूकता) के रूप में व्यवहार (स्व-नियमन) को प्रभावी ढंग से संशोधित करने की क्षमता और स्वयं तथा दूसरों के बीच सकारात्मक संबंध के रूप में देखते हैं। हालाँकि जागरूकता अपने आप में सब कुछ है या कुछ भी नहीं है, चेतना की स्थिति उस डिग्री पर निर्भर करती है जिस तक जागरूकता के लिए अचेतन और स्मृति की अवस्थाएं सुलभ हैं। संवेदी आदानों से धारणा को अलग करना असंबद्ध चेतना क्षेत्र के विचार का समर्थन करता है। एक चेतन अवस्था जो व्यक्ति की विशिष्ट यादों से अलग हो जाती है, यह इंगित करती है कि ऐसी अवस्थाएँ वास्तविकता के लिए मौलिक हो सकती हैं और सत्तावादी वास्तविकता का एक हिस्सा बन सकती हैं।

भौतिकी, गणित और मस्तिष्क के क्षेत्रों में वास्तविकता के कई पहलुओं में या तो विरोधाभासी पहलू हैं या गणना योग्य नहीं हैं। इसलिए, यह मान लेना कि तर्क और गणित पर आधारित मशीनें सभी प्राकृतिक प्रणालियों का पूरी तरह से अनुकरण कर सकती हैं, गलत है। दूसरे शब्दों में कहें तो मशीनों द्वारा वर्णित वास्तविकता एक प्रकार से प्राकृतिक प्रणालियों से भिन्न हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एआई मशीनें ज्यादातर नौकरियों से इंसानों को विस्थापित नहीं करेंगी। यदि मशीनें जागरूक नहीं भी होती हैं तो मनुष्यों की ओर से उनके साथ ऐसा व्यवहार करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाएगी जैसे कि वे सचेतन हैं। ❑❑

(Regents Professor- Computer Science Oklahoma State University–Stillwater and visiting professor at Jawaharlal Nehru University, Delhi)

रामनाथस्वामी मंदिर का अनंत गलियारा
विकिमीडिया कॉमन्स

साहित्य, धर्म और विज्ञान

प्रो. भगवानदास जैन

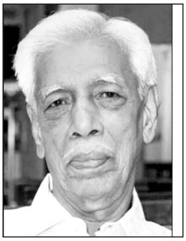

धर्म और साहित्य का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर एक अंतर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि जहाँ धर्म अपने रूढ़ अर्थ में देश-काल की सीमाओं में बद्ध है, वहीं साहित्य का क्षेत्र देश-काल की सीमाओं से परे है। कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ, मिर्जा गालिब, मैक्सिम गोर्की, प्रेमचन्द, टॉल्स्टोय, प्रसाद, निराला आदि का कृतित्व सार्वदेशिक और सार्वकालिक है; जबकि विश्व के समस्त धर्मों के आधारभूत सिद्धांतों में समानता होने के बावजूद वे देश-काल की सीमाओं में निबद्ध हैं। वैश्वीकरण के आधुनिक युग में साहित्य की वस्तुगत एवं शिल्पगत सीमाएँ निरंतर फैलती जा रही हैं। साहित्य के अतिरिक्त अन्य समस्त विद्या-शाखाओं एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी आज कल्पनातीत विकास हुआ है और निरंतर होता जा रहा है। साहित्य का क्षेत्र अपेक्षाकृत विशद, व्यापक एवं विराट होने के कारण उसमें धर्म और विज्ञान के अतिरिक्त दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति आदि अनेक विषयों का प्रवेश हो रहा है। हमारे प्रबुद्ध और जागरूक साहित्यकार इन समस्त विषयों का साहित्यिक संस्कार करके उन्हें कलात्मक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें विश्व की प्रायः समस्त विद्याओं और ज्ञान-विज्ञानों की आनंदप्रद जानकारी साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से होती है।

साहित्य में धर्म के साथ-साथ विज्ञान की स्थिति का भी चिंतन है। 21वीं सदी का मनुष्य एक ऐसे त्रिभुज के केन्द्र में खड़ा है जिसके तीन कोणों के तीन बिन्दुओं पर साहित्य, धर्म और विज्ञान अवस्थित हैं। साहित्य हृदय की वस्तु है, विज्ञान मस्तिष्क की और धर्म आत्मा की वस्तु है। इसीलिए साहित्य मनुष्य को सहृदय और संवेदनशील बनाता है, विज्ञान उसे प्रबुद्ध बनाता है और धर्म उसे चिंतक या मननशील बनाता है। पुनश्च, साहित्य का लक्ष्य सुंदरम्, विज्ञान का लक्ष्य सत्यम् और धर्म का लक्ष्य शिवम् है। किन्तु मैं समझता हूं, अपने सामाजिक दायित्व एवं कर्तव्य-बोध के प्रति निरंतर सजग एक सन्निष्ठ और प्रामाणिक साहित्यकार अपनी कृति में सत्यम् शिवम् और सुंदरम् तीनों का सुभग समन्वय स्थापित करता है। सच पूछिए तो वही साहित्य-कृतियां कालजयी बन पाती हैं जिनमें सत्यम् शिवम् और सुंदरम् तीनों का त्रिवेणी संगम होता है।

धर्म और दर्शन (विज्ञान) के गूढ़ रहस्य आम आदमी के लिए सहज बोधगम्य नहीं होते, किन्तु जब वहीं गूढ़ रहस्य की बातें साहित्य की किसी विधा अर्थात कविता, कहानी या एकांकी आदि के माध्यम से सरस कलात्मक शैली में अभिव्यक्त होती हैं, तो निश्चय ही वे अपेक्षाकृत अधिक संप्रेषणीय हो जाती हैं। पौराणिक आख्यानों पर आधारित हिन्दी मिथक-काव्य इस बात के प्रमाण हैं। हिन्दी में अद्यावधि अनेक मिथक-काव्य लिखे गए हैं। धर्म-कथाओं की अपेक्षा इन मिथक-काव्यों की संप्रेषणीयता या प्रभविष्णुता विशेष होती है, यह निर्विवाद है। प्रसाद-कृत कामायनी, गुप्तजी- रचित- साकेत, नहुष, यशोधरा, जयद्रथ-वध, दिनकर कृत- रश्मिरथी, उर्वशी,

धर्मवीर भारती-प्रणीत अंधायुग, दुष्यंत कुमार कृत- एक कंठ विषपायी, रामेश्वर दयाल दुबे-रचित सौमित्र, निराला विरचित राम की शक्तिपूजा, नरेश मेहता विरचित संशय की एक रात व महाप्रस्थान, अनूप शर्मा कृत वर्धमान, कुंवर नारायण कृत आत्मजयी, डॉ. अम्बाशंकर नागर रचित प्रमलोचा, डॉ. किशोर काबरा- प्रणीत परिताप के पांच क्षण, धनुष-भंग, नरो वा कुंजरो वा, उत्तर रामायण, उत्तर महाभारत आदि हिन्दी साहित्य के ऐसे मिथक-काव्य हैं जिन्हें बार-बार पढ़कर भी जी नहीं भरता। वास्तव में इन मिथकीय प्रबंधकाव्यों में युगबोध के स्वर मुखर हैं। इनमें जग-जीवन की समसामयिक चेतना से अनुप्राणित पुराख्यानों से आत्मा और हृदय दोनों को संतृप्ति मिलती है।

धर्म किंवा धर्म-कथाओं का साहित्यिक संस्कार करके उन्हें सर्वजन-ग्राह्य बनाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में धर्म के दुरूह और दुर्लभ रहस्य साहित्य के माध्यम से सरलीकृत होकर सर्वसाधारण के लिए मर्मस्पर्शी एवं संवेद्य प्रमाणित होते हैं और कल्याणकारी भी। यही कारण है कि धार्मिक साहित्य की अपेक्षा हम साहित्यिक धर्म के ही विशेष पक्षधर हैं। धर्म का साहित्यिक संस्करण मानव-समाज के अभ्युदय एवं सर्वतोमुखी कल्याण में अप्रतिम योगदान देता है, वह हमें धर्म का मर्म समझाता है, हमारे मन-प्राणों को जग-जीवन के चिरंतन सत्य से ओत-प्रोत कर देता है और अंततः हमें मानवतावाद की उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है। यदि धर्म में मतांतर से क्षमा, तितिक्षा और सहज उदारता का अभाव है, यदि धर्म हमें पक्षपात और भेदभाव सिखाता है, यदि धर्म संकुचित मानसिकता का गुलाम बनाकर मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है, यदि धर्म का लक्ष्य समाज में मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा के स्थान पर साम्प्रदायिक अलगाव उत्पन्न करके मानवता को विभक्त करना है, तो हमें उसे धर्म मानने में संकोच होता है। वस्तुतः वह कुछ और होगा, धर्म कदापि नहीं हो सकता। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब यही धर्म साहित्य या काव्य के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है तो उसका कायाकल्प हो जाता है, हां उसकी आत्मा अवश्य वही रहती है।

'वत्थुस्वभावो हि धम्मः' अर्थात वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है। वस्तुतः यही धर्म की श्रेष्ठ और वैज्ञानिक परिभाषा है। जिस प्रकार अग्नि का धर्म ऊष्णता है, जल का धर्म शीतलता है, वायु का धर्म गति है तो उसी प्रकार दया, करुणा, क्षमा आदि मनुष्य के स्वाभाविक गुण होने से मानव-धर्म हैं। इस दृष्टि से धर्म अनिंद्य है, किन्तु धर्म के क्षेत्र में व्याप्त पाखंड और आडम्बरों ने हमें विवेक भ्रष्ट कर दिया है। हम संकीर्ण मानसिकता के गुलाम हो गए हैं और नितान्त आत्मकेन्द्रित व स्वार्थान्ध हो गए हैं। परिणामस्वरूप हम 'स्व' से हट कर 'पर' के सम्बन्ध में सकारात्मक ढंग से सोच ही नहीं पाते या यों कहिए कि सोचना ही नहीं चाहते।

कर्मकाण्ड और आडम्बर को ही धर्म मान लेना हमारी बहुत बड़ी भ्रांति है। कहा गया है 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'। अतः सूक्ष्म और गंभीर दृष्टि से देखने पर ही धर्म का तत्त्व पकड़ में आ सकता है। विश्व के समस्त धर्म - प्रवर्तकों तीर्थंकरों और पीर-पैगम्बरों ने धर्म के इसी तत्त्व को पकड़ा था जो वस्तुतः धर्म नहीं, प्रत्युत जगज्जीवन का कोई-न-कोई शाश्वत सत्य ही था- ऐसा सत्य जिससे प्राणिमात्र का कल्याण हो सके और मनुष्य जाति का उदात्तीकरण व उर्ध्वगमन हो सके। सच पूछिए तो सभी धर्म प्राणिमात्र के मंगल की कामना करते हैं, क्योंकि विश्व के समस्त धर्मों का आधारभूत सत्य एक समान है। दोष तो उन तथाकथित धर्माचार्यों और धर्म-धुरंधरों का है जो अपने निहित स्वार्थ के लिए धर्म का संकुचित अर्थगठन करते हैं। फलस्वरूप पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, बन्धन, मोक्ष की लम्बी-चौड़ी व्याख्याएँ सुन-सुन कर लोग तथोक्त धार्मिक विधि-निषेधों का जड़तापूर्वक पालन तो करते हैं, किन्तु धर्म के मूल तत्त्वों– सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि से कोसों दूर रहते हैं। ऐसे लोगों के मन, वाणी और कर्म में भारी विषमता भी पाई जाती है।

धर्म के उक्त मूल तत्त्व जब किसी काव्य-विधा के कलात्मक संस्कारों में ढलकर समाज के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं तो वे मनुष्य के हृदय पर सीधे प्रभाव डालते हैं। धार्मिक उपदेशों का प्रभाव स्थायी नहीं होता, जबकि उनके साहित्यिक प्रस्तुतीकरण का प्रभाव चिरस्थायी एवं

अमिट होता है। 'सत्यवादी हरिश्चंद्र' नाटक देखकर ही गांधीजी ने सत्य का विकट मार्ग अपनाया था। आजीवन इसी सत्य के मार्ग पर चलते रहने के कारण ही तो अन्ततः वे महात्मा कहलाए। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा का शीर्षक ही 'सत्य के प्रयोग' रखा है। टॉल्स्टॉय की अमर कहानी 'एक आदमी को कितनी ज़मीन चाहिए' में आदमी की अतिशय लोभ-वृत्ति और उसके अत्यधिक परिग्रह की लिप्सा का बड़ा ही करुण एवं मर्मस्पर्शी चित्रण है।

स्पष्ट है, धार्मिक सत्य की अपेक्षा साहित्यिक सत्य अधिक सहजग्राह्य, प्रभावी और स्थायी होता है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त के शब्दों में, 'वेदों, पुराणों, शास्त्रों और धर्म-ग्रंथों का सत्य जनजीवन को इतना प्रभावित नहीं करता, जितना कि वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी और प्रसाद का स्वानुभूत सत्य, जो कि उन्हें जन-जीवन के खुले अध्याय से मिला।' यही बात हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कथाकार प्रेमचंदजी इस प्रकार कहते हैं, 'साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहां साहित्य बाजी ले जाता है। यही कारण है कि हम उपनिषदों और अन्य धर्म-ग्रंथों को साहित्य की सहायता से देखते हैं।'

संत कबीरदास निरक्षर थे, किन्तु जगज्जीवन-सम्बन्धी उनका सत्य उनके व्यापक अनुभव पर आधारित है। अहिंसा-धर्म का कितना मर्मस्पर्शी निरूपण उन्होंने अपने छोटे-से दोहों में किया है– कबिरा सोई पीर है, जो जाने परपीर। जो परपीर न जानई, सो काफिर बेपीर।। बकरी पाती खात है, ओकर काढ़ी खाल। जे नर बकरी खात हैं, उनकर कौन हवाल।।'

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' के द्वारा समन्वय की विराट चेष्टा और समाज में लोकमंगल की प्रतिष्ठा की है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करके उनके चरित्र को अनुकरणीय एवं चिरस्मरणीय बना दिया है। तुलसी ने भी हिंसा और परपीड़न की वृत्ति को अधमता कहा है और परोपकार को ही सच्चा व अप्रतिम धर्म माना है– परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई?

वास्तव में धर्म का साहित्यिक संस्करण ही समूची मानव जाति के लिए श्रेयस्कर है। साहित्य मनुष्य-मनुष्य के बीच भ्रातृभाव, सौहार्द और औदार्य स्थापित करता है, समाज में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। जीओ और जीने दो सिद्धांत का प्रसार करना ही साहित्य का लक्ष्य है। संकुचित मानसिकता को साहित्यिक शब्दकोश में स्थान नहीं। संक्षेप में, प्राणिमात्र के कल्याण के लिए ही साहित्य सचेष्ट रहता है। साहित्य के धर्म सम्बन्धी दायित्व को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्दजी लिखते हैं– साहित्य धर्म को फिर्काबन्दी की हद तक गिरा हुआ नहीं देख सकता। वह समाज को संप्रदायों के रूप में नहीं, मानवता के रूप में देखता है। किसी धर्म की महानता और फजीलत इसमें है कि वह इंसान को इंसान का कितना हमदर्द बनाता है। उसमें मानवता का कितना ऊंचा आदर्श है और उस आदर्श पर वहाँ कितना अमल होता है। वास्तव में एक सच्चा और अच्छा साहित्यकार ही समाज में धर्म के सच्चे स्वरूप को प्रतिष्ठित करता है। वह मनुष्य को संप्रदायों और फिर्कों में कैद धर्म की दमघोटू चहारदीवारी से मुक्त कर मानवता के उन्मुक्त वायुमण्डल और व्यक्ति से समष्टि की ओर ले जाता है। दूसरे शब्दों में तमसो मा जोतिर्गमय के अनुसार भ्रांत-क्लांत मानवता को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना ही साहित्य और साहित्यकार का धर्म या दायित्व है। तभी तो कहा गया है-अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है। मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।

उत्कृष्ट एवं आदर्श साहित्य की विशेषताएँ रेखांकित करते हुए प्रेमचंदजी 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक अपने एक निबन्ध में लिखते हैं– हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।

धर्म आज पथ-भ्रांत है। उसे सही दिशा साहित्य ही दिखा सकता है। इस विषय में भी प्रेमचंदजी का चिंतन हमारे लिए पर्याप्त पथ प्रदर्शक होगा। वे लिखते हैं– धर्म नाम है उस रोशनी का जो कतरे को समुद्र में मिल जाने का रास्ता दिखाती है, जो हमारी जात को इमा

ओस्त में, हमारी आत्मा को सर्वात्मा में मिले होने की अनुभूति या यक़ीन कराती है। ...यह साहित्य-सेवियों का काम है कि वे सच्ची धार्मिक जागृति पैदा करें। धर्म के आचार्यों और राजनीति के पंडितों ने हमें ग़लत रास्ते पर चलाया है। .....(कुछ विचार-पृ.82)।

प्रेमचंदजी का उपर्युक्त विधान शब्दशः यथार्थ एवं तर्कसंगत है। आधुनिक युग में धर्म का परिष्कृत रूप ही हमें अभीष्ट है। उसका रूढ़ और परंपरागत रूप समाज के लिए विघातक एवं अनिष्टकारी है। इतिहास गवाह है कि इस भूतल पर जितना हत्याकांड, जितना रक्तपात और जितना विनाश धार्मिक कट्टरता के कारण हुआ है, धन-जन की उतनी तबाही कदाचित बाढ़, अनावृष्टि, भूचाल और महामारी आदि प्राकृतिक विपत्तियों के कारण नहीं हुई। समर्पित साहित्यकारों ने धर्म और राजनीति के ठेकेदारों की कुत्सित रीति-नीतियों को न केवल उजागर किया, अपितु उनके अत्याचारों को भी धर्यपूर्वक सहा है। धर्म के क्षेत्र में व्याप्त इन्हीं तमाम विसंगतियों एवं कुत्साओं के कारण ही विश्वप्रसिद्ध चिंतक कार्लमार्क्स को तथोक्त धर्म में कोई आस्था नहीं। उनके विचार में धर्म वस्तुतः एक प्रकार की अफीम है जो आदमी को सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन और मानवतावादी भावना से परांगमुख बना देती है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार धर्म-ईश्वर, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि मानवीय शोषण के हथकण्डे और वर्ग-विग्रह के विष बीज हैं। धर्म की यह अफीम मनुष्य को नितांत आत्मकेंद्रित बनाकर उसे घोर स्वार्थ-लिप्सा और एकान्तवाद की भट्टी में झोंक देती है।

विश्व के समस्त धर्मग्रंथों में ऐसे अनेक मिथक और उनसे सम्बन्धित असंख्य घटनाएं बिखरी पड़ी हैं जिन्हें साहित्य के कलात्मक संस्पर्श से सर्वजन सुलभ बनाया जा सकता है। आवश्यकता केवल इतनी है कि उन पात्रों और घटनाओं से जुड़े हुए अतिदैवी तत्त्वों (supernatural elements) का वैज्ञानिक विश्लेषण करके उन्हें सहज बोधगम्य एवं संवेद्य बनाकर प्रस्तुत किया जाए। पात्र और घटनाएं तभी पाठकों के लिए उपादेय हो सकेंगी, जब वे मानवीय भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हों, समसामयिक बोध से अनुप्राणित हों तथा सामाजिकों को उनके चित्रण में अपने परिवेश और अपनी रोज़मर्रा की समस्याओं का दिग्दर्शन उपलब्ध हो।

मिथकीय पात्र साहित्यिक संस्कारों में ढलकर हमारे सम्मुख महज़ आदर्श की प्रतिमा बनकर नहीं, अपितु मानवीय संवेदनाओं से युक्त होकर जीवंत रूप में उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि सामाजिक उनके सुख में सुखी और दुख में दुखी होते हैं। यह प्रभाव अपेक्षाकृत गहरा और दीर्घकालीन होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, धर्मनिष्ठ श्रेणिक, सत्यवादी हरिश्चंद्र, तपस्वी बाहुबली आदि राजाओं; सीता, सावित्री, सुलोचना आदि सतियों तथा सुकुमाल मुनि या नेमि-राजुल के पुराख्यान या धर्म-गाथाएँ जब काव्य रूप में हमारे समक्ष आती हैं, तो सामाजिक (पाठक, श्रोता या दर्शक) भावविभोर और विह्वल होते देखे गए हैं। यों तो सभी धर्मों में अहिंसा, जीवदया तथा 'जीओ और जीने दो' जैसी मानवतावादी भावनाओं का समर्थन मिलता है, किन्तु जैन धर्म में अहिंसा पर इतना अधिक बल दिया गया है कि वह अहिंसा-धर्म का ही पर्याय हो गया है। मैं तो कहूँगा कि अहिंसा-सिद्धांत और स्याद्वाद या अनेकांत दर्शन जगत को जैनधर्म की सर्वथा मौलिक देन हैं। आज जबकि विश्व के तमाम राष्ट्रों के बीच आणविक शस्त्रास्त्रों की होड़-सी लगी हुई है, तीसरे विश्वयुद्ध की गुप्त तैयारियां चल रही हैं और पूरा विश्व सर्वनाश के कगार पर खड़े होकर एक धक्के की राह देख रहा है; देश-दुनिया में सर्वत्र आतंकवाद का भस्मासुर निर्दोष मानवता को निगलने के लिए अपने आसुरी जबड़े फैलाए बैठा है; चारों ओर भ्रष्ट्राचार, छल-कपट, लोभ, स्वार्थ का बाजार गर्म है, जड़ एकांतवाद ने मनुष्य को स्वार्थान्ध बना रखा है, ऐसी स्थिति में भगवान महावीर के अहिंसा-सिद्धांत और अनेकांत-दर्शन की महती आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। आज समाज को ऐसे सारस्वत रचनाकारों की आवश्यकता है जो जैनधर्म के अहिंसा-सिद्धांत एवं अनेकांत दर्शन को अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से जन-जन के हृदय तक पहुँचा सकें। निश्चय ही ऐसी कृतियों का समाज पर गहरा प्रभाव होगा, मानव जाति को उनसे जीने की एक नई दिशा मिलेगी, एक नया आलोक मिलेगा।

वर्तमान युग में साहित्यकारों और विशेषतः उदीयमान रचनाकारों का यह दायित्व और कर्तव्य है कि वे अपनी कृतियों में धर्म को उसके रूढ़ अर्थ में यानी उसे कोरे धर्म के रूप में नहीं, प्रत्युत् साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करें जिसमें शिल्पगत औदात्य भी हो और भावगत सौन्दर्य भी हो; साथ ही उनमें युगबोध के स्वरों की अनुगूँज भी स्पष्ट सुनाई पड़े। अन्यथा साहित्य भी दलबन्दी, फिरका परस्ती या सांप्रदायिकता के संकुचित दायरों में सिमट कर रह जाएगा और फलस्वरूप उससे व्यापक लोकहित का सपना कभी साकार न हो सकेगा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और विश्व बन्धुत्व की भावना अपनाते हुए व्यापक स्तर पर वैचारिक आदान-प्रदान एवं धर्म व साहित्य के व्यावहारिक समन्वय से ही त्रस्त मानवता का कल्याण संभव है। प्राणिमात्र के प्रति हमारी यही मंगल कामना है–

'न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्?'

❏❏

बी 105, मंगलतीर्थ पार्क,
कैनाल के पास, जशोदानगर रोड,
मणीनगर (पूर्व),
अहमदाबाद (गुज.) 382445।

काव्य-वीणा सम्मान-2025 हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित

कोलकाता का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक जागरण केंद्र 'परिवार मिलन' विगत सन् 2013 से प्रतिवर्ष हिन्दी काव्य कृति को 'काव्य-वीणा सम्मान' प्रदान कर रहा है।

इस वर्ष 13वें सम्मान हेतु इच्छुक रचनाकारों से उनकी वर्ष 2015 के बाद प्रकाशित छंदबद्ध कृति की चार-चार प्रतियां, पासपोर्ट आकार के दो रंगीन चित्र एवं अपने संक्षिप्त परिचय के साथ परिवार मिलन कार्यालय (4, एस. एन. चटर्जी रोड, बेहाला, कोलकाता-700038) में भेजने का आग्रह है। कृति के भाव पक्ष एवं कला पक्ष अर्थात हृदयस्पर्शी विषय वस्तु, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, लयात्मकता, सुललित छन्द योजना तथा भाषा सौष्ठव पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

सम्मान राशि रु. 51000/- होगी तथा चयन समिति का निर्णय अंतिम एवं मान्य होगा। कृति भेजने की अंतिम तिथि-**28.02.2025** है।

गौतम बुद्ध का धम्मपद

प्रो. राजेंद्र गर्ग

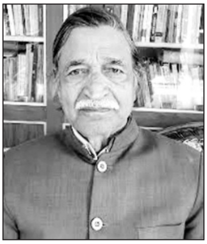

गौतम बुद्ध के उपदेशों का संकलन 'धम्मपद' में है जो बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक माना जाता है। धम्मपद में कुल 26 अध्याय हैं, जिन्हें प्राकृत भाषा में 'वग्ग' कहा जाता है जैसे- यमक वग्गो, चित्र वग्गो, बाल वग्गो आदि। इनमें 423 श्लोक या सुभाषित हैं, जो विषय के अनुसार ठीक क्रम में जमे हुए न होकर बिखरे हुए से लगते हैं, क्योंकि तथागत द्वारा समय-समय पर कही गई बातों को ही धम्मपद में संग्रहित कर लिया गया था जिसमें स्वाभाविक ही कोई क्रम नहीं था।

भगवान बुद्ध ने एक वर्ग, जाति और सम्प्रदाय विहीन मनुष्य समाज की परिकल्पना की है। जाति और धर्म के कारण ऊंचा या नीचा होना उनकी दृष्टि में एक अनुचित विचार है– *न जटाहि न गोत्रेन न जच्चा होति ब्राह्मणो। यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुचि सो च ब्राह्मणो।। (शुचि-96/11)* अर्थात न जन्म के कारण, न गोत्र के कारण, न जटाधारण के कारण ही कोई ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य है, धर्म है, वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है। वे आगे कहते हैं– हे दुर्बुद्धि, तुम्हारी जटाओं से क्या लाभ? तुम्हारा अंतर तो विकारों से भरा है और तुम बाहर को ही धो रहे हो।[1] तथागत कहते हैं कि केवल ब्राह्मण माता-पिता से जन्मे हुए को मैं ब्राह्मण नहीं कहता। जिसका कोई परिग्रह नहीं, जो अकिंचन है, जिसकी तृष्णा शांत हो गई है और जो आनंद के समुद्र में डुबकी लगाता है, संसार के मोह रूपी दुर्गम मार्ग को पार करके जो आत्म संतुष्ट हो चुका है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं।[2]

बुद्ध का मानना था कि इस संसार का प्रत्येक प्राणी और यहां की हर घटना हमें कोई न कोई संदेश देती है, मूर्ख उस संदेश को पकड़ ही नहीं पाता। वह तो उस उल्टे बरतन की तरह है, जिसे वर्षों तक कुएं में डाले रहो, लेकिन जब भी बाहर निकालोगे वह खाली ही बाहर आएगा। मूर्ख और बुद्धिमान में क्या अंतर है? बुद्ध कहते हैं– *यावजीवं पि चे बालो पंडितं पयिरुपासति। न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूप रसं यथा। - (विज्ञएव विजानाति-79/8)*। यानी मूर्ख जीवन भर पंडित की संगति में रहे तब भी उसे धर्म का ज्ञान नहीं होता, जैसे कढ़ाही को अपने अंदर पकने वाले दाल, भात या मिष्ठान का ज्ञान नहीं होता, लेकिन समझदार व्यक्ति को क्षणभर की संगति में ही तत्काल धर्म का ज्ञान हो जाता है जैसे जीभ को खाद्य पदार्थों के स्वाद का तुरंत पता चल जाता है। -(79/9)।

संसार में इतने सारे दुःख दर्द कहां से आए? हर आदमी क्यों कराह रहा है? किस पीड़ा की शांति के लिए आदमी बेतहाशा भागा जा रहा है? कौन सा तनाव हमारे चेहरों को झुर्रियों से भर रहा है? किस हताशा से हमारा जीवन अभिशाप बन गया है? क्यों हम इर्ष्या की आग में झुलस रहे हैं? किस भय से हम आशंकित हैं? कौन-सी आत्मग्लानि और कृतघ्नता का

डंक हमारे चुभ रहा है? इन समस्त प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने एक शब्द में कहा– वैर ही वह बीज है, जिससे संसार का यह विषवृक्ष उगकर फैल जाता है। सभी पीड़ाओं की एक ही दवा है– निर्वैरता। निर्वैरता का अर्थ है वैर न रखना। वैर क्रोध से उत्पन्न होता है, इसलिए अक्रोध या क्षमा ही सांसारिक दुःखों की एकमात्र दवा है। मुझे डांटा, मुझे मारा, मुझे जीता, मुझे लूटा। इस तरह की गांठ, जो अपने मन में बांधे रखते हैं उनका वैर कभी शांत नहीं होता।[3]

वैरियों के बीच अवैरी बनकर हम कितना सुखपूर्ण जीवन बिता रहे हैं? आतुरों के बीच अनातुर, व्याकुलों के बीच अव्याकुल और तृष्णा से बेचैन लोगों के बीच हम अपरिग्रही कितने आनंद और शांति में हैं।[4] वस्तुतः क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेना ही हमारी सारी साधना का लक्ष्य है। अगर अक्रोध की चाबी हमारे हाथ में आ गई है, तो सारे सुखों के द्वारा हमारे लिए खुले हैं। बुद्ध के अनुसार– जो चढ़े हुए क्रोध के प्रबल वेग को भटके हुए रथ की भांति रोक लेता है, उसे मैं सारथी कहता हूं। अन्य लोग तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं।[5]

क्रोध क्यों आता है? बुद्ध के अनुसार क्रोध हमारी क्रिया नहीं है। यह तो सिर्फ हमारी प्रतिक्रिया है, कोई व्यक्ति कुछ कह देता है या कर देता है, उस पर हम प्रतिक्रिया स्वरूप क्रोध करते हैं। बुद्ध कहते हैं कि हमारा प्रतिक्रियाहीन हो जाना ही निर्वाण है, यही मोक्ष है– जिस प्रकार टूटे हुए कांसे का थाल पीटने पर भी आवाज नहीं करता। वैसे ही यदि तुमने अपने को निःशब्द (प्रतिक्रिया रहित) बना लिया, तो समझो कि तुम निर्वाण पा गए।[6]

'धम्मपद' में गौतम बुद्ध ने 'शील' पर बहुत जोर दिया है। शील शब्द को परिभाषित करना या इसका कोई पर्यायवाची शब्द बताना कठिन है, क्योंकि इसका अर्थ सूक्ष्म है, जिसका आभास किया जा सकता है, लेकिन व्याख्या नहीं की जा सकती। शीलवान मनुष्य वह है जिसमें विनम्रता, मधुरता, अक्रोध एवं आज्ञाकारिता के गुण हों, जिसके आचरण और बातचीत से अन्य मनुष्यों के मन का क्लेश और क्षोभ कम हो, जो त्याग और उदारता के कारण सरल और प्रिय लगता हो तथा जो मृदुभाषी एवं प्रसन्नचित हो। बुद्ध ने शील को फूलों की सुगंध के समान बताया है, जिसे देखा नहीं जा सकता, किन्तु वह आनंदित करती है। संक्षेप में शील सज्जन व्यक्ति की सुगंध है। बुद्ध ने कहा है– चंदन या अगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंध से शील की सुगंध उत्तम होती है। इसी विषय में बुद्ध कहते हैं कि पुष्प की गंध उसी दिशा में उड़कर जाती है, जिधर की तरफ हवा बहती है, लेकिन शीलवान व्यक्ति की सुगंध बिना बाधा के चारों ओर फैल जाती है। बुद्ध कहते हैं– *यो मुख संयतो भिक्खु मन्त भाणी अनुद्धतों अत्थं धम्मं च दीपेति मधुरं तस्य भासितं।।' -(शील-11/29)।* अर्थात जो भिक्षु सदा वाक् संयम रखता है, वह बोलता है तब सोच विचार कर ही बोलता है, नम्रता के साथ धर्म और अर्थ को प्रकाशित करता हुआ बोलता है, उसी का भाषण मधुर होता है।

विभिन्न मानवीय गुणों के विकास के लिये बुद्ध ने सत्संगति पर बहुत जोर डाला है। उनके अनुसार सज्जनों के दर्शन और दुष्टों के अदर्शन से बड़ी शांति मिलती है। हमारा सच्चा मित्र वही है, जो हमारे कल्याण के लिए कड़वी बात भी कह देता है। जो गलती पर हमें फटवार न सके वह मित्र नहीं हो सकता। हमें अपने दोष दिखाई नहीं देते, जो हमें हमारी कमियां बताता है वह हमें गड़ा हुआ धन बता रहा है। खरी सुनाने वाला आदमी सज्जनों को प्रिय लगता है और दुष्टों को बुरा लगता है। बुद्ध ने कहा है- 'वही कर्म अच्छा जिसको करने से मन में पश्चाताप नहीं होता तथा जिसका फल आदमी प्रसन्नचित्त होकर भोग सकता है। सचमुच आत्मग्लानि और पश्चाताप से आदमी कहीं भी नहीं बच सकता। त्रैलोक्य में ऐसा कोई स्थान नहीं न अंतरिक्ष में, न समुद्र के पैंदे में, न पर्वत की गुफाओं में जहां हम छिपकर आत्मग्लानि से बच सकें। बुद्ध का उपदेश है कि एक बार किसी असावधानी वश पाप हो ही जाए तो उसे बार-बार दोहराएं नहीं। यह संसार हमारे मनोभावों का ही प्रतिबिम्ब है। अगर हमारे मन में सभी के लिए सहानुभूति एवं प्रेम है तो यह संसार हमें सुंदर ही दिखाई देगा। अगर हमारे मन में तरह-तरह के डर और आशंकाएं भरी पड़ी हैं तो फिर क्रोध और छल-कपट द्वारा हम अपने काल्पनिक शत्रुओं से संघर्ष करते-करते ही जीवन

बिता देंगे। धम्मपद कहता है– जागने वाले के लिए रात बहुत लंबी होती है, थके हुए के लिए मार्ग लंबा होता है, नीतिधर्म न जानने वाले के लिए यह संसार लंबा हो जाता है अर्थात कठिन हो जाता है।[7]

प्रायः देखा जाता है कि जो जितना बड़ा त्यागी है, वह उतना ही बड़ा अहंकारी हो जाता है। ऐसे त्यागी के लिए बुद्ध कहते हैं कि मूर्ख त्यागी यह सोचता रहता है 'मुझे भिक्षुओं में नेतृत्व मिले, मठों में ऊंचा पद मिले और समाज में मेरी पूजा हो। सभी मेरे कथन को प्रमाण मानें और मेरे निर्देशों का पालन करें।[8] तथागत के अनुसार सबसे ज्यादा दुखी हम तब होते हैं जब कोई व्यक्ति हमारी निंदा या आलोचना कर देता है। बुद्ध अपने शिष्य अतुल से कहते हैं– 'हे अतुल यह कोई आज की बात नहीं, बहुत पुरानी बात है कि लोग चुप बैठने वाले की भी निंदा करते हैं और बोलने वाले की भी। संसार में निंदा से कोई नहीं बचा। ऐसा पुरुष न कभी हुआ न भविष्य में कभी होगा जिसकी सिर्फ निंदा ही हुई हो या सिर्फ प्रशंसा ही हुई हो।'[9] बुद्ध कहते हैं- हमारे मन में अंतहीन इच्छाएं पैदा होती रहती हैं, एक इच्छा पूरी होने पर कई नई इच्छाएं जाग उठती हैं। जीवन भर हम एक पागल दौड़ में भागते रहते हैं और अचानक ही मौत हमें रास्ते में खड़ी मिल जाती है। सोये हुए गांव को जिस प्रकार बाढ़ का पानी बहा ले जाता है उसी तरह जमीन जायदाद और बेटे पोतों में फंसे हुए आदमी को मृत्यु अचानक उठा ले जाती है। बड़े सुंदर शब्दों में बुद्ध ने कहा है– यह शरीर हड्डियों का बना हुआ नगर है, जो मांस और रक्त से लिपा पुता हुआ है। इस शहर में बुढ़ापा, मृत्यु, रोग और अहंकार निवास करते हैं। ग्वाला जैसे गायों को डंडे से हांक कर ले जाता है वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों को हांक ले जाते हैं। (देहानित्यत्वम्-43/14-15)।

'धम्मपद' मानव जीवन की विसंगतियों तथा उनके समाधान की दिशा में उचित मार्गदर्शन करता है, अतः इसके बुद्ध-कथन मननीय तथा आचरण में उतारने योग्य हैं। परंपरागत 'धम्मपद' एक प्रकार से सुभाषित संग्रह की तरह प्रकीर्ण या बिखरा हुआ जैसा था– आचार्य विनोबा भावे ने सभी श्लोकों को विषयानुसार क्रम-व्यवस्था में जमा दिया है। प्रस्तुत आलेख में इसी क्रम से अध्याय (विषय) और श्लोक संख्या का उल्लेख किया गया है।

संदर्भ :

1. शुचि : 96/12। **2.** शुचि : अनादान 97/17-18। **3.** निर्वैरता-1/3। **4.** निर्वैरता 2-7/8। **5.** निर्वैरता 3/15। **6.** निर्वैरता 3/25। **7.** मूढ़- संकल्प : 24/13। **8.** मूढ़- संकल्प : 24/18। **9.** अनिंदा - 29/1।

❑❑

- (सेवानिवृत्त उपाचार्य, अंग्रेजी विभागाध्यक्ष),
54/8, मानसरोवर,
जयपुर-302020
मो. 9414646696

तय करें कि आप अपनी आशाओं को चुनेंगे या डर को। आप किसी काम में तभी सफल हो सकते हैं जब आप उस पर गर्व करें। मैं जातिवाद से नफरत करता हूं, किसी भी देश के विकास में यह सबसे बड़ी बाधा है। सभी लोगों के लिए काम, रोटी, पानी और नमक होना चाहिए। **-नेल्सन मंडेला**

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित धर्म-दर्शन का स्वरूप

राकेश कुमार

समाज को विकसित और सुव्यवस्थित रखने में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म वह अनुशासन है जो अंतरात्मा में नैतिक बल उत्पन्न करता है जिससे व्यक्ति बुराइयों और कुरीतियों से संघर्ष कर सत्कर्मों की तरफ उन्मुख होता हुआ एक आदर्श समाज की स्थापना करता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार धर्म मात्र एक मजहब, ईमान या रिलीजन नहीं है बल्कि यह जीवन जीने का एक ढंग अथवा आचार संहिता के रूप में व्यापक अर्थ रखता है। उनके अनुसार इसे केवल ईश्वर की पूजा उपासना आदि तक सीमित करना नितांत एकांगी बना देना है। स्वामी दयानन्द के चिंतन की धुरी वेद हैं, जो ना केवल धार्मिक और दार्शनिक सत्यज्ञान हैं बल्कि ज्ञान विज्ञान के भंडार हैं। ये प्राचीनतम ईश्वरीय ज्ञान एवं मानवता के आदिग्रंथ हैं। उनके अनुसार वेद ईश्वर रचित है और ईश्वर सत चित एवं आनंद स्वरूप है अर्थात जिसका कभी नाश नहीं होता जो ज्ञानस्वरूप है, जो सदा सुख स्वरूप तथा सबको सुख देने वाला है इत्यादि लक्षणों से युक्त है उसी परब्रह्म ने वेदों की रचना की है जिससे ये उसी के समान नित्य ज्ञानस्वरू प हैं। इसी के आधार पर स्वामी जी ने वैदिक धर्म की विकृतियों एवं आडंबरों पर भी आवाज उठाई एवं शुद्ध वैदिक धर्म की स्थापना पर बल दिया। उनका उद्देश्य किसी नए धर्म की स्थापना का नहीं था बल्कि प्राचीन वेदों की शिक्षाओं को पुनर्स्थापित करना था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' में कहा है कि वे विश्लेषणात्मक सोच के माध्यम से सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार कर व कुरीतियों का त्याग कर मानव जाति का सच्चा विकास चाहते हैं। उनका मानना है कि वेदकालीन भारत भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल था। वेदों के सिद्धांतों पर आधारित सनातन धर्म को उत्तर वैदिक काल में स्वार्थी व अज्ञानी पुजारियों ने विकृत कर दिया साथ ही महाभारत के पश्चात इसमें और अवनति हुई जब चारों वर्णों का आधार कर्म के बजाय जन्म हो गया। इसके परिणामस्वरूप हमारे समाज में कर्मकांड, मूर्तिपूजा, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, जातिव्यवस्था, भाग्यवाद, बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, वेश्यावृत्ति, पशुबलि आदि कुप्रथाओं एवं कुरीतियों ने अपनी जड़ें जमा ली और उनका पालन एवं समर्थन धर्म के नाम पर किया जाने लगा। स्वामी जी अपने धार्मिक पुनर्जागरण के द्वारा इन सभी कुरीतियों व बाह्य आडंबरों पर कुठाराघाट कर इन्हें असंगत एवं धर्म विरुद्ध सिद्ध कर वेदों की तरफ वापस जाने का आह्वान करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तथा 'सत्यार्थप्रकाश' में धर्म के व्यापक रूप का विवेचन किया। सत्यार्थप्रकाश के स्वामंतव्यामंतव्यप्रकाश में स्वामीजी कहते हैं जो पक्षपात रहित न्याय आचरण सत्य भाषण आदि ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको धर्म और जो पक्षपात सहित अन्याय आचरण है मिथ्या भाषा आदि ईश्वराज्ञा भंग वेद विरुद्ध उसको अधर्म मानता हूं।[1] स्वामी दयानन्द वैशेषिक सूत्र 'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स

धर्मः'[2] का उल्लेख करते हुए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में कहते हैं– *'यस्याचरणाभ्युदय सांसारिक मिष्टसुखं सम्यक् प्राप्तं भवति येन च निःश्रेयस पारमार्थिक मोक्ष सुखं च स एव धर्मो विज्ञेयः अतो विपरीतो हयधर्मश्च'*[3] अर्थात जिसके आचरण करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस सुख की प्राप्ति होती है उसी का नाम धर्म है। वहीं पर 'चोदनालक्षणाऽर्थो धर्मः'[4] मीमांसासूत्र द्वारा धर्म को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्यों के लिए जिसके करने की आज्ञा दी है वही धर्म है और जिसको करने की प्रेरणा नहीं की है वह अधर्म है।

मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु धर्म की महत्ता को स्पष्ट करते हुए स्वामीजी कहते हैं कि वेदों में चार प्रकार के पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष माने गए हैं जिन की प्राप्ति मानव जीवन का उद्देश्य है। इस पुरुषार्थचतुष्टय में भी परम पुरुषार्थ मोक्ष को माना गया है जिसकी प्राप्ति मानव जीवन का परम लक्ष्य रहा है। काम से तात्पर्य लौकिक सुख से है। सुख दो प्रकार का माना गया है– लौकिक सुख एवं पारलौकिक सुख (मोक्ष)। अर्थ, काम का साधन है काम और अर्थ को लोकाभ्युदय और मोक्ष को निःश्रेयस कहा गया है। धर्म लोकाभ्युदय और निःश्रेयस दोनों का साधन है। अर्थ वह है जो धर्म से प्राप्त होता हो, परंतु जो अधर्म से प्राप्त होता हो उसे अनर्थ कहते हैं। अर्थात जीवकोपार्जन के साधन धर्म से अर्जित किए जाने चाहिए। काम वह है जो धर्म और धर्म से अर्जित अर्थ के द्वारा प्राप्त किया गया हो। इस प्रकार अर्थ और काम वही है जो धर्म से प्राप्त किया गया हो।[5] सत्यार्थ प्रकाश में धर्म की व्यापकता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इसके 10 लक्षणों की चर्चा प्राप्त होती है– 1. धृति (धैर्य रखना), 2. क्षमा, 3. दम (मन को अधर्म से हटाकर धर्म में प्रवृत्ति करना), 4. अस्तेय, 5. शौच (रागद्वेष से रहित होना), 6. इंद्रिय निग्रह, 7. धी (दुष्टों, मादक पदार्थों व आलस्य प्रमाद आदि का त्याग करना), 8. विद्या, 9. सत्य, 10. अक्रोध।[6] मनुस्मृति में इसे कहा गया है– *धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।*[7]

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम अध्याय में ही स्वामी जी ईश्वर के सौ नामों का उल्लेख करते हुए ओंकार को ईश्वर का सर्वोत्तम नाम मानते हैं। साथ ही कहते हैं कि परमात्मा के अनंत गुण कर्म स्वभाव हैं जिससे उसके अनंत नाम भी हैं। त्रैतवाद के द्वारा उन्होंने ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि माना है। उन्होंने ईश्वर एवं जीव का संबंध पिता-पुत्र अथवा उपास्य-उपासक का माना है। जीव और ईश्वर अनादि एवं नित्य हैं परंतु ईश्वर जहां दुख-सुख से परे सर्वज्ञ है वहीं जीव दुख-सुख से युक्त अल्पज्ञ। ईश्वर अपने स्वाभाविक गुण के कारण जगत की उत्पत्ति करता है जिस प्रकार नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है अर्थात इसमें किसी प्रकार की कोई बाध्यता नहीं है। जैसे ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उससे जगत की उत्पत्ति, स्थित व प्रलय भी अनादि हैं। स्वामीजी के अनुसार सत्य धर्म के ज्ञान एवं अनुष्ठान के लिए तथा परम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए ईश्वर की उपासना व प्रार्थना की जानी चाहिए। सभी मनुष्य ईश्वर के सहाय्य की इच्छा करें क्योंकि उसके सहाय्य बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और अनुष्ठान पूरा कभी नहीं हो सकता। इसके लिए उन्होंने यज्ञ आदि की चर्चा की है तथा पांच प्रकार के यज्ञों की बात की है जिसमें पर्यावरण की शुद्धता एवं अपने व पराये कल्याण की भावना निहित है।[8] 1. ब्रह्मयज्ञ- प्रभु की भक्ति और उसके प्रति धन्यवाद ज्ञापन तथा वेदों का स्वाध्याय। 2.देवयज्ञ- वातावरण को शुद्ध बनाए रखने हेतु हवन व विद्वानों का सम्मान करना। 3. पितृयज्ञ- गुरु व माता पिता की सेवा करना। 4. अतिथियज्ञ- साधु संतों एवं अतिथियों का सत्कार करना। 5. बलिवैश्वयज्ञ- दुखी मानव व पशु पक्षियों हेतु खाद्यान्न अर्पित करना।

स्वामीजी मानते हैं कि ईश्वर स्वरूपतः निराकार है अतः उसकी मूर्ति नहीं हो सकती। उनके अनुसार मूर्ति पूजा अधोगति का कारण है। परमेश्वर किसी माता-पिता से उत्पन्न नहीं है न शरीर धारण करके बालक, जवान और वृद्ध होता है वह अनंत, सीमारहित एवं सर्वव्यापक है इस कारण मनुष्यों को उसके निराकार रूप की उपासना करनी चाहिए।[9] उनके अनुसार सर्वव्यापी और समस्त जड़ चेतन का सृजन करने वाले

ईश्वर के स्वरूप को एक पाषाण मूर्ति तक सीमित मान लेना ईश्वर की सर्वव्यापकता को नकारने के समान है। स्वामी जी कहते हैं कि समाज में इन देव स्थानों व मूर्ति के निर्माण एवं रखरखाव में करोड़ों रुपये खर्च होते हैं। यह समस्त राशि अनुत्पादक कार्यों में व्यय होती है। इस अपरिमित धन का प्रयोग राष्ट्र के निर्माण में किया जाए तो समृद्धशाली राष्ट्र का निर्माण होगा। इसी प्रकार स्वामीजी अवतारवाद का भी विरोध करते हैं। वे यह नहीं मानते कि संसार में अत्याचार एवं अधर्म अधिक होने पर ईश्वर उसके नाश हेतु अवतार लेते हैं। उनका मानना है कि सर्वव्यापी और अनंत गुण कर्म स्वभाव युक्त परमात्मा को भक्त के रक्षार्थ एवं दुष्ट क्षुद्र जीव के नाश हेतु अवतार भला क्यों लेना पड़ेगा वह तो जब चाहे उसका नाश कर सकता है।[10] वेदों में भी इसकी पुष्टि होती है। ऋग्वेद में 'अज एकपाद'[11] व यजुर्वेद में 'सपर्यगाच्छुक्रमकायम'[12] के द्वारा परमेश्वर को जन्म और शरीर धारण रहित कहा गया है। इस युक्ति से परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह आकाशवत सर्वत्र व्यापक अनंत और सुख दुख दृश्यादि से रहित होता है। इसी कारण स्वामीजी श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि को ईश्वर न मानकर महापुरुष की संज्ञा देते हैं।

स्वामीजी सामाजिक व्यवस्थाओं को भी धर्म के अंतर्गत मानते हैं। उन्होंने अपने धार्मिक विचारों में बालविवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, जातिप्रथा, वेश्यावृत्ति आदि कुप्रथाओं का विरोध किया। उनका मानना था कि सभी को समान अधिकार होना चाहिए चाहे वह स्त्री हो या पुरुष हो। उन्होंने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया तथा विवाह की एक निश्चित आयु भी निर्धारित की। उन्होंने वेदों के स्वाध्याय का अधिकार स्त्री, शूद्रों सहित सभी को दिया। वर्णव्यवस्था का समर्थन करते हुए स्वामीजी कहते हैं कि इसका निर्धारण जन्म के बजाय कर्म आधारित होना चाहिए तभी एक समृद्धशाली राष्ट्र का निर्माण संभव होगा। स्वामीजी ने भूत-प्रेत, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, झाड़-फूंक, पशु बलि एवं कर्मकांड आदि की भर्त्सना की है साथ ही उन्होंने ज्योतिष व कुंडलिनी जागरण आदि का भी विरोध किया। उनका मानना है कि सुख दुख की प्राप्ति अपने कर्मों से होती है, इसलिए मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखनी चाहिए। सृष्टि के सभी उपादान व प्राणी अपने अपने कर्मों में रत हैं।

स्वामीजी बहुदेववाद का खंडन करते हुए एकेश्वर की उपासना पर बल देते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर के विभिन्न नाम उसी उसी निराकार ईश्वर के हैं और इंद्र, वरुण, अग्नि, वायु, मित्र, सविता आदि विभिन्न देवता नहीं बल्कि उसकी विविध शक्तियां मात्र हैं। ऋग्वेद में इसे ही 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदतन्ति'[13] के रूप में स्पष्ट किया गया है। इसी एकेश्वरवाद के आधार पर स्वामीजी ने धार्मिक समानता प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उन्होंने विभिन्न धर्मों के कर्मकांडों एवं कुरीतियों का विरोध किया। वे कहते थे कि प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय का कहना है कि हमारा धर्म मूलतः शुद्ध है किंतु उसमें जो कुछ अशुद्धियां आ गई हैं वे परपंथों का आगंतुक असर है। इसी प्रकार वे दूसरे धर्मों में कोई अच्छा तत्व दिखता है तो कहते हैं कि वह तो हमारे धर्म का असर है। प्रत्येक पंथ अपनी सनातनता और शुद्धि की स्थापना के लिए तो तत्पर रहता है पर अन्य पंथों के उच्च तत्वों की उपेक्षा करता है, यही नहीं वह दूसरे धर्म पंथों का अपमान करने से भी बाज नहीं आता जिससे समाज में सांप्रदायिक दंगे एवं युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। स्पष्टतः तो धर्म सबको एक समान प्रकाश देने और सबको समान भाव से देखने की दृष्टि अर्पित करने की शक्ति रखता है वही धर्म विभिन्न पंथों में फंसकर अपना अस्तित्व गंवा देता है। इसी कारण स्वामीजी विभिन्न धार्मिक पंथों का मूल्यांकन करते हैं। उनके मूल्यांकन के पीछे उनका मंतव्य किसी धर्म को कमतर बताना या क्षति पहुंचाना नहीं था, उन्होंने तो हिंदू धर्म की कुरीतियों का भी विरोध किया। वस्तुतः उन्होंने सभी धर्मों के न्यायसंगत सिद्धांतों को लेकर सार्वभौम वैदिक धर्म की स्थापना का प्रयास किया। यही नहीं उन्होंने भारतीय षडदर्शन के बीच समन्वय स्थापित कर वैदिक धर्म को ठोस आधार प्रदान किया।

दयानंद सरस्वती ने अपने विलक्षण व्यक्तित्व व कृतित्व से 19वीं सदी के जर्जर एवं पराधीन भारत को

जिस प्रकार जागृत किया था उसका प्रभाव हम 21वीं सदी में भी महसूस कर रहे हैं और उनसे प्रेरणा पाकर उन सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक अंधविश्वासों से लोहा ले रहे हैं जो समाज एवं धर्म को भीतर ही भीतर खोखला कर रहे हैं। उनके 'सत्यार्थप्रकाश' ने अंधविश्वासों, कुरीतियों, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, बहुदेववाद, श्राद्ध, तीर्थाटन आदि के पाखण्ड पर प्रहार किया और सर्वप्रथम स्वाधीनता की रणभेरी भी बजायी। हिन्दुओं में अपने इतिहास पर गर्व के भाव उत्पन्न किए और अपनी परम्परा के प्रति आस्था और संस्कृति के प्रति विश्वास जगाया तथा उन ऋषि कृत परम्पराओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जिन परम्पराओं ने अतीत में भारत को विश्वगुरु के पद पर स्थापित और प्रतिष्ठित किया था। आज सर्वत्र भ्रष्टाचार, व्यभिचार, नशाखोरी, आतंकवाद, प्रदूषण, हिंसा, अपराध वृत्ति, विकसित राष्ट्रों की दादागिरी, शोषण, अन्याय, अज्ञान, अभाव और विज्ञान एवं तकनीक की उपभोक्तावादी संस्कृति का बोलबाला है। हर समाज व राष्ट्र इन सभी दोषों से आहत और व्याकुल है। स्वामी जी ने इन समस्त समस्याओं के समाधान हेतु पंच महायज्ञ द्वारा आध्यात्मिक चेतना का विधान किया। दयानन्द जितने प्रासंगिक 19वीं शताब्दी में थे उतने ही प्रासंगिक हर युग काल खंड में रहेंगे। कारण कि विज्ञान और तकनीक चाहे जितनी उन्नति कर ले परन्तु मनुष्य के पुरुषार्थ की भावभूमि वही रहेगी जो अनादिकाल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलती रहेगी। मानव जीवन के इस लक्ष्य को ना विज्ञान बदल सकता है और न तकनीक। इस महर्षि दर्शन के मानवतावादी वैदिक मूल्य, विचार और उपदेश, उनकी आकांक्षाएं और कल्पनाएँ स्वस्थ मानव समाज के अभ्युत्थान को दिशा बोध देते हैं। उनके सिद्धांत और मंतव्य सार्वभौम हैं, सर्वकालिक हैं तथा सार्वजनीन हैं जो हर युग के मानव को दिशा बोध प्रदान करते रहेंगे और हर युग के लिए वह संगत बने रहेंगे। आज के संदर्भ में हमें उनके समग्र विचारों कार्यों व्यवहार और चरित्र को पूरी तरह निष्पक्ष होकर समझने की जरूरत है। यदि महर्षि दयानन्द हमें समझ में सही मायने में आ गए तो तथाकथित धर्म के नाम पर होने वाले पाखंडों और अनाचारों को खत्म कर एक सुदृढ़ समाज एवं राष्ट्र की कल्पना संभव हो सकेगी।

स्पष्टतः स्वामी जी के धार्मिक विचार ईश्वरीय उपासना एवं मूर्ति पूजा से ही संबद्ध न होकर जीवन की एक समग्र दृष्टि है, जीवन पद्धति है जिसमें व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, साहित्य एवं आध्यात्मिक आदि विविध प्रकार के समस्त कार्यों एवं कर्तव्यों को धर्म के अंतर्गत शामिल किया गया है। धर्म मानव जीवन के कार्यों एवं कर्तव्यों की कसौटी निर्धारित कर भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के पक्षों में संतुलन स्थापित करता है जिससे मानव समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के मार्ग प्रशस्त होते हैं। स्वामी जी के दार्शनिक धार्मिक विचारों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक मूल्य शाश्वत रहे हैं जो वर्तमान में भी समृद्धिशाली समाज एवं राष्ट्र के निर्माण हेतु सशक्त आधार प्रदान कर प्रासंगिक बने हुए हैं।

संदर्भ :

1. सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 1875, पेज 561। **2.** वैशेषिक सूत्र 1.1.2। **3.** ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट 2007। **4.** मीमांसा सूत्र 1.1.2। **5.** दयानन्द दर्शन : एक अध्ययन, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र 1997, पेज 116-117। **6.** सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 1875, पेज 228। **7.** मनुस्मृति 6.92। **8.** स्वामी दयानन्द सरस्वती : व्यक्ति और विचार, विश्वप्रकाश गुप्त व मोहनी गुप्त, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली 2002, पेज 229-230। **9.** सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 1875, पेज 295-310। **10.** वही 176-177। **11.** ऋग्वेद 7.35। **12.** यजुर्वेद 40.8। **13.** ऋग्वेद 1.164.46।

❑❑

शोधार्थी- दर्शन एवं धर्म विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी 221005
मो. 7905281049,
Email- rk1600161@gmail.com

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित वाणीकार

डॉ. दविंदर के. ब्रैचँ

श्री गुरु ग्रंथ साहिब भारतीय संस्कृति की वह विरासत है जिसमें दस शताब्दियों की परम्पराओं को मूल्यवान बनाया गया है। इस पावन ग्रंथ का सम्पादन पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुन देवजी ने सन् 1604 में अमृतसर की पावन धरती पर किया। इस ग्रंथ में 36 भारतीय महापुरुषों की वाणी संकलित है। मध्ययुगीन संगीत की विरासत भी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सुशोभित है। प्रस्तुत महान ग्रंथ में 31 राग तथा 32 उपराग हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ की वाणी 63 राग रागनियों में बंटी हुई है। मध्यकाल की कलात्मक छवि भी इस ग्रंथ में मिलती है। इस महान ग्रंथ की विरासत 1430 पृष्ठों में अपनी ऊंचाइयों को छूती है। भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ मध्यकाल की भाषिक क्रांति को जन्म देता है। ब्रज, अपभ्रंश, पंजाबी, मुलतानी, फारसी, अवधी, संस्कृत, खड़ी बोली की कई भाषिक इकाइयां इस ग्रंथ की भाषा समर्थता को प्रकट करती हैं। विद्वान इसे मध्यकाल की भाषिक विरासत का सार्थक संवाद स्वीकार करते हैं। भाषा की दृष्टि से श्री गुरु ग्रंथ साहिब में मध्यकालीन साहित्य की विलक्षण भूमिका दिखाई देती है। इस महान ग्रंथ की शोभा छः गुरु साहिब, 19 संत-भक्त तथा 11 भट्ट कवियों की वाणियां बढ़ाती हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है।

गुरु साहिबान (सिक्ख गुरु) : इस ग्रंथ में छः गुरुओं की वाणी मिलती हैं। पहले इस ग्रंथ को 'आदि ग्रंथ' नाम दिया गया था जिसमें पांच गुरुओं की वाणी थी, परन्तु बाद में दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी ने नवम गुरु अपने पिता गुरु तेग बहादुर जी की वाणी को इसमें संकलित करके 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' नाम दिया। इस महान ग्रंथ में संकलित सिक्ख गुरुओं का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध सूफी विद्वान मौलाना रुमी ने कहा है कि, 'आप दीए की ओर न देखो, दीपक भले अलग-अलग हैं लेकिन उनकी रोशनी तो एक ही है।'

इस महान विरासत के प्रवर्तक गुरु नानक देव जी के महान व्यक्तित्व में फिलासफर, कवि, गायक और पैगम्बरों वाले सारे गुण थे और इन सभी गुणों की झलक और अद्‌भुत प्रतिभा का चमत्कार हमें उनकी रचनाओं में मिलता है।[1] दूसरे गुरु अंगद देव जी ने ज्यादा रचना नहीं की। आप जी के 62 श्लोक श्री गुरु ग्रंथ साहिब में मिलते हैं। आप जी की वाणी का विषय अधिकतर नम्रता, श्रद्धा, प्रभु प्रेम और गुरु -भक्ति है।[2] गुरु अमरदास जी एक सच्चे भक्त थे और आपकी नाम-भक्ति ही आपको एक साधारण मनुष्य से देवता, सेवक, निडर बहादुर योद्धा बना देती है। आपकी जिन्दगी का प्रधान लक्ष्य साधना है। आपकी समूची वाणी रागों में है। भट्टों के अनुसार गुरु रामदास जी की प्रतिभा पारस जैसी थी जो भी इसका स्पर्श करता, वो पारस जैसा हो जाता। गुरु रामदास जी द्वारा रचित वाणी में गुरु और प्रभु के लिए बहुत श्रद्धा थी। आपने श्री गुरु ग्रंथ साहिब के 31 रागों में से 29 रागों में वाणी रची है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित वाणी में सबसे ज्यादा योगदान गुरु अर्जुन देव जी का है। गुरु साहिब के द्वारा रचित साहित्य के अध्ययन के आधार पर हम इनको गुरुमत काव्य का शिखर मानते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएं 'सुखमनी', 'बावन अक्षरी' और 'साहित्यकृति' शीर्षक से हैं। गुरु तेग बहादुर सिक्खों के नवम गुरु, शहीदों के सिरताज, दुनियां के हमदर्द, अद्भुत और अनुपम शख्सियत के मालिक थे। आप गुरु ग्रंथ साहिब के वचनहारे, गंभीर भक्तिरस में मस्त. सादगी भरपूर, रूप-करूप कर्तव्यों को प्रभु का हुक्म मानने वाले प्रतिभा थे। इनकी सारी वाणी पदों में है और ब्रज भाषा में है। इनकी वाणी वैरागपूर्ण और संसार की नश्वरता दिखाकर 'भय काहू को देतु नहिभय मानस आन' को दृढ़ बनाने वाली है।[3]

संत भक्त कवि : वे मध्ययुगीन भक्ति-लहर के वह महापुरुष जिन्होंने मज़हबी कर्म-काण्ड और ज्ञान-काण्ड के स्थान पर प्रेमाभक्ति पर जोर दिया, उन्हें भक्त कहा जाता है। प्रायः ये प्रत्येक प्रांत में हुए जिन्होंने भेदों का खण्डन करके सच्ची दिली श्रद्धा और सिदक को पहल दी। जिन भक्तों की वाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में है, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।[4] बाबा शेख फरीद फारसी के रचनाकार हैं और पंजाबी भाषा के प्रथम कवि हैं। भारतीय सूफी कविता का श्री गणेश इनकी रचनाओं से ही करना चाहिए क्योंकि सूफी काव्य-परम्परा विरासत के शेख फरीद पहले आधारभूत स्तम्भ हैं। बाबा फरीद के 4 शब्द ओर 130 श्लोक श्री गुरु ग्रंथ साहिब में मिलते हैं।[5] त्रिलोचन गोलापुर जिले के गांव बारसी के हैं। आपके वंश सम्बन्धी मतभेद है। कुछ विद्वान आपको महाराष्ट्री ब्राह्मण और कुछ वैश्य मानते हैं। सिरी, गूजरी, धनासरी राग में आपके चार पद हैं। जयदेव (1170) बंगाल के बीर भूम जिले के गांव के हैं। जयदेव संस्कृत भाषा के कवि हैं। 'गीत गोविन्द' इनकी प्रसिद्ध रचना है। गुरु ग्रंथ साहब में राग गूजरी और मारू में आपके दो शब्द हैं।

स्वामी रामानंद उत्तरी भारत में भक्ति-लहर के आगू प्रचारकर्ता कहे जाते हैं और बैराग सम्प्रदाय तो आपको अपना मुख्य आचार्य मानता है। इनके कई शिष्य संत-भक्त कवि गुरुग्रंथ साहब में संकलित हैं। इनके प्रसिद्ध शिष्य कबीर का समय सं. 1455-1575 माना गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि, 'सरल आदमी ही प्रचण्ड होता है, विश्वास परायण मनुष्य ही निरीह होता है, निष्ठावान ही विनीत होता है।[6]

कबीर का व्यक्तित्व आचार्य जी की इस उक्ति की व्याख्या में छिपा हुआ है। ये केवल अपनी आत्मा के पुजारी थे। कबीर ने भाषा की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रूप लावण्यमयी सीधी सादी नारी वस्त्र-आभूषणों की उपेक्षा करती है, लेकिन कोई भी वस्त्र उस नारी को सुशोभित कर उसके आभूषण बन जाते हैं। कबीर की अनुभूति के विषय में है– 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सु पंडित होय' इसी में कबीर की मानवता छिपी है।[7] भक्त रविदास का समय सं. 1441-1571 माना जाता है। इनके श्री ग्रंथ साहिब में 40 पद प्राप्त हैं। इनका प्रधानतम विषय नीच जाति के उद्धारक भगवान् को पुकारना ही है। कोई पद ऐसा नहीं जहां इन्होंने अपने आपको नीच जाति का न बताया हो पर अपने भगवान् पर अखण्ड विश्वास, एकांत निष्ठा, अनन्य भक्ति ने इनका ऐसा उद्धार किया कि इनकी वाणी से गुरु नानक देव भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। धनासरी राग की इनकी 'आरती' से ही प्रेरणा लेकर गुरु नानक ने 'आरती' लिखी। दोनों को मिलाने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी वाणी में गहरी भावुकता के साथ भक्ति में दृढ़ता है।

भक्त सेन को लगभग संवत् 1505 में विद्यमान माना गया है। सम्भवतः ये राजा बीदर के नाई थे। रामानंद की शिष्य-परम्परा में इनका नाम प्राप्त है। इनके कुछ पद मराठी तथा हिन्दी दोनों में ही मिलते हैं। ग्रंथ में इनकी केवल एक 'आरती' प्राप्त है जिसमें गोविन्द की आरती कर वे आनंद मग्न हो जाते हैं। रामानंद भक्ति मार्ग को ठीक से जानता है, इसका भी उन्होंने वर्णन किया है। उनकी आरती में सरल भाषा तथा उनकी नम्रता का परिचय मिलता है। भक्त धन्ना का जन्म लगभग संवत् 1472 माना गया है। रामानंद शिष्यों में भी इन्हें स्थान प्राप्त है। यह सरल-हृदय कृषि-जीवी जाट थे। 'ग्रंथ' में इनके तीन पद दो राग आसा में तथा एक धनासरी में प्राप्त है। कुछ लेखकों ने राग आसा के इनके दो पदों के

बीच के गुरु अर्जुन का पद भी इनका ही समझ लिया है। वास्तव में यह इनके प्रथम पद की व्याख्या है। पहले दो पदों में इनके भक्ति अपनाने का वर्णन है और फिर भगवान की आरती है जिसमें भक्तों के काम संवारने वाले भगवान् से सभी आवश्यक सांसारिक वस्तुएं एवं सद्गृहिणी की भी याचना की है। इनकी आरती इनके भोलेपन को हमारे सामने रखती है। यही जाट की भक्ति है। भक्त पीपा का जन्म लगभग संवत् 1482 माना गया है। ये राजस्थान में गागरोनगढ़ के राजा रहे, लेकिन रामानंद से प्रभावित होकर राजपाट छोड़कर उनके शिष्य बन गए। 'पीपा जी की वाणी' वाणी के संग्रह के कुछ पुरातन अप्रकाशित गुटकों में है। ग्रंथ साहिब में इनका एक ही शब्द प्राप्त है जिसमें इन्होंने 'जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे' मानकर शरीर का महत्व स्थापित किया है तथा गुरु-कृपा से देह में ही ब्रह्म को अनुभव करने की प्रेरणा दी है। भाषा सरल, स्पष्ट एवं पद तुकांत है।

सधना भक्त का जन्म लगभग 14वीं शताब्दी में माना जाता है। ये कसाई का व्यवसाय करते हुए भी स्वतः जीव हत्या नहीं करते थे, ऐसा प्रसिद्ध है। 'ग्रंथ' में केवल इनका एक पद मिलता है। बाहर भी एक अन्य पद के अतिरिक्त इनकी किसी रचना ज्ञात नहीं है। भक्त नामदेव का समय संवत् 1326-1407 माना गया है। महाराष्ट्रीय कवि संत नामदेव अपने आरम्भिक जीवन में सगुणोपासक रहे थे। ये संत ज्ञानदेव से प्रभावित थे। पंढरपुर के बीठल (कृष्ण) इनके आराध्य देव थे। अपने उत्तरकालीन जीवन में इन्होंने पंजाब का भी भ्रमण किया था। तब तक ये निर्गुणोपासक हो चुके थे। मराठी में रचित इनके पदों या शब्दों को अभंग कहा जाता था। इनके ग्रन्थ साहब में इनके 61 शब्द विभिन्न रागों में प्राप्त हैं। 'ग्रंथ' में कबीर के बाद संतों में इनको ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि ये शुद्ध संत भक्त थे। इनमें कबीर की कटु तथा विरोधी वाणियों के स्थान पर मधुर एवं सहयोगी स्वर सुनाई देता है। 'ग्रंथ' में प्राप्त इनके पदों की भाषा हिन्दी होते हुए भी पंजाबीपन से रहित नहीं है। संतों के गुणो के संग्राहक होने के कारण इनका ऐतिहासिक महत्व भी है। भक्त वेणी का जन्म 14वीं शताब्दी में माना जाता है। ये सम्भवतः किसी पश्चिमी प्रांत के निवासी थे। वेणी के वाणी एक अन्य संग्रह में सात शब्द हैं लेकिन 'ग्रंथ' में केवल तीन हैं। एक में योगियों की साधना का वर्णन है तथा दूसरों में ब्राह्याडम्बरों का। अलंकारों के कारण कठिन होता हुआ भी इनका एक पद कवित्व की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ा है। इनका महत्व इस दृष्टि से अधिक है कि गुरु नानक इनके तीनों ही पदों से अत्यधिक प्रभावित थे और उन्होंने यथा समय अपनी वाणी में इनका सदुपयोग भी किया है। भीखन सूफी भक्त थे। आप काकोरी परगना लखनऊ के रहने वाले थे। बड़े विद्वान और कुरान के हाफिज थे तथा शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत को जानते थे। भीखन का देहांत 1631 में हुआ। ये मुसलमान संत प्रसिद्ध हैं लेकिन इनकी रचनाओं को देखकर कुछ विद्वान इन्हें हिन्दु-संत मानने का कयास करते हैं। 'ग्रंथ' में इनके केवल दो शब्द प्राप्त हैं। एक में 'नाम' का महत्व बताया गया है तथा दूसरे में सतगुरु की शरण में जा मोक्ष-द्वार के दर्शन किए हैं। इनकी भाषा सरल स्पष्ट तथा सरस है। सम्भवतः जन्म से मुसलमान होकर भी ये जीवन भर हिन्दू ही रहे।

भक्त सूरदास का जन्म 1586 विक्रमी में ब्राह्मण के घर हुआ। इनका पहला नाम मदन मोहन था। आप बचपन से संगीत, काव्य के प्रेमी थे। संस्कृत, हिन्दी और फारसी के पूर्ण विद्वान थे। लोगों में सूरदास को बहुत मान प्राप्त था। सूरदास को साधु-संतों के साथ बहुत प्रेम था। बाद में ये वल्लभाचार्य के शिष्य हुए। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में भक्त सूरदास की सारंग राग में एक शब्द की यह तुक 'छाडि मन हरि विमुखन को संग' दर्ज है। सूरदास की वाणी में ईश्वर का प्यार, उसमें लीनता और आत्म-समर्पण बताया गया है। भक्त परमानंद वल्लभाचार्य के शिष्य थे। 'मिश्रबन्धु विनोद' में लिखा है कि परमानंद कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और कन्नौज के रहने वाले थे। इनकी कविता का समय लगभग संवत् 1606 से माना जाता है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में परमानंद नाम है। गुरु ने इनका एक शब्द बीड़ (ग्रंथ) में दर्ज किया है।

भाई मरदाना गुरु नानक देव जी का प्रसिद्ध साथी था। वह गुरु नानक-कुल का मिरासी था। गुरु नानक जी के छुटपन से ही साथ रह रहा था। गुरु नानक की

यात्राओं में हर बार वह साथ रहा और भजन कीर्तन के समय रबाब बजाने का कार्य करता रहा। वह संगीत का अच्छा जानकार था। इनका जन्म सन् 1459 बताया गया है। मृत्यु की तिथि निश्चित नहीं है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब के राग-विहागड़ा की वार (पद) में भाई मरदाना के मात्र तीन श्लोक उपलब्ध हैं। इनमें गुरु नानक जी की शैली की प्रधानता है। कुछ विचारकों का मत है कि ये श्लोक भी गुरु नानक देव जी के हैं।

बाबा सुन्दर जी गुरु अमरदास के प्रपौत्र थे। इनके जीवन के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी तो नहीं, परन्तु इतना निश्चित है कि ये 16वीं शताब्दी में उपस्थित थे। कहते हैं कि ये उदासी तबियत के व्यक्ति थे केवल प्रभु भजन में ही दत्तचित्त रहते थे। श्री ग्रंथ साहिब में गुरुओं की 6 'पीढ़ियों' की इनकी एक रचना उपलब्ध है जिसे 'सद्द' कहा जाता है। 'सद्द, पंजाबी में बुलावे को कहते हैं। मनुष्य को ईश्वर घर से बुलावा आना (मृत्यु) ही इसका विषय है। 'सद्द' में कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। कल्पना और भावुकता का सुन्दर समावेश हुआ है।

भक्त सत्ता डूम और राय बलवंड दोनों के विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विचारक इन्हें गुरु अंगद देव जी के यहां कीर्तन करने पर नियुक्त बताते हैं। अन्य इन्हें गुरु अर्जुन देव जी के दरबार का गायक मानते हैं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में राग रामकली की एक 'वार' पर इन दोनों का नाम मिलता है। इस वार में इन्होंने आठ पीढ़ियां कही हैं जिनमें से पांच क्षमा-याचना के भाव से भरी हैं और शेष तीन में तीसरे, चौथे और पांचवें गुरु का गुणगान है। कुछ विचारक इन्हें मरदाना की संतान मानते हैं। जाति से ये भी मिरासी थे। इस वार में काव्यात्मकता और सरल अभिव्यंजना है, ऐतिहासिक तत्व भी उपलब्ध हैं।[8]

भट्ट (भाट) कवि : श्री गुरु ग्रंथ साहिब में गुरुओं, संतों-भक्तों की वाणी के साथ-साथ भट्टों की वाणी भी मिलती है। अंग्रेज विद्वान ट्रम्प ने इनकी संख्या 15 बतायी है तो किसी ने 12। परन्तु साहिब जी के मत से इनकी संख्या 11 है। भट्टों का परिचय इस प्रकार है।[9] भीखा भट्ट सुलतानपुर का रहने वाला और गुरु अमरदास जी का अनुयायी था। इसका वर्णन भाई गुरुदास जी ने किया है। इसके दो सवैये 'महल्ला 3' (अर्थात तीसरे गुरुजी की वाणी) में मिलते हैं। भीखा जस गाने वाला कवि नहीं था अपितु परमार्थ का सच्चा प्रेमी भी था। उसके इस आत्म-स्पर्श ने उसके पुत्रों और भतीजों में भी यह लगन लगाई संत कवि होकर गुरु ज्योति के गीत गाने वाले हुए। भट्टों में कलय अधिक विद्वान कवि था जिसके रचे स्तुति छंद भी सबसे ज्यादा हैं अर्थात् कुल 123 में से 54 छंद। इसने हर गुरु की प्रशंसा में छंदों का उच्चारण किया है। पहले और दूसरे गुरु की स्तुति में तो केवल इसके ही दस-दस छंद मिलते हैं। यह अपनी रचना में जगह-जगह पर अपने आपको 'कवि' कहकर लिखता है– 'कवि कल सुजस गवाउ गुरू नानक राज जोगु जिन गणिउ।' ऐतिहासिक खोज बताती है कि कलय मुगल काल का एक अच्छा प्रसिद्ध कवि था। इसने 'दिल्ली राज बंसावली' नाम की एक पुस्तक लिखी जिसमें 19 छंद हैं। जालप भट्ट के पांच छंद गुरु अमरदास की स्तुति में हैं। एक छंद में स्वयं का 'जलप' नाम लिखता है। यह गोइंदवाल की प्रशंसा गोविन्दपुरी कहकर करता है। आगे अपने अनुभव के आधार पर लिखता है कि कदम वही सफल है जो गुरु की यात्रा के लिए चलते हैं। भलय भट्ट गुरु अमरदास जी का समकालीन था। इसने गुरु साहिब की स्तुति में एक सवैया लिखा है कि जैसे मेघ की बूँदें, वनस्पति के पत्ते, बसंत के फूल, सूर्य चन्द्रमा की किरणें, गंगा की तरंगों का अंत नहीं पाया जा सकता, उसी प्रकार गुरु अमरदास जी की स्तुति अकथनीय है। भलय एक कलाकार कवि है, भले ही हमें उसकी रचना ज्यादा प्राप्त नहीं होती लेकिन उसका एक ही छंद उसकी कल्पना शक्ति का साक्षी है। कीर्त भट्ट भीखे का पुत्र और कलय का छोटा भाई था। उसके आठ छंद हैं। चार गुरु अमरदास जी की स्तुति और चार गुरु रामदास की स्तुति में। वह कहता है कि गुरु अमरदास जी की ज्योति परम ज्योति का रूप है जिसने शब्द- दीप के द्वारा जीवन को नूरो-नूर कर दिया है और यह नदी है जो मन को निर्मल और शीतल करती है। कवि, गुरु रामदास जी के व्यक्तित्व की उपमा करता कहता है कि यह गुरु ज्योति का चन्दन बाबे नानक के समय से सुगन्ध बांटता

आया है। भीखे के भाई सीखे का पुत्र सलय था। इसने भी गुरु अमरदास जी के दर्शन किए थे। यह गुरु रामदास जी की कृपा का पात्र भी रहा था। मालूम होता है कि यह भट्ट परिवार सारा ही सिक्ख था और इनमें से कई कवि थे। सलय ने अमरदास सम्बन्धी एक गुरु रामदास के विषय में दो छंद कहे हैं। वह लिखता है कि तीसरे गुरु की वीर शख्सियत हथियार के साथ-साथ शव्द से बुराई को नष्ट कर देने वाली है। चौथे गुरु हेतु भट्ट कहता है कि आपने बुराइयों को पीछे छोड़कर राजयोग का ताज सिर पर सजाया हुआ है और यह परम ज्योति आदि जुगादि से पूजा का केन्द्र बनी आ रही है। नलय भट्ट गुरु रामदास जी के दरबार में आया था और इसने 16 छंदों का उच्चारण किया था। कुछ छंदों में इसने 'दास' पद का प्रयोग किया है जो कवि की नम्रता का सूचक है। उसने इस रचना में कई छंद-रूपों का प्रयोग किया है। गुरु नानक की गद्दी किस तरह संसारी राज के मुकाबले और राजयोग से काम चला रही है और किस तरह कठिन परीक्षा के बाद अधिकारी को ही यह इज्जत दी जाती है-कवि इसकी प्रशंसा करता है।

परमानंद भट्ट के 13 छंद गुरु रामदास जी की स्तुति में हैं। कुछ विद्वानों ने इनका नाम 'गयंद' बताया है जो ठीक नहीं। सिक्खों में जो 'परमेश्वर' के लिए 'वाहिगुरु' शब्द का प्रयोग होता है, उसका लिखती प्रमाण सबसे पहले इनके सवैयों में ही मिलता है। वलय भट्ट भीखे के छोटे भाई तोखे का पुत्र है। इसने गुरु रामदास जी की स्तुति में पांच छंद लिखे हैं। यह अपने अनुभव के आधार पर कहता है कि इस सतगुरु के दर्शनों से अज्ञान का अंधेरा और मन की तपश मिट जाती है और नाम की दौलत प्राप्त होती है। मथुरा भट्ट गुरु अर्जुन साहिब के दरबार में उपस्थित हुआ था, इसके 14 छंद मिलते हैं। 7 गुरु रामदास जी के बारे में और 7 गुरु अर्जुन सम्बन्धी। कहता है– गुरु रामदास धर्म-पूजा है, मानसरोवर है जिसके किनारे गुरु-मुख हंस कलोलां करते हैं। इसी तरह गुरु अर्जुन जहाज हैं, इस जहाज में बैठकर जिज्ञासु का पार उतारा हो जाता है। हरिवंस के दो सवैये श्री गुरु अर्जुन देव जी की स्तुति में हैं। इनमें भट्ट बताता है कि गुरु ज्योति मरने वाली नहीं, यह गंगा के प्रवाह की तरह सदा रहने वाली अमर है और इसका स्नान मन की मैल को धो देता है।[10]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब मध्यकाल की महान विरासत और सिक्ख धर्म का इष्ट हैं। इस ग्रंथ में गुरुओं के अतिरिक्त भारत के विभिन्न सूफी-संत-भक्तों की वाणी संकलित है। साथ ही साथ भट्टों की वाणी भी मिलती है।[11] इस ग्रंथ में उस समय की भाषाओं का वास्तविक रूप उपलब्ध होता है। साहित्य की दृष्टि से गुरु ग्रंथ साहिब के वाणीकार उच्चकोटि के साहित्यकार हैं। पंजाब के साहित्यकारों (हिन्दी, उर्दू, पंजाबी एवं संस्कृत) पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के अधीन पंजाब के साहित्यकारों ने अनेक ग्रंथों की रचना की। सर्वोत्तम उदाहरण गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य है। आज यदि इस साहित्य के आधार पर हिन्दी साहित्य का पुनः इतिहास लिखा जाए तो गुरु ग्रंथ साहिब की विरासत कई नए अध्यायों द्वारा हिन्दी साहित्य को और अर्थपूर्ण बना सकती है।

संदर्भ

1. कुलवंत कौर, गुरुमत काव्य : एक अध्ययन, चण-डीगढ़ : लोकायत प्रकाशन, 1984। **2.** कुलवंत कौर, गुरुमत काव्य : एक अध्ययन, चण्डीगढ़ : लोकायत प्रकाशन, 1984। **3.** पदम् प्यारा सिंह, आदिग्रंथ दर्शन, पटियाला : कलम मंदिर, लोअर माल, 1973। **4.** पद्म प्यारा सिंह, गुरू ग्रंथ कोश, पटियाला : पंजाबी युनिवर्सिटी, 1977। **5.** दीप, दलीप सिंह, गुरुमत साहित्य प्रवेशिका, चण्डीगढ़ : पंजाब स्टेट युनिवर्सिटी, टैक्सट बुक बोर्ड, 1983। **6.** शर्मा, जी.एल., वाणी श्री गुरु तेग बहादुर, अमृतसर : सुन्दरदास एण्ड सन्ज। **7.** मैनी, धर्मपाल, श्री गुरु ग्रंथ साहिब : एक परिचय, जालंधर और इलाहाबाद हिन्दी भवन, 1962। **8.** सहगल, मनमोहन, गुरु ग्रंथ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1971। **9.** मिश्र, जयराम, श्री गुरु ग्रंथ प्रकाशन, इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा. लि. 1990 ई.। **10.** बेदी काला सिंह, गुरु नानक दर्शन, दिल्ली : पंजाबी प्रकाशन, 1965। **11.** सिंह, तारन, श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी दा साहित्यिक इतिहास, अमृतसर : फकीर एंड सन्ज, 1980।

❑❑

Associate Prof. (Hindi)
G.K.S.M. Govt. College Tanda-Urmar,
(Distt. Hoshiarpur Punjab)
M. : 98785-04652, Email: dkaur751@gmail.com

साहित्यिक क्षेत्र में किशनगढ़ का योगदान

डॉ. सुरेश सिंह राठौड़

साहित्य के क्षेत्र में राजस्थान का पूर्व किशनगढ़ राज्य अपनी अलग पहचान रखता है क्योंकि यहां के राज्याश्रय में वृंद जैसे महान साहित्यकारों ने ही कवित्व नहीं किया बल्कि यहां के राजाओं व राजकुंवरियों ने भी निरंतर साहित्य और कला के क्षेत्र में अपनी रुचि बनाये रखी। किशनगढ़ राज्य के राजवंश ने सदैव कलाकारों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय दिया।

प्रस्तुत शोधलेख का उद्देश्य किशनगढ़ राज्य के राजपरिवार के सदस्यों की कृष्णभक्ति परक काव्य-रचना को रेखांकित करना इस शोधालेख का मुख्य ध्येय है। राजपुताना के इतिहास में किशनगढ़ राज्य के संबंध में बताया गया है कि the chief of Kishangarh belong to the rathore clan of history. Rajputs, and are descended from Raja Udai Singh of Jodhpur. The latter's second son, Kishan Singh, was born in 1575, and remaind in the country of his birth till 1596, when, in consequence of some disagreement with his elder brother, Sur Singh, then Raja of Jodhpur, he took up his abote at ajmer. Obtaining an introduction to akbar, he received from him the district of Hinduan, now in Jaipur, and subsequently, for services rendered in recovering imperial treasure carried off by the Mers, he received a grant of Setholao and certain other districts. In 1611 he founded the town of kishangarh close to Setholao, which is now in ruins, and from this time the state began to be called by its present name.[2] इस तरह किशनगढ़ की स्थापना जोधपुर नरेश उदयसिंह के पुत्र किशनसिंह ने 1611 ई. में की थी, जो स्वतंत्रता से पूर्व देशी रियासत था तथा राजस्थान के एकीकरण के पश्चात अजमेर जिले की एक तहसील बन गया। यहां के राजवंश ने 17वीं शताब्दी से लेकर लगभग 20वीं शताब्दी तक साहित्यिक क्षेत्र में अपनी सेवा प्रदान की। लगभग चार शताब्दियों के इस काल का पूर्वार्द्ध भक्ति रस से तथा उतरार्द्ध शृंगार रस से परिपूर्ण काल था। ऐसे समय में यहां के कवियों ने राधा-कृष्ण को अपना आलंबन बना कर अपनी भक्ति प्रदर्शित की। किशनगढ़ के निकट सलेमाबाद में स्थापित कृष्णभक्ति निम्बार्क सम्प्रदाय के निम्बार्काचार्य की प्रमुख पीठ का प्रभाव यहां के कवियों पर पड़ा जिससे उनके द्वारा रचित काव्य में राधा-कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति भाव प्रदर्शित होती है। इसके साथ ही रीतिकालीन धारा प्रवाह में शृंगारिक रचनाओं का आविर्भाव भी विपुल मात्रा में हुआ।

महाराजा किशनसिंह श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्तिभाव का उल्लेख करते हुए किशनगढ़ के कवि जयसिंह लिखते हैं– *श्री मन्नृत्य गोपाल के, है स्वरूप अभिराम। छोटे श्याम सुजान हैं, बड़े रुचिर बलराम।।2।।*

यह स्वरूप दोऊ सुखद, कृष्णसिंह महाराज। पधराये निज सीस पै, कर सेवा सब साज।।3।।[3]

वीर योद्धा, परम भक्त एवं कवि महाराजा रूप सिंह की भी साहित्य में विशेष रुचि थी। अपने भावुक हृदय एवं भक्तिभाव के चलते उन्होंने लगभग 750 दोहों के ग्रन्थ 'रूपसतसई' की रचना की जो कि रीतिकाल का एक प्रसिद्ध भक्ति परक ग्रन्थ है। इसमें रचित दोहे महाराजा रूपसिंह के रचना कौशल का परिचय देते हैं। श्री कृष्ण के प्रति इनके अनन्य भक्ति भाव का परिचय इनके द्वारा लिखित एक पत्रिका से प्राप्त होता है–

'प्रभुजी इहा रहे कछु नाही करिए गबन भवन दिशि अपने, सुनिये अरज गोसाई। देखी बलख बरफ छू देखी, अधम असुद अवलोके। मध्य प्रदेश देशहू मध्यम, इहां कहा ले रोके? भक्त बछल करुणामय सुख निधि, कृपा करो गिरधारी। रूपसिंह प्रभु विरद लाजत है, ब्रज ले बसोउ बिहारी।।'

प्रस्तुत पद महाराजा रूपसिंह के ईश्वर प्रेम के अतिरिक्त उनके काव्य कौशल का भी परिचय देता है। उन्होंने अनेक फुटकर पदों की रचना की जिससे उनके काव्य में व्यक्त माधुर्य भाव की अनुभूति सहज ही हो जाती है जिनमें से एक पद यहां उद्धृत है–

'अनियारे लोचन मोहन।। माधुरी मूरति देखत ही लालच लागी रह्यो मनमोहन। हटकत मात तात यो भाखत लाज न आवत तोहन। हों अपने गोपाल रंग राती काहि दिवावत सोहन।। संध्या समय खटिक तें निकसी लिए दूध को दोहन। रूपसिंह प्रभु नगधर नागर बस किनें है मोहन।।[5]

महाराजा रूपसिंह के पश्चात साहित्य एवं कला के प्रति विशेष रूचि महाराजा राजसिंह द्वारा रचित साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि वृन्द इनके गुरु थे। कवि वृन्द ने औरंगजेब के दरबार में पयोनिधि पर्यो चाहे मिसिरी की पुतरी[6] नामक समस्या की पूर्ति करके औरंगजेब को प्रसन्न किया था। प्रसन्नतावश औरंगजेब ने कवि वृन्द को अपने पौत्र अजीमुशशान का अध्यापक बना दिया। बाद में 1707 ई. में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह ने अजी मुशशान से कवि वृन्द को अपने राज्य में रखने की इच्छा जाहिर की, जिसे मुशशान ने स्वीकार किया व कवि वृन्द को महाराजा राजसिंह को सौंप दिया।

राजसिंह ने लगभग 24 ग्रंथों की रचना की जो मुख्यतः वैष्णव मंदिरों में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्वों से सम्बंधित है। इनमें बृज भाषा से सम्बंधित संगीतात्मकता एवं मधुरता इनके पदों को और भी अधिक विशिष्ट बनाती है। राजसिंह द्वारा रचित दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें 'बाहू विलास' शृंगार रस से ओत-प्रोत है, जिसमें मुख्यतः रुकमणी के विवाह का प्रसंग है। दूसरा ग्रन्थ 'रसपाय नायक' है जिसमें दो सखियों के संवाद का वर्णन है। राजसिंह द्वारा रचित कुछ फुटकर पद प्राप्त होते हैं जिनमें से एक यहां उद्धृत है– 'ए अखियां प्यारे जुलम करें। यह महोटी लाज लपेटी झुक झुक घूमें भूम परें।। नगधर प्यारे होउहुन न्यारे हाहा तोसों कोटि ररें। राजसिंह को स्वामी श्री नगधर बिन देखे दिन कठिन भरें'।।[7]

साहित्य सेवा में रत इस परिवार से सम्बद्ध होने के कारण महाराजा सावंतसिंह की शिक्षा–दीक्षा का कार्य साहित्यिक वातावरण से परिपूर्ण ऐसे ही अनुपम संस्कारों के मध्य पूर्ण हुआ। बचपन से ही कविता में उनकी विशेष रुचि थी इसीलिए वे 'नागरीदास' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। बड़े होने पर पारिवारिक कलह और राजनीतिक षड्यंत्रों के कारण उनका सांसारिकता और राजसत्ता से मोहभंग हो गया। वे अपनी कविता के माध्यम से अपने इस भाव की व्यंजना करते हुए कहते हैं– *जहाँ कलह है, तहां सुख नाहीं, कलह दुखन को मूल। सभी कलह इक राज में, राज कलह को मूल।।*[8]

तत्पश्चात् सावंतसिंह जी वृन्दावन चले गये तथा वहां रहकर 'नागरीदास' उपनाम से रचना करने लगे। सावंतसिंह जी का राजपाट त्याग कर भक्ति मार्ग की ओर प्रयाण करना उनके कवित्व पूर्ण भावुक हृदय एवं भक्तिभाव को प्रदर्शित करता है। उन्हें संगीत, कला, शास्त्र विद्या, चित्रकला, फारसी, संस्कृत आदि का अच्छा ज्ञान था तथा साथ ही इनमें उनकी विशेष रुचि भी परिलक्षित होती है। नागरीदास जी कृत 'नागरसमुच्चय' में लिखित नागरीदास जी के जीवन परिचय के अंतर्गत नागरीदास जी को श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्य परम्परा

में माना गया है। इनके विषय में भारतेंदु जी लिखते हैं- 'हरिप्रेममाल रस जाल के नागरीदास सुमेर ने। वल्लभ पंथहि दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहि छोड्यो। धन जन मान कुटुंबहि वाधक लखि मुख मोड़यो।।'[9]

नागरीदास जी द्वारा रचित सम्पूर्ण ग्रंथों का संग्रह 'नागरसमुच्चय' है, जिसमें नागरीदास जी द्वारा रचित कुल 69 काव्य ग्रन्थ संगृहीत हैं। नागरीदास जी के काव्य ग्रंथों को तीन भागों (1) वैराग्य सागर (2) शृंगार सागर (3) पद सागर आदि में विभक्तकिया गया है। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ 'इश्क चमन' पर सूफी काव्य का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जिसके प्रतिउत्तर में मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह ने 'रसिक चमन' ग्रन्थ की रचना की। हृदय में भक्तिपरक संतोष जागृत करने वाला नागरीदास जी द्वारा रचित पद इस प्रकार है– *हमारी सबही बात सुधारी। कृपा करी श्रीकुंजबिहारिनि अरु श्रीकुंजबिहारी। राख्यो अपने वृन्दावन में जिहिको रूप उन्ज्यारी। नित्त केलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी।। कलह कलेस न व्यापै इहिठां ठौर विश्वतें न्यारी। नागरीदासहि जनम जिवायौ बलिहारी बलिहारी।।1।।*[10]

नागरीदास की पूज्या राधा रानी स्वरूपा बणी-ठणी का वास्तविक नाम विष्णुप्रिया था। बाल्यकाल से ही इनकी शृंगार एवं साहित्य में विशेष रुचि थी। इसी कारण वे सदैव नख से लेकर शिख तक सजी धजी रहती थी और मारवाड़ में सज-धज कर रहने वाली स्त्री को बण-ठण कर रहने वाली कहा जाता है। विष्णुप्रिया हर समय शृंगार करके सज-धज कर ही रहती थी इसीलिए वे राजमहल में बणी-ठणी नाम से विख्यात हुई। ये महारानी ब्रजकुंवरी के यहाँ पासवान के रूप में कार्य करती थी। ये अपने उपनाम 'रसिक बिहारी' से काव्य सर्जन के कार्य में रत रहती थी।

इतिहासकारों का मानना है कि बणी-ठणी महाराजा सावंतसिंह (नागरीदास) के साथ आजीवन वृन्दावन में रही थी। नागरीदास द्वारा संकलित 'पद मुक्तावली' में बणी-ठणी की रचनाएँ सम्मिलित हैं। नागरीदास द्वारा रचित ग्रन्थ 'नागर समुच्चय' में इनके सौ से भी अधिक पद रसिक बिहारी नाम से संकलित हैं। इनके पदों पर निम्बार्काचार्य श्री वृन्दावन देवाचार्य द्वारा रचित वृन्दावनवाणी 'गीतामृग गंगा' का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इनके द्वारा रचित श्री राधा एवं श्री कृष्ण के प्रेम से सम्बंधित एक पद इस प्रकार है–

'मोहन म्हारे थे कांई हठ लाग्या छोजी। जबां द्यौं घर, छोड़ों छेहड़ों, रस बातां पाग्या छोजी।। आंख्यां थांकी रतनाली, सारी निस रा जाग्या छोजी। 'रसिक बिहारी' प्यारा म्हानै थे, औरां सू अनुराग्या छोजी।।[11] इनके द्वारा रचित पदों में श्री राधाकृष्ण के जन्मोत्सव एवं प्रेमलीला, सांझीलीला, राधाजी का मान, अभिसार, विरह संयोग, सुरति तथा विविध ऋतुपर्वादि का वर्णन मिलता है। 'सालूड़ा बेस' की लोक परम्परा में श्रीराधाजी के वर्णन से सम्बंधित पद इस प्रकार है– *'प्यारी जी का सालूड़ा मैं आवै छै सुगंधी रूड़ी बास। अंग भरमजी गंध लुभाया भंवर भवै आसपास।। लटपटै बेस आणि उभा रह्या आँगण कुंज निवास। रसिक बिहारी पवन दुरावै खासा होय खवास।।*[12] 'श्री कृष्ण के तीखे नयनों का वर्णन करते हुए वे कहती हैं– *तीखे नैन कन्हाई तैंडे पल-पल जुल्म करन्दे। भौहें तो कमान बनी हैं, पलकें, तीर परंदे।। कित्ते घायल परे कराहें, दिल नहीं धीर धरंदे। रसिक बिहारी नित वार करंदे टारे नहीं टरंदे।।*[13]

महाराजा राजसिंह की दूसरी रानी बांकावती का वास्तविक नाम ब्रजकुंवरी था परन्तु विवाहोपरांत बांकावत गौत्र में उत्पन्न होने के कारण इन्हें बांकावती नाम से जाना जाने लगा। इन्होंने श्रीमद्भागवत का पद्यबद्ध अनुवाद 'ब्रजदासी भागवत' नाम से प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ की रचना दोहा-चौपाई छंद में है। इस ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक ब्रज है किंतु राजस्थानी शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग है। इनका कविताकाल वि.स. 1790 के आस-पास माना जाता है।

सुन्दरकुंवरी का जन्म रूपनगर में 1734 ई. में हुआ। इनकी माता रानी ब्रजकुंवरी एवं सौतेले भाई सावंतसिंह थे जिनके सानिध्य से साहित्यिक क्षेत्र में इनकी रुचि जागृत हुई। सुन्दरकुंवरी ने सलेमाबाद के श्री निम्बार्कतीर्थ पीठाधीश्वर श्री वृन्दावन देवाचार्य जी से निम्बार्क वैष्णवीय दीक्षा ग्रहण की जिसका उल्लेख सुन्दरकुंवरी ने अपने ग्रन्थ 'मित्र शिक्षा' में अपना परिचय देते हुए किया है– *'श्री वृन्दावन देव प्रभु, तिनकी दासित*

छाप। लह बाल वय में सबहि, उदये भाग्य अमाप।। श्री प्रभुजी निज दास्ता, छाप जवै मोहि दीन। तव वय वर्ष चतुर्थ में, हौं जु हुती मति हीन।।'[14]

सुंदरी कुंवरी की काव्य और संगीत दोनों में ही विशेष रुचि थी। उन्होंने मात्र पंद्रह वर्ष की आयु में ही साहित्य सर्जन का कार्य आरम्भ कर दिया था। संगीत में विशेष रुचि होने के फलस्वरूप उन्होंने अपने पदों में संगीत की तकनीक का उपयोग करके उन्हें व्यवस्थित किया। इन्होंने राधा-कृष्ण को अपनी भक्ति का आलंबन बनाया जिसमें इन्होंने राधा कृष्ण की युगल रूप में उपासना की है। इन्होंने मुख्य रूप से शृंगार रस से ओत-प्रोत भक्ति पदों की रचना की है। इन्होंने कई साहित्यिक ग्रंथों की रचना अपने जीवन काल में की जिनमें 'नेह निधि', 'वृन्दावन गोपी महात्म्य', 'संकेत-युगल', 'रंधर गोपी महात्म्य', 'रसपुंज', 'प्रेम सम्पुट', 'सुर संग्रह', 'भाव प्रकाश', 'मित्र शिक्षा', 'युगल ध्यान' तथा 'राम रहस्य' आदि हैं। इनके द्वारा लिखित भक्ति ग्रंथों में श्री कृष्ण के बालरूप का बहुत ही सुन्दर वर्णन मिलता है– *'रज मांहि मगन कैसो खेलत है। सुभग चिकुट तन धूरि धूसरित डेलिक किलक सकेलत है। चौंकि चकित चंहु औरनि चितवत छिपि माटी मुख मेलत है। सुन्दर कुंवरी घुटुरुनी दौरत कोटिन छवि पग पेलत है।*[15] सुन्दरकुंवरी अपने ग्रन्थ 'रसपुंज' में नृत्यरत श्री कृष्ण को देखकर राधा और गोपियों के मन में उठने वाले भावों का चित्रण करती हैं– *'स्याम रूप सागर में नैन वार पार थके, नाचत तरंग अंग अंग रगमगी है। गाजन गहर धुनि, बाजन मधुर वैन, नागिन अलग जुग सोंधे सगमगी है। भँवर त्रिर्भताई, पान में लुनाई, तामें मोती मणि जालन की जोति जगमगी है। काम पौन प्रबल धुकान लोपी लाज तातें, आज राधे लाज की जहाज डगमगी है।।*[16]

छत्र कुंवरी किशनगढ़ के महाराजा सरदार सिंह जी की पुत्री थी। इनको 'सिरताज कुंवरी' के नाम से भी जाना जाता है। कवित्व शक्ति इन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में मिली थी। इन्होंने 1788 ई. में शृंगार रस से पूरित 'प्रेम विनोद' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें अपने वंश का परिचय देते हुए ये लिखती हैं– *'रूप नगर नृप राज सिंह जिन सुत नागरीदास तिन पुत्र जू सरदार सिंह, होत न यामें जास।'* इन्होंने अपने ग्रन्थ में श्री कृष्ण और राधा के युगल किशोर की विभिन्न क्रीड़ाओं का चित्रण किया है। एक पद में इन्होंने चौसर खेलने का वर्णन किया है– *बाढ़ी चित चाह दोऊ, खेलत उमाह भरे। दसा प्रेम पूर छिल अंग दरसत हैं। प्रेम दांव देत प्रिय झूंठे ही रूंगट कहै, गहे पानि-पानि रिस मिसै परसत हैं।*[17]

महाराजा बहादुरसिंह कलाप्रेमी और संगीत प्रेमी थे। सुन्दर कुंवरी की तरह इन्होंने भी संगीतात्मक कविताओं की रचना की। इनके द्वारा रचित दो-दो और तीन-तीन तुकों के ख्याल और टप्पे प्रसिद्ध हैं। जैसे– *'हा हा बदन दिखाय दृग, सफल करें सब कोय। रोज सरोजन के परै, हँसी ससी की होय।। दुलहिन बदन दुरात हौ, क्यों सकुचति सुकुमार। सब देखन आतुर भई, चातुर पट निरवार।। घूंघट पट खोल्यो सखी, भोरी दृग लटकाय। मनो मदन ससि-मीन कूं, डोरी-जाल सुलाय।।*[18] हालांकि इनकी साहित्य क्षेत्र में रुचि थी लेकिन साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशेष योगदान नहीं दे पाए। महाराजा कल्याणसिंह भी कविता लेखन का कार्य किया करते थे इनके द्वारा रचित एक बधाई प्रसिद्ध है– *'आनंद बधाई नन्द जू के द्वार। ब्रह्मा विष्णु रूद्र धुन कीनी तिन लीनो अवतार।। जन्मत ही घर घर प्रति लक्ष्मी बांधत बंदनवार। भूप कल्याण कृष्ण जन्महि पे तन मन कीनो वार।।*[19]

महाराजा मदनसिंह के बाद महाराजाधिराज श्री यज्ञनारायण सिंह जी किशनगढ़ के उत्तराधिकारी बने। यज्ञनारायण सिंह जी बाल्यकाल से ही कृष्ण उपासना में रत रहते थे। 'किशनगढ़ राजवंश की पुष्टिमार्गीय काव्यकृतियाँ' ग्रंथ में कृष्ण भक्तिसे सम्बंधित इनके पद संकलित हैं। यज्ञनारायण जी द्वारा रचित पदों में कृष्ण की बाल लीलाओं, वैराग्य व भक्ति, ब्रज वर्णन, वृन्दावन-प्रेम, कलिकाल वर्णन, कृष्ण भक्ति, राधा कृष्ण का युगल प्रेम आदि का वर्णन हुआ है। इनके द्वारा रचित पद इस प्रकार है– *'सखी है सब जुर जुर आई खेलन फाग बसंत पंचमी आज। नये नये पुष्प नये नये पतुवा अरी कुछ गडवा लई साज।। नये नये वसन नये-नये भूषण मदन मदन ही को राज। यज्ञपुरुष संग हिल*

मिल खेली छांडी लोक की लाज।।[20]

किशनगढ़ राज्य के राजाओं ने राज पाट के साथ-साथ कवि हृदय भी पाया था जिसके चलते उन्होंने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को अपनी भक्ति का आलम्बन बनाकर विपुल मात्रा में साहित्य की रचना की। यहाँ तक की इनकी अन्य कलाओं जैसे कि संगीत और चित्रकला में भी हमें राधा और श्री कृष्ण के ही विभिन्न स्वरूपों के दर्शन होते हैं। इनकी इतनी विपुल मात्रा में साहित्य रचना होने के बावजूद भी साहित्य के विशेषज्ञों का ध्यान इस ओर नहीं गया। यही कारण है कि इन परम कृष्ण भक्त कवियों एवं कवयित्रियों को भक्तिकालीन और रीतिकालीन साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त नहीं हो पाया और इनके द्वारा रचित साहित्य केवल एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित हो कर रह गया।

संदर्भ

1. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.सं.9। **2.** IMPREIAL GAZETTEER OF INDIA PROVINCIAL SERIES RAJPUTANA, published by BOOKS TREASURE, JODHPUR, 2007 PAGE NO 271)।

3. डॉ. राजकुमारी कौल, 'राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा', अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं.-99। **4.** डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं. 147। **5.** डॉ. राजकुमारी कौल, 'राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा', अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 102। **6.** hi.wikipedia.org/wiki/वृंद। **7.** डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.सं.148। **8.** भक्तवर डॉ. फैयाज अली खाँ, 'भक्तवर नागरीदास', अभिनव प्रकाशन, अजमेर प्रथम संस्करण 2015. पृ.सं.26। **9.** नागरीदास, 'नागर समुच्चय', पृ.सं. 4, दोहा संख्या 93। **10.** नागरीदास, नागर समुच्चय', पृ.सं.30, दोहा संख्या 118। **11.** डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.स.160। **12.** डॉ. अविनाश पारीक, 'किशनगढ़ का इतिहास', राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2014. पृ.सं. 160। **13.** डॉ. अविनाश पारीक, वही प्रथम संस्करण 2014, पृ.160। **14.** डॉ. अविनाश पारीक, वही, प्रथम संस्करण 2014, पृ.स.151। **15.** डॉ. मोहनलाल गुप्ता, किशनगढ़, राज्य का इतिहास शुभदा प्रकाशन, जोधपुर, प.सं.-112। **16.** डॉ. अविनाश पारीक, उपरोक्त, पृ.153। **17.** डॉ. मोहनलाल गुप्ता, किशनगढ़ राज्य का इतिहास, शुभदा प्रकाशन, जोधपुर, पृ.सं.112। **18.** डॉ. राजकुमारी कौल, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं.142। **19.** डॉ. राजकुमारी कौल, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 143। **20.** पूज्यपाद गोस्वामी श्री श्याम मनोहरजी महोदय, किशनगढ़ राजवंश की काव्यकृतियां, धीरेंद्र पुस्तक भंडार, किशनगढ़, 2015, पृसं. 100-101।

❑❑

सह आचार्य हिंदी विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बांदरसिंदरी, किशनगढ़
मो. 9928344566
Email-srathore@curaj.ac.in

यदि आप किसी व्यक्ति से उस भाषा में बात करते हैं जिसे वह सीखकर समझने लगा है तो बात उसके दिमाग में जाती है। लेकिन यदि आप उससे उसकी भाषा में बात करते हैं तो बात सीधे उसके दिल तक जाती है। **- नेल्सन मंडेला**

पग घुंघरू बांध मीरा नाची

डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा

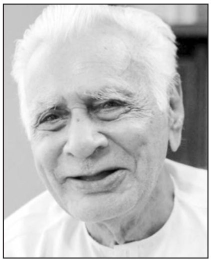

लगभग 500 वर्ष पूर्व सोलहवीं शताब्दी में राजस्थान राज्य में अवतरित नारी जाति को धन्य करने वाली कृष्णभक्त मीराबाई हिन्दी भक्ति साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखती है, यद्यपि हिन्दी साहित्य के इतिहास में आज तक उसको अपेक्षित ऊंचा स्थान प्राप्त नहीं है, जबकि गिरिधर की दीवानी मीरा का नाम भक्ति-भारती की मधुमय धरोहर है। कृष्ण भक्ति की विरहवह्नि में विदग्ध व्यक्तित्व का नाम है मीरा। सच तो यह है कि सम्पूर्ण भक्ति काव्य में आराधना और उत्सर्ग, समर्पण तथा विसर्जन की अन्यतम मूर्ति कोई है तो वह है मीरा। उसके ऐकान्तिक प्रेमोन्माद में राजसीपन तिनके की तरह उड़ गया; कुल-मर्यादा ओस की तरह विलीन हो गयी; लोक लज्जा की धूल उड़ गयी और अपने आराध्य को रिझाने के लिये 'पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।' पैरों में पञ्चतत्त्व का घुंघरू बांधकर जो 'प्रकृति' अनन्त काल से अनादि पुरुष को रिझाने के लिये नृत्य करती आ रही है, मीरा उसी की साकार प्रतिमा थी।

साहित्य की समीक्षा करने वालों ने मीरा की भक्ति को ज्ञान की गांठ बना दिया है, जबकि वह भक्ति की भागीरथी हैं। हम गांठों को खोलने में लगे हैं, और गांठें हैं कि खुलती नहीं। यहां दुराग्रह नहीं चाहिए, यहां आग्रह या विग्रह नहीं चाहिए। यहां समझदारी और समर्पण चाहिए, यहां मीरा का इकतारा चाहिए, मीरा के घुंघरू चाहिए, मीरा की करताल चाहिए क्योंकि भक्ति, कोई शास्त्र नहीं, यात्रा है। भक्ति कोई सिद्धान्त नहीं, जीवन रस है। भक्ति, शास्त्र-शास्त्रों में नहीं लिखा है, भक्त के हृदय में लिखा है– भक्ति शब्द नहीं, सिद्धान्त नहीं, एक जीवन्त सत्य है।

नारद भक्ति सूत्र कहता है कि भक्ति की पहचान उन्मत्तता है, पागलपन है (यज् ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति) मीरा को हम ने देखा है नाचते हुए सड़कों पर, उन्मत्त हो गई, पागल हो गई। घर के लोग, प्रिय जन परिवार के लोग बड़े दुःखी थे, मीरा राजवंश की है और सड़कों पर नाच रही है। मार डालने की चेष्टा की क्योंकि इससे परिवार की बदनामी होती है। राज घराने की महिला, 'लोग कहें मीरा भई बावरी।' कुल की मर्यादा भूल गई, लोक लाज त्याग दी। नाचते-नाचते जीवगोस्वामी के मन्दिर पर पहुंच गई, वहां स्त्री प्रवेश वर्जित। कृष्ण का मंदिर है। वह नाचने लगी। भीतर प्रवेश करने लगी तो आश्रम के सन्त ने रोक दिया। बोले यहां स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है। मीरा ने कहा कि पुरुष तो एक ही है (एको ब्रह्म द्वितियो नास्ति), शेष प्रकृति है। कृष्ण ही पुरुष है, शेष तो उसे गोपन करने वाली गोपियां हैं। यह दूसरा पुरुष कहां से आ गया। उसी दिन गोस्वामी नींद से जाग गए। सारा ज्ञान भक्ति के आगे समर्पित हो गया, भक्ति की प्रचण्ड धारा में बह गया। मीरा के पागलपन ने मिथ्या आडम्बरवाद का पर्दा फाड़ दिया। कहने लगी 'मैं उस जन की तलाश में हूँ जो चाक तेरा नकाब कर दे।'

छुटपन से ही कृष्ण के प्रति लगन लगी, मीरा बाद में कृष्ण को ही अपना पतिदेव मानकर जीवन पर्यन्त उनकी भक्ति और आराधना मे लगी रहीं। इसी कारण से ब्याही होकर पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने पर भी वे अपने लौकिक जीवन के पति भोजराज के साथ वैवाहिक जीवन का सुख नहीं ले सकी। पति की मृत्यु के उपरांत उसकी मानसिक शांति चली गयी। सास, ननद आदि की झिड़कियां, अपशब्द, अपमान, तिरस्कार आदि उन्हें सहन करना पड़ा। राजमहल के सुखभोगों को त्याग कर, महल छोड़कर समाज में साधु-संतों, ज्ञानी पुरुषों के मध्य रहते हुए, पैरों में घुंघरू बांधकर, हाथ में इकतारा, करताल ले अपने इष्टदेव प्रेमी कृष्ण के प्रेम में, अपने आपको भूलकर, नाचने, गाने व जनसमाज के मध्य भक्ति भावना को जगाते हुए वह अपना जीवन व्यतीत करती थी। परिवार के लोग मीरा के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसे 'कुलनाशी' कहकर उसका अपमान करते थे। लेकिन मीरा उनकी निन्दा और तिरस्कार की जरा भी परवाह नहीं करती थी। जनमानस के मध्य उनका अच्छा खासा सम्मान हुआ। मीरा को जनता का प्रेम और समर्थन भरपूर प्राप्त था। अशांत जीवन, अकेले में भटकना और समाज के लोगों के बीच वे अपने भक्तिपूर्ण गीतों के कारण लोकप्रिय बन गयीं। मीरा के भक्ति-गीतों ने जनमानस के मन को आकर्षित किया।

भक्ति में समर्पण होता है। मीरा दासी है, कृष्ण उसका पति भी है और स्वामी भी है। ईश्वर के समक्ष बहुत छोटा हो जाने से ही समर्पण का आनन्द मिलता है। दासी मीरा और लाल गिरधर का रिश्ता बनता है। वह चरण कमल की ही दासी बनती है। 'म्हानै चाकर राखो जी। चाकरी में दरसण पास्यू, सुमरण पास्यूं खरची। भाव भगति जागीरी पास्यूं, जनम जनम की तरसी।' ईश्वर का विराट स्वरूप है। विराटता को भक्त भूल नहीं सकता है। विराट होकर भी वह भक्त के समीप है। उसके समर्पण के कारण जब भी कभी उसे भक्त ने याद किया है वह अपनी विराटता छोड़कर भक्त की सहायता के लिए आया है। 'हरि तुम हरो जन की भीर, द्रोपदी की लाज राखी थें बढ़ायो चीर, बूढ़तो गजराज राख्यो, भगत कारण रूप नरहरि धार्यो आप सरीर।'

परमात्मा के प्रति इसी समर्पण की परिभाषा है मीरा। सांसारिक प्रलोभनों और भय को दरकिनार कर मीरा जिस निडर भाव से अपने लक्ष्य के प्रति बढ़ती चली गई, वह साहसिक अभियान एक स्त्री का रहा, जहां राजसत्ता की लोह अर्गलाएं भी उसका रास्ता नहीं रोक सकीं। इसका अर्थ यह है कि जीवन मृत्यु के भय से मुक्त होकर जीने में जो तेज प्राप्त होता है, उसके आगे राजसत्ताएं भी झुक जाती हैं। मीरा की यह निर्भीकता, नारीमात्र के लिए ही नहीं, पुरुषमात्र के लिए भी अनुकरणीय है। जहां ऐसी निर्भीकता होगी, वहां संसार व उसके कठोर नियमों व परम्पराओं से विद्रोह अवश्य होगा। यह विद्रोह हर बड़ी प्रतिभा को करना पड़ा। चाहे वह बुद्ध हो, कबीर हो या मीरा? यह विद्रोह सांसारिक व सामाजिक जड़ता के विरुद्ध है। यह विद्रोह निर्भीकता का पर्याय है मीरा जैसी साधिका के लिए अनिवार्य है। इसके बिना उसका व्यक्तित्व निखर नहीं सकता था। लीक पर चलकर सब विलीन हो जाते हैं बिना किसी खास पहचान के। लीक छोड़कर चलने वाला पहचान बनाता है। एक भारतीय नारी का अपने अपार बलशाली ससुराल परिवार से उनकी सारी मिथ्या मर्यादाएं तोड़ कर मुक्ति का सन्देश सारी नारी जाति के लिए महान आदर्श है।

मीरा के गीतों में काव्य की रीति जैसे– ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति अलंकार जैसे काव्यगुण बिल्कुल नहीं हैं। मीरा का प्रेम, विरह, मिलन-सुख, दुःख, आनन्द, वेदना, शोक, आंसू बहाना, रोना आदि लोकायत मानसिक भावनाओं को पार करते हुए अलौकिक एवं आध्यात्मिक भावों की दिव्य अनुभव के रूप में ही वे हमें प्रतीत होते हैं। मीरा का काव्य गीति-काव्य का आदर्श प्रस्तुत करता है। भले इनके गीतों में सूर जैसी साहित्यिकता नहीं परन्तु अनुभूति की तीव्रता अवश्य है। लोकगीत होने से मीरा के गीतों में सूरदास के पदों की अपेक्षा साधारणीकरण की मात्रा अधिक है। शब्द-चयन, अलंकार-विधान, चुभती उक्तियां सूर में अधिक हैं, परन्तु हृदय की जो गहराई मीरा में है वह सूर में सर्वत्र उपलब्ध नहीं होती। मीरा का दर्द दीवानापन उनके काव्य को निराला बना जाता है। मीरा के कुछ पद तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। पर सबमें प्रेम की तल्लीनता समान रूप से

पाई जाती है। मीरा के काव्य में सूर की क्रीड़ा, तुलसी की दृढ़ता और कबीर की रहस्यात्मकता के साथ-साथ प्रेम का ऐसा पुनीत उन्माद था, जो आज भी पाठक के हृदय को पिघलाकर नेत्रों के द्वारा अपना महान प्रभाव प्रत्यक्ष कराता है।

मीरा अनेक प्रकार के संघर्षों और विपरीत शक्तियों का सामना करते हुए अपने दृढ़ मन एवं भक्ति की तीव्रता के कारण वह अपने भक्ति मार्ग में अग्रसर होने वाली साहसी एवं दृढ़ मनस्वी नारी के रूप मे हमें दिखाई देती है। मध्ययुगीन राजस्थान में राजाओं के पुरुष सत्तात्मक दंभ और अहंकार का अपनी भक्ति एवं अहिंसात्मक रीति से सामना करने वाली तथा संघर्ष करने वाली हिन्दी साहित्य की एकमात्र नारी केवल मीराबाई ही है। इसी वजह से महात्मा गांधी जी ने उन्हें 'अहिंसा सत्याग्रही' कहकर उनकी प्रशंसा की है। मीरा को प्राप्त एकमात्र सहयोग और समर्थन जनता के प्रेम और सहयोग ही है। वास्तव में मीरा जनकवि है, जनता की कवि है।

म्हारां री गिरधर गोपाल, दूसरो ना कोई। दूसरो ना को साधां सकल लोक जोई। भाई छांड्या बन्धु छांड्या, छांड्या सगा सोई। साधां संग बैठ बैठ लोक लाज खोई। भगत देख्यां राजी हुई, जगत देख्यां रोई। अंसुवां जल सीच सींच प्रेम बेल बोई। दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई। राणा विष रो प्यालो भेज्यो, पीय मगन होई। अब तो बात फैल पड़ी, जाणै सब कोई। मीरा री लगन लागी, होणी हो जो होई।। इस एक पद में मीरा की निर्भीकता, उसका तत्त्वज्ञान, उसकी भक्ति, उसका विद्रोह, उसकी निष्ठा, उसकी बेपरवाही, सब व्यक्त हो जाते हैं। यह प्रह्लाद, ध्रुव आदि पुराणोक्त भक्तों की सी निर्भीकता की स्थिति है, जो उनकी व मीरा की प्रसिद्धि का समान कारण है। मीरा के वैयक्तिक जीवन का संघर्ष उनके गीतों में ध्वनित नारी स्वर की सामाजिक जागृति आदि हिन्दी भक्ति आन्दोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाएगी।

मीराबाई के पिता रतनसी और श्वसुर महाराणा सांगा का देहान्त हो जाने से उनके जीवन में अधिक कठिनाइयां बढ़ गईं। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद (जनवरी 30, 1528 ई.) रतनसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। ऐसी मान्यता है कि इसने मीराबाई को तकलीफ नहीं दी किन्तु वह भी अधिक समय तक जीवित नहीं रहा और बून्दी के राव सूरजमल हाड़ा के हाथों मारा गया। इसके बाद रतन सिंह का भाई विक्रमाजीत मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। वह स्वभाव से ही क्रूर शासक था। उसे मीरा के हाव-भाव, क्रिया-कलाप अच्छे नहीं लगे। उसने उनकी सभी गतिविधियों को राजघराने की गरिमा के विरुद्ध मानते हुए उन्हें काफी कष्ट भी दिये। इतना ही नहीं प्रचलित पारिवारिक परम्परा के अनुसार सास-नणद लड़ती है, परेशान करती है। राणा क्रोध करता है, मीरा पर पहरा रखता है तथा अंकुश की सीमा यहां तक बढ़ जाती है कि वह मीरा को ताले में बंद कर देता है- *हेली म्हांसूं हरि बिनि रह्यो न जाय। सास लड़ै मेरी नणद खिजावै, राणा रह्या रिसाय। पहरो भी राख्यो चौकी बिठार्यो, ताला दियो जड़ाय। पूर्व जन्म की प्रीत पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, और न आवे म्हांरी दाय।*

मीरा बाई की जीवनधारा ही उनकी भक्ति-भावना का क्रमिक विकास है। वे सम्प्रदायमुक्त, गुरु-शिष्य परम्पराविहीन परम वैष्णव भक्त थीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार, जहां-जहां मीरा के चरण पड़ते गए, वहां-वहां राह बनती गई, सीधी-सरल प्रेम की राह, जो न किसी दर्शन की मुखापेक्षी थी और न किसी सम्प्रदाय की अनुवर्तिनी। मीरा का समस्त भावलोक आद्योपान्त प्रियतम प्रधान है, पंथ वहां गौण है, लगभग नगण्य। वस्तुतः मीरा में आग्रह नहीं है, न छन्दों का, न अलंकारों का, न राग का, न संगीत का। वह अनुराग की अनुववर्तिनी रही है। उसमें तो वल्लभ की प्रेमाभक्ति, चैतन्य की मधुराभक्ति, रैदास की निर्गुण भक्ति और सूर की समर्पण भक्ति का मिश्रण हो गया है। कृष्ण गूढ़ हैं, कृष्णभक्ति गूढ़तम है, लेकिन मीरा सहज है, मीरा की भक्ति सहजतम है, मीरा का चरित्र सहजाती सहज है। मीरा समर्पित होती है तो पूरी तरह समर्पित होती है। मीरा आस्था रखती है तो पूरी आस्था रखती है। वह लोकलाज छोड़ती है तो पूरी तरह छोड़ती है। वह नाचती है तो पूरी तन्मयता के साथ नाचती है।

मीराबाई सगुण वैष्णव भक्त ही नहीं अपितु नारी चेतना का जागरण करने वाली आदर्श महिला भी थी जिसने कबीर की भांति सामाजिक और धार्मिक आडम्बरों

का सरल भांति, किन्तु प्रभावशाली वाणी में विरोध किया। उसने शांत रहकर जिस संघर्ष का शंखनाद किया वह समस्त नारी जाति के स्वाभिमान को जगाने वाला है। मीरा बाई भक्ति आन्दोलन के अन्य सन्त भक्तों की साम्प्रदायिक नहीं है। मीरा की कविता अपने समय के मतमतांतरों से पूरी तरह अप्रभावित रही। शास्त्र का आग्रह तो उसको छू भी नहीं गया। यह इस बात का प्रमाण है कि यह भक्ति के एक नारी के सामन्ती दमन के विरुद्ध विरोध की, सहज-लौकिक अभिव्यक्ति है। उनकी कविता में नारी के असहाय और अबला होने का तीव्र बोध है। तथापि मीरा ने खोखले आडम्बरवाद के सब बंधन तोड़ दिए। वह नारी स्वातंत्र्य की प्रतीक बन गई। उन्होंने आडम्बरवाद की जंजीरें तोड़ कर घुंघरू पहन लिए। द्वारका पुरी में कई वर्ष निवास करके अन्त में वहीं वह अनन्त (कृष्ण) में लीन हो गई।

मीरा भारत के प्रधान भक्तों में तो है ही साथ-साथ हिन्दी काव्य में एक उच्च स्थान की अधिकारिणी है। उनका काव्य आंसुओं के जल से सिक्त पल्लवित एवं पुष्पित प्रेम बेल की मनोहारिणी सुगन्ध से सुवासित है। मीराबाई की भक्ति माधुर्य-भाव की है और सचमुच वह इस क्षेत्र में तुलसी औन सूर से आगे बढ़ जाती है। तुलसी का दास्य भाव भक्तिमें मर्यादावाद, राम की अत्यंत निकटता में बाधक है, सूर ने अपनी माधुर्य-भाव की भक्तिमें गोपी और राधा के माध्यम से कृष्ण सान्निध्य प्राप्त करना चाहा है पर मीरा स्वयं राधा बन गई। उनके सांवलिया और उनमें कोई दुराव एवं छिपाव नहीं है। उनमें मिलन, उत्सुकता, आशा और प्रतीक्षा से मीरा के पदों में रहस्यात्मकता है। इस का कारण माधुर्य भावा की भक्ति में रहस्यात्मकता का समावेश आवश्यक है।

मीरा ने अपने जीवनकाल में न तो किसी को अपना दीक्षा गुरु बनाया तथा न ही अपना कोई शिष्य बनाया। मीरा न तो किसी पंथ में दीक्षित हुई, न उन्होंने अपना कोई पंथ चलाया। सन्त रैदास जिनके जन्म के वर्ष के सम्बन्ध में विद्वानों में भारी मतभेद है, को मीरा का गुरु मानने की परिकल्पना एक भ्रान्त धारणा है। मीरा और सन्त रैदास के जन्म के वर्ष में लगभग 90 से 128 वर्षों का अन्तर है। मीरा के चित्तौड़ त्यागने से पूर्व 1527 ई. में रविदास जी संसार छोड़ चुके थे। 'नाभादास की भक्तमाल' में चित्तौड़ की एक झाली रानी द्वारा रैदास को गुरु बनाने का उल्लेख है जिस को भ्रान्तिवश लोगों ने मीरा से जोड़ दिया है। यदि मीरा ने रैदास को अपना गुरु बनाया होता तो नाभादास की भक्तमाल तथा अन्य सन्त ग्रन्थों में इसका उल्लेख अवश्य हुआ होता। विद्वान लोग रैदास को मीरा का गुरु मानने के पक्ष में मीरा के जिन पदों का उल्लेख करते हैं, वे वस्तुतः मीरा के प्रामाणिक पद न होकर प्रसिद्ध मीरा-छाप के पद हैं। मीरा और रैदास दोनों की भक्ति परम्परा भिन्न-भिन्न है। अब तक इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल पाया है कि मीरा कब, कैसे और कहां सन्त रैदास के सम्पर्क में आई? सन्त रैदास के जीवन का अन्तिम समय काशी में ही बीता तथा उनका शरीरान्त भी काशी में ही हुआ। वि.सं. 1573 (1516 ईस्वी) में विवाह के पश्चात् चित्तौड़गढ़ में रहने तथा वि. सं. 1590 (1533 ईस्वी) के लगभग चित्तौड़ का परित्याग करने, तत्पश्चात मेड़ता और वृन्दावन में प्रवास करने की काल अवधि में ऐसा कोई प्रमाण, दस्तावेज आदि नहीं मिलता है जो मीरा एवं सन्त रैदास के गुरु-शिष्य सम्बन्ध को परिपुष्ट कर सके।

मीरा का भक्ति-दर्शन, शास्त्र की अपेक्षा लोक से अधिक जुड़ा हुआ है। मीरा को लोक से अलग नहीं किया जा सकता। लोक विश्वास, लोक मान्यताएँ, लोक स्वीकृतियां और लोकश्रुतियां मीरा को पूरे समाज में, पूरे राष्ट्र में जीवित रखे हुए हैं। लोक से विचलित होते ही मीरा सिमटकर कुछ विद्वानों की चर्चाओं के बुद्धि विलास का विषय बन कर रह जाएगी। किन्तु लोक कभी इस बात को स्वीकार नहीं करेगा। वह अपने तरीके से, अपने बल पर मीरा को सार्वकालिक और सार्वदेशीय रूप से जीवित रखेगा। मीरा देश, काल और व्यक्ति की सीमा को तोड़कर आज भी जीवित है, इसके पीछे लोकबल है। मीरा की लोकप्रियता के मूल में लोक ही है। ▫▫

अमोलक राम कालोनी, गली नं. 2, कृष्णानगर, गामड़ी रोड, कुरु क्षेत्र-136118, मो. 80530-49390

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा- *हरिचरणामृत कर वर विष भी पचा गयी गंभीरा/ नचा गई नट-नागर को भी, नाची तो बस मीरा।* **-सम्पादक**

संस्कृत नवलेखन में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री मञ्जुनाथ का योगदान

डॉ. मंगलराम

बीसवीं सदी की संस्कृत साधना के शिखर पुरुष कवि शिरोमणि सम्पादक- सार्वभौम देवर्षि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री 'मञ्जुनाथ' गजलविधा में संस्कृत काव्य रचना में प्रेरक भूमिका निभाने वाले अद्भुत विद्वान् हैं। आपकी जन्मभूमि और कर्मभूमि जयपुर नगर है। आपका जन्म आषाढ़ मास की कृष्णा सप्तमी को सन् 1889 ईस्वी में जयपुर में हुआ। पिता द्वारकानाथ भट्ट तथा माता जानकी देवी के पुत्र शास्त्रीजी अन्योक्ति तथा आत्मावलोकन विधा में परम प्रवीण माने जाते हैं। आप द्वारा रचित विपुल संस्कृत साहित्य के प्रकाशनार्थ जयपुर में सन् 1985 ईस्वी में 'मंजुनाथ स्मृति संस्थान' की स्थापना की गई। आधुनिक संस्कृत वाङ्गमय को तीन युगों में विभाजित किया गया है– राशिवडेकर युग, भट्टयुग और राघवन् युग। इनमें सन् 1930-1960 ईस्वी का समय 'भट्ट युग' के नाम से अभिहित किया गया है। श्री काशीनाथ शास्त्री के पटु शिक्षण से परिष्कृत शास्त्रीजी की प्रतिभा को देखकर श्री शिवकुमार मिश्र ने स्वयं अपने हाथों से इनके विषय में प्रशंसोक्ति लिखी- 'लेखपटुरयं बटुः'।

बीसवीं सदी के आरम्भिक काल में संस्कृत के प्रमुख पत्र 'संकृत रत्नाकर' का शास्त्रीजी ने सन् 1904 से 1949 ईस्वी तक सफल सम्पादन करते हुए उसमें निरन्तर सम्पादकीय लेख लिखे। संस्कृतसर्जना प्रेरक शास्त्रीजी 'भारती' संस्कृत मासिक पत्रिका जयपुर के भी सम्पादक रहे। 'संस्कृत मृतभाषा नहीं है' इस आन्दोलन को जीवनपर्यन्त निभाते हुए और अपनी रचनाशक्ति से सिद्ध करते हुए इन्होंने आदर्शरमणी, असमसाहसम्, अनावृता आदि उपन्यास, 'किन्तोः कुटिलता' जैसे अनेक ललित निबन्ध लिखे। शास्त्रीजी जैसे संस्कृत रचनाकारों के सुप्रयासों का ही सुपरिणाम है कि विण्टरनिट्ज जैसे इतिहासकारों ने भी संस्कृत के विषय में लिखा कि यह एक ऐसी जीवित भाषा है जिसमें कवि सम्मेलन होते हैं, शास्त्रार्थ होते हैं और पत्रिकाएं निकलती हैं। शास्त्रीजी सरस्वती, माधुरी आदि हिन्दी पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक एवं लेखक भी थे। आपने सन् 1926 से 1932 ईस्वी तक महाराजा कॉलेज जयपुर में इंटर, बीए आदि पढ़ाते समय बिना रटाए सरल प्रायोगिक पद्धति द्वारा संस्कृत शिक्षण कार्य किया। संस्कृत शिक्षण को सुलभ करने के लिये आपने 'संस्कृत सुबोधिनी', 'संस्कृतसुधा', 'सुलभसंस्कृतम्' नामक पुस्तकों की रचना की।

शास्त्रीजी की प्रथम दो पत्नियों के देहावसान के पश्चात् तृतीय पत्नी रामा देवी ने इनका जीवन भर साथ निभाया। इनके दो पुत्र कलानाथ शास्त्री और कमलानाथ तथा दो पुत्रियां जया एवं विजया हैं। आप संस्कृत कॉलेज जयपुर में राजकीय सेवा से साहित्य विभागाध्यक्ष के रूप में सन् 1942 ईस्वी में सेवानिवृत्त होकर 4 जून 1964 ईस्वी में ब्रह्मलीन हो गए।

सन् 1944 ईस्वी में जब जयपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का बत्तीसवां अधिवेशन हुआ तो शास्त्रीजी स्वागत मन्त्री थे। वृन्दावन, आगरा, भरतपुर जैसे नगरों में हुए हिन्दी साहित्य

सम्मेलन के अधिवेशनों में तो आप गए ही थे। संस्कृत साहित्य सम्मेलन का तो शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन हो जिसमें वे न गये हों या कवि सम्मेलन की अध्यक्षता न की हो। विशुद्ध शास्त्रीय पाण्डित्य चर्चा के लिये जयपुर में एक 'पण्डित परिषद्' को प्रारम्भ किया गया जिसमें प्रौढ विद्वान् संस्कृत माध्यम से ही पत्र पढ़ते या चर्चा करते थे। आप अनेक पण्डित परिषदों में गए और पत्रवाचन किया। पण्डित चन्द्रधर गुलेरी ने अपनी 'पुरानी हिन्दी' पुस्तक में शास्त्रीजी को संस्कृत घनाक्षरी के प्रणेताओं में अग्रणी कहा है। पण्डितराज जगन्नाथ कृत रस गङ्गाधर की 'सरला टीका' लिखकर आपने अपने मौलिक चिन्तन द्वारा काव्य शास्त्र की परिभाषाओं को नव आयाम दिये। निःस्वार्थ विद्याध्ययन, अध्यापन और साहित्य सेवा से आप समाज को अपना योगदान देना ही आदर्श मानते थे। 'कल्याण' के तो आप नियमित लेखक थे ही, प्रत्येक विशेषांक में आपका एक लेख होता था।

राजस्थान में संस्कृत भाषा के विषय में नीति निर्धारण, समीक्षा और शिक्षाव्यवस्था के लिये सरकार द्वारा एक 'विशेषज्ञ समिति' की स्थापना सन् 1955 ईस्वी में श्री लक्ष्मीलाल जोशी की अध्यक्षता में की गई जिसमें शास्त्रीजी को राज्यपाल ने सदस्य मनोनीत किया। राजस्थान साहित्य अकादमी के भी आप संस्थापक सदस्य रहे। वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रथम दीक्षान्त समारोह के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन के सभापति आप ही निर्वाचित हुए। आकाशवाणी जयपुर से आपकी वार्ताएं एवं नाटक प्रसारित होते रहते थे। इनका 'मञ्जुला' नामक नाटक काफी लोकप्रिय रहा। रीतिकालीन कवि बिहारी की सतसई का संस्कृत दोहों में अनुवाद कर उसका कतिपय अंश जब आपने 1930 ईस्वी में प्रकाशित किया तो संस्कृत और हिन्दी जगत् में इसकी बहुत चर्चा हुई। शास्त्री जी हिन्दी में भावप्रवण कहानियां लिखते थे। वे मूलतः संस्कृत के कथाकार थे और उनमें बंगला कथा साहित्य की भाव तरलता देखी जा सकती है। उन्होंने कल्याण के ईश्वरांक में दलित साहित्य की प्रतिनिधि क्रान्तिकारी कहानी 'भक्त के भगवान' शीर्षक से लिखी।

सवाईमाधोपुर के निकट बरवाड़ा ग्राम में 'चौथ माता मन्दिर' बहुत प्रसिद्ध है। इस देवी की हिन्दी, ब्रजभाषा और ढूंढाड़ी में काव्यमय प्रशस्ति शास्त्री जी ने लिखी। इन्होंने कैलादेवी के प्रति 'कपिलास्तोत्र' संस्कृत में आर्या छन्द में लिखा। साहित्य सम्मेलनों में आपके वैदुष्य को देखकर आपको 'कविशिरोमणि', 'साहित्यवारिधि', 'कविसार्वभौम' आदि उपाधियां प्रदान की गई। वस्तुतः आपकी वाणी संस्कृत थी, दिनचर्या रचनात्मक थी और चिन्तन सारगर्भित था।

सन् 1944 ईस्वी में गान्धीजी के 75 वर्षों के होने पर संस्कृत के तेरह प्रतिनिधि कवियों से काव्याञ्जलि प्रेषित करने को कहा गया जिनमें शास्त्रीजी भी एक थे। 'गांधीगुणगौरवम्' शीर्षक से दी गई काव्याञ्जलि का अंश इस प्रकार है– *पूर्णः कर्णधार इव धीरं धुर्यकान्त्या लसन्/ शान्त्या यो नियच्छति स्म राजनीतिनौरवम्/ भारतविभवकृते धार्मिकयुधि स्थिरोऽसौ/ न्यग्रहीच्च वक्रदलं चक्रमिव कौरवम्। मंजुनाथ माननीय मान्तरमहिम्ना सदा/ श्लाघन्ते द्रढिम्ना यं हि नृपमिव पौरवम्। धार्मिक धनिष्ठैर्मान्यमण्डलमहिष्ठैरपि/ गीयते गरिष्ठरद्य गान्धीगुणगौरवम्।/ सान्द्रमानन्दमाविन्दन् गान्धिवर्याभिनन्दने।/ भट्टश्रीमथुरानाथशर्मा निर्मित-वानिदम्। शास्त्रीजी कृत 'गोविन्दवैभवम्' नामक काव्य, भक्तिरस से आप्लावित, मार्मिक रचना है। इस काव्य में गुम्फित जाह्नवी को सम्बोधित, दो पद्यों में आपने कहा है कि हे जाह्नवी! मेरे जीवन की पाली हुई यही इच्छा है कि यह शरीर अन्त में तुम्हारी तरंगों से पवित्र हो जाए- जन्मनि जातु कृतं न हितं/ मम देवगणो दुरितं किमपोहतु।/ जाह्नवि! कं शरणं परियामि/ ममोद्धरणं किल कः परिशोचतु।।/ दीनमुपायविहीनमिमं/ दयया परिगृह्य गिरं मम बोधतु।/ देहविमोकदिने भुवनेश्वरि! गात्रमिदं पुलिने तव लोठतु।।*

शास्त्रीजी संस्कृत कविताओं के माध्यम से स्वतन्त्रता संघर्ष का समर्थन करते रहे। गान्धीजी को जब जेल हुई तो उन्होंने बड़े चुटकीले ढंग से लिखा था कि कतिपय चापलूस मुखबिरों की वजह से देश नेता बन्दी तो बना लिए जाते हैं, किन्तु ऐसा लगता है जैसे मच्छरों ने हाथी को कैद कर लिया हो– *नृपतिभवनघूकैरेतकैर्जजपूकैर/ निभृतनिगडबद्धान्*

देशनेतृन् निरीक्ष्य।/ नियतमुचितवक्ता वक्तुमीशीत नूनं/ मशकदशनमध्ये दन्तिनः सञ्चरन्ति।। प्रतिदिन दोनों हाथों से मुद्गर घुमा कर व्यायाम अभ्यासी, कुशल तैराक एवं शास्त्रीय संगीत मर्मज्ञ शास्त्रीजी की दृष्टि में स्त्रियों का आदर्श सुगृहिणी, गृहकार्यदक्ष, लज्जाशीलता एवं पारिवारिक सुख बनाये रखना था। स्त्रियों की अतिवाचालता एवं उद्दण्डता उन्हें लेशमात्र भी प्रिय नहीं थी।

शास्त्रीजी की काव्य प्रतिभा का प्रथम योगदान, संस्कृत में नव विधाओं की अवतारणा है। उन्हें परम्परागत कविजगत से भिन्न प्रयोगशील कविता का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने नवीन वर्णिक छन्दों तथा ब्रजभाषा के प्रचलित छन्दों में संस्कृत कविता को ढाला। घनाक्षरी, सवैया, दोहा, चौपाई, सोरठा, कुण्डलिया, छप्पय, बरनै, चवपैया, पद्धरि, सुन्दरी, अश्वधाटी, लवंगलता, चकोर, मरहटा, अमृतध्वनि, मत्तगयंद, मुक्तहरा, उल्लाला, अरविन्द, किरीट आदि विभिन्न छन्दों में प्रवाहमयी सरल और सरस भाषा में शास्त्रीजी संस्कृत कविता लिखने में परम पारंगत थे। अश्वधाटी छन्द द्वारा आपने 'साहित्यवैभवम्' काव्य में बतलाया है कि व्यक्ति अतिराग, रमणी से न करे अपितु गंगा में डुबकी लगा स्वयं को आसक्तिविहीन कर, पवित्र कर ले–

किं गाढरागपरिपङ्गादनारतमनङ्गाकुलोऽभिरमसे/
शृङ्गारवीथिनवभृङ्गायितो रतितरङ्गान्तरापतसि किम्।
ङ्गामवाप्य भृशमङ्गान्युदस्य हृदि रङ्गान्त-राहिततमं/
त्वं गाय भूरिभयभङ्गाय तोषिततुरङ्गान-नाङ्घ्रिकमलम्।।

लावनी छन्द में निबद्ध भगवान् कृष्ण की रासलीला वर्णन में, गेय लय पर, छेकानुप्रास का शब्दचयन दर्शनीय है– *जयति जगदानन्दनकारी। माधवो मनसिजमदहारी। गोपिकाजनजीवनधारी। सकलनिज भक्तभीतिहारी।*

संस्कृत गद्य में नवलेखन की परम्परा स्थापित करते हुए शास्त्रीजी ने समालोचनाएं तथा समाचार समीक्षाएं लिखीं। अधिकतर कवि दो भाषाओं को मिलाकर ही, आधुनिक कविता लिखते हैं, किन्तु शास्त्रीजी ने आठ भाषाओं तक सम्मिश्रण कर, 'इन्द्रधनुष' द्वारा, नव कीर्तिमान स्थापित किया। आपने कथ्य और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में नव सूत्रपात किया। जिन पदार्थों के लिए प्राचीन संस्कृत में शब्द नहीं मिलते शास्त्रीजी ने ऐसे पदार्थों के लिये ध्वनिसाम्य से उनका संस्कृतीकरण किया। जैसे मोटर को 'मरूत्तर' बाईसिकल को 'वायुशकल' कहना। कई शब्दों को अर्थ में रूढ़ मानकर उन्हें संस्कृत से व्युत्पादित मान लिया जैसे 'महान् उत्सवान् लाति' रूप में 'महल' शब्द की व्युत्पत्ति की है। इसी प्रकार विकेट को 'विकट' कहना। कहीं कहीं उन्होंने देशी शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे खिड़की को 'खिडक्किका' कहना। आपकी कविता में प्रसाद गुण और अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। भारत देश को देवमूर्तिवत् आराध्य बताते हुए राष्ट्रीय आस्था जगाने हेतु, आपने एक सुन्दर ग़ज़ल लिखी है– *अहो श्रीभारताभिख्योऽतिमुख्यो दिव्यदेशोऽयम्। अपि ध्यायेत् सुरेशो यं, स भूमेः सन्निवेशोऽयम्। हिमाद्रिः प्रोन्नते मौलौ, चकासच्चामरं धत्ते। उदन्वद्धौतपादाब्जो, नरेशानां नरेशोऽयम्।*

शास्त्रीजी प्रकृति चित्रण में अतिरुचिकर दिखाई देते हैं। वसन्त सुषमा का चारु चित्रण, आनुप्रासिक छटा में करते हुए आपने वृक्ष, पुष्प, सरोवर, कोयल, भ्रमर इत्यादि समस्त कामसाधनों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है– *वनविटपेषु भूरि शोभते कुसुमघटा रोचते सरोजखण्डसुषमा सरसि सरसि। भाति सहकारे फल-कोकिलकुहूनां रवो/ मधुकरयूनां स्वनः सरसां पयसि पयसि।। मंजुनाथ रसिकमनस्सु मदलक्ष्मीर्भाति/ दृश-मुपयाति कामचर्चासौ रहसि रहसि। मन्ये मधुपर्वणि मनो-भूर्मद-जन्मोन्माद- महकते विशङ्क निजमुद्रया मनसि मनसि।।*

आजकल स्वार्थी मित्रता पनप रही है, इस विषय में शास्त्री जी लिखते हैं– *दुर्जनमैत्री पूर्वतः प्रीतिं प्रकटयतीव। स्वार्थविभङ्गे कुत्रचित् स्नेहं विघटयतीव। / स्नेहं विघटयतीव बहिः सद्भावं भजते। मुखमात्रे मधुरत्वमेति ह्यदि कल्मषमयते। / असमक्षे मित्रस्य गुप्तमपवादानेत्री। स्वार्थमात्रसाराऽस्ति सुखेऽसौ दुर्जनमैत्री।।*

□□

(आचार्य, संस्कृत विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर-342001)
55 A, Nehru colony Ratanada
(Jodhpur) - 342011, Mo. 8824539164

हिन्दी सेवी साहित्यकार पं. गिरधर शर्मा 'नवरत्न'

ललित शर्मा

पं. गिरधर शर्मा 'नवरत्न' हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग के एक ऐसे स्वनामधन्य व्यक्तित्व थे, जो न केवल एक साहित्यकार थे, अपितु एक सिद्धहस्त अनुवादक और हिन्दी के उत्थान में स्वयं को होम कर देने वाले सच्चे राष्ट्रभक्त थे। उनका जन्म 6 जून 1881 ई. को भारत की प्रथम नगरपालिका वाली नगरी झालरापाटन (जिला- झालावाड़ राज.) में हुआ था। वे झालावाड़ राज्य के झाला राजपरिवार के राजगुरु थे।

पं. गिरधर शर्मा 'नवरत्न' ने युवावस्था से अपनी मृत्यु के तीन घण्टे पूर्व तक लेखन कर हिन्दी साहित्य का जो सारस्वत भण्डारा भर, वह अनुपमेय है। वे उत्कृष्ट रचनाओं के शिल्पी, सफल अनुवादक और राष्ट्रीय भावनाओं के रूप में 'द्विवेदी युगीन विद्वानों की श्रेष्ठ परम्परा का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्हें हिन्दी साहित्य का 'मिल्टन' कहा जाता है। मिल्टन की भांति उनकी 50 वर्ष की आयु में चक्षु ज्योति चली गई थी। शेष 30 वर्ष तक उन्होंने बोलकर अपनी रचनाएं लिखवायी। विश्व में ऐसी साधना का उदाहरण कहीं-कहीं ही मिलता है। वे संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी, बांग्ला, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, ब्रज, फ्रेन्च, जर्मन भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त अनेक अनुवाद भी किये, जो हिन्दी के क्षेत्र में मील के पत्थर साबित हुए। उन्होंने योगीराज भर्तृहरि, महाकवि माघ, रविन्द्रनाथ टैगोर की क्रमशः नीतिशतक, शिशुपाल वध, गीतांजलि व उमर खैय्याम की रूबाइयों के अनुवाद हिन्दी में करके न केवल अनुवाद क्षमता का परिचय दिया, अपितु हिन्दी व अन्य भाषाओं को आपस में निकट लाने की भी पुरजोर कोशिश की। उनके द्वारा उमर खैय्याम की रूबाइयों का संस्कृत में 'अमर सूक्ति सुधाकर' नाम से किये अनुवाद से कवि बच्चन ने प्रेरणा ली थी और मुधशाला की हाला के प्याले ढाल-ढाल कर काव्य प्रेमियों को दिये। पं. नवरत्न की इस अनुवाद पुस्तक का तब वास्तविक मूल्य जाना जर्मन संस्कृतज्ञों ने और उस समय उसकी कीमत 1 पाउण्ड होते हुए भी विद्वानों ने उसे खरीदा। पं. नवरत्न द्वारा गीतांजलि का जो हिन्दी अनुवद था, वास्तव में वह साहित्य का प्रथम पद्यानुवाद था, जिसे स्वयं टैगोर ने भरतपुर (राज.) में सुनकर पं. नवरत्न की अनुवाद कला की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। पं. नवरत्न की इस अनुवाद कला से हिन्दी जगत में एक नया मोड़ आ गया था। महाकवि निराला ने पं. नवरत्न को हिन्दी जगत का ऐसा प्रथम कवि माना था, जिन्होंने अतुकांत शैली को जन्म दिया, जिसका प्रमाण 1911 में प्रकाशित उनका खण्ड काव्य 'सावित्री' है।

पं. नवरत्न ने अपने जीवन में व्यापक जनमानस के लिए लिखा-रचा। जिसमें हजारो

देशवासियों की इच्छाएं और सपने समाहित थे। पं. नवरत्न ने गुलाम भारत की दुर्दशा को देखकर यह समझा था कि देश को परतंत्रता से उबारने में हिन्दी का स्थान सर्वोच्च होना आवश्यक है। इसी आशय से उन्होंने देश के अनेक भागों की यात्रायें करके अनेक हिन्दी मंचों, संस्थाओं की स्थापना की व सहयोग दिया ताकि हिन्दी प्रचार का कार्य नियमित और निरन्तर होता रहे। उनका का यह विश्वास था कि भारत में ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाये, जिसमें प्रत्येक विषय की शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो।

1918 में बम्बई में हिन्दू महासभा के राष्ट्रीय अधिवेशन के अध्यक्ष पं. मदन मोहन मालवीय थे। उसी में पं. नवरत्न ने मंच से ही सिंह गर्जना करते हुए कहा था, 'मालवीय जी! दुनिया आपको आदर देती है, तो दे! लेकिन गिरधर शर्मा से तो आप तभी आदर पायेंगे, जब आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को हिन्दी विश्वविद्यालय में परिवर्तित कर देंगे। 'पं. नवरत्न की इस सिंह गर्जना से उनकी कर्मठता, निडरता और हिन्दी के प्रति अथाह प्रेम का परिचय मिलता है। 1918 ई. में ही दिल्ली में स्थापित प्रथम राजपूताना मध्य भारत सभा के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन की अध्यक्षता पं. नवरत्न ने ही की थी, जिसमें उन्होंने देश की जनता को अपना सारा काम हिन्दी में सम्पन्न करने का संदेश दिया था। इस अधिवेशन में तब सेठ जमनालाल बजाज, चांदकरण शारदा और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे स्वतंत्रता के दीवाने मौजूद थे। इससे पूर्व 1915 में बम्बई में पं. नवरत्न कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी से मिले और विशद चर्चा में उन्होंने गांधीजी को देश की स्वतंत्रता के लिये हिन्दी अपनाने की सलाह दी और अगले वर्ष ही लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन में देश की राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' घोषित कर दी गई।

पं. नवरत्न ने देश में हिन्दी के उत्थान, प्रसार के लिये 1906 में स्वयं के संपादन में 'विद्या भास्कर' पत्र का प्रकाशन कर इन्दौर से 'वीणा' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ करवाया। 1906 में ही उन्होंने चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' को प्रेरित कर जयपुर में 'साहित्य संसद', 1912 में झालरापाटन में 'राजपूताना हिन्दी साहित्य सभा' भरतपुर में, 'हिन्दी साहित्य समिति', 1914 में इन्दौर में 'मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति' की स्थापना करवायी। देश के कई विश्वविद्यालयों, साहित्य संस्थानों की स्थापना में उन्होंने तन, मन और धन से सहयोग दिया। इस कार्य में उनके अनन्य सहयोगी था, सेठ बिनोदीराम-बालचन्द (झालरापाटन) का परिवार।

भू-दान प्रणेता बिनोबा भावे को उनकी भूदान यात्रा में झालरापाटन आने पर पं. नवरत्न ने अपने परिवार की आर्थिक स्थिति की भी परवाह न करते हुए अपनी जागीर के चार ग्राम भूदान यज्ञ को समर्पित कर दिये थे। पं. नवरत्न ने हिन्दी भाषा के उत्थान के लिये तत्कालीन भारत की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं, पत्रों में अपनी रचनाओं से क्रान्ति की लौ जगायी थी। हिन्दी को भारत भर में स्थापित करने के लिये उन्होंने अनेक साहित्यकारों से स्वयं सम्पर्क कर उन्हें कलम के संघर्ष द्वारा हिन्दी को स्थापित करने के लिये तैयार किया। पं. नवरत्न की हिन्दी के प्रति अटूट निष्ठा के कारण आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, निराला, दिनकर, पं. सूर्यनारायण व्यास, क.मा. मुंशी जैसे राष्ट्रीय साहित्यकारों ने उनकी अपने लेखन में मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी।

पं. नवरत्न ने अपनी मौलिक रचनाओं के साथ-साथ तकनीकी विषयों तथा प्राचीन पौराणिक गाथाओं पर जहां कई पुस्तकें लिखी, वहीं शेक्सपियर, स्कार्ट, फिटराल्ट, गोल्डस्मिथ, वर्डसवर्थ, टेनिसन की रचनाओं के भी उन्होंने सुन्दर, सटीक हिन्दी काव्यानुवाद किये, जो हिन्दी साहित्य के कंठहार बने। उन्होंने युवाओं को दिशा-निर्देश के लिये जहां 'कठिनाइयों में विद्याभ्यास' पुस्तक लिखी, वहीं नन्हें शिशुओं, बालकों के लिये भी सरल ककहरा, शिशुगीत और अन्य बाल रचानाएं भी लिखी, जो आज भी प्रासंगिक हैं। पं. नवरत्न ने अपने जीवनकाल में लगभग 150 ग्रन्थ रचे जिनमें से 125 प्रकाशित व शेष हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं। इनमें से तीन चौथाई ग्रन्थ काव्य के हैं। जिनमें खण्ड-काव्य, कविता संकलन, दोहावलियां, नीति सूक्ति सुधाकर, लम्बी कविताओं का संकलन, प्रकृति सम्बन्धी कविताएं, नई धारा की रोशनी व स्वच्छन्द शैली की रचनाएं हैं। उनकी चिन्तनपरक लेखन में आत्मोत्सर्ग, जागरण, स्वतन्त्रता, फिरंगियों के प्रति रोष, हिन्दी-भारती का गौरव, प्राचीन आध्यात्मिक

नैतिक औदात्य का स्मरण, पतनोन्मुख सांस्कृतिक स्थिति का जीवन्त चित्रण, पाखण्डवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावनाएँ राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति, स्त्रियों में नैतिकता की भावना तथा वृद्ध विवाह का विरोध आदि के भाव मुखरित हैं।

पं. नवरत्न की मौलिक कार्य प्रवृत्तियों में सबसे सशक्त प्रवृत्ति राष्ट्रीय काव्यधारा की रही, जो राष्ट्रीय विमुक्ति की भावना और राष्ट्रीय गौरव से सम्पन्न थी। उनकी प्रबल मान्यता थी कि 'जब तक वाणी व भाषा की स्वतन्त्रता नहीं होगी, तब तक राष्ट्र की स्वतन्त्रता पूर्ण नहीं होगी। जहां स्वभाषा का अपमान और परभाषा का सम्मान होता है, वहां के वासी निश्चित ही दास होते है'। 1918 ई. में इन्दौर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन में जब अध्यक्ष महात्मा गांधी थे, तब स्वागताध्यक्ष पं. नवरत्न थे। इस सम्मेलन में पं. नवरत्न ने स्वयं के द्वारा रचा राष्ट्रगान सुन्दर स्वर में प्रस्तुत किया था, जो हिन्दी का प्रथम राष्ट्रगान था, जिसमें भारत के सांस्कृतिक वैभव का जीवन्त दिग्दर्शन है :-

जय-जय प्यारे देश, रम्य हमारे देश।
दृग तारे, जग उजियारे, हिम के प्यारे देश।।

उनके मन में भारत के लिये असीम भक्तिभाव था। उन्होंने देश का गुणानुवाद कर भारतीयों की प्रसुप्त अस्मिता को इस प्रकार जगाया था-

सब देश चाकर है भारत के वाह-वाह।
एक मात्र सरदार अन्नदाता भारत है।।

वे भारत को समृद्धि के ऐसे शिखर पर खड़ा देखना चाहते थे कि विश्व उसके गौरव को निहारा करे। पं. गिरधर शर्मा की हिन्दी के प्रति कटिबद्धता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर काशी के विद्वत् समाज ने उन्हें 'नवरत्न', हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 'साहित्य वाचस्पति, झालावाड़ राज्य ने 'विद्या वाचस्पति', सनातन धर्मसभा कलकत्ता ने 'काव्यालंकार', चतुःसम्प्रदाय वैष्णव महासभा पाटलीपुत्र ने 'व्याख्यान भास्कर', मध्य भारत विन्ध्य सभा इन्दौर ने 'विद्या महार्णव' और संस्कृत सभा कलकत्ता एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय ने संयुक्त रूप से 'प्राच्य विद्या महार्णव' की उपाधि से अलंकृत कर सम्मानित किया था।

पं. नवरत्न ने राज्याश्रय में रहने पर भी कभी राजशाही व फिरंगियों के सामने अपना शीश नहीं झुकाया। उनके जीवन में नेत्र ज्योति का अंधकार, युवा पुत्र की मृत्यु, स्वयं के शरीर का टूटना जैसे प्रकोप आये, लेकिन सभी का उन्होंने अपनी जिजीविषा के बल पर डटकर सामना किया, जो उनकी समाधि पर अंकित उनके द्वारा रचे इस छंद से अभिव्यक्त होती है-

अनुचित सत्ता वशीभूत हो शीश झुकाना,
कायरता का काम सदा जिसने था जाना।
रहा सदा स्वाधीन किया निज मन का चाहा,
दिया सत्य उपदेश उच्चतर चरित निबाहा।
दुःखों से न डिगा न फूला सुख में आकर,
सोता है इस ठोर वही कवि 'गिरधर नागर'।

पं. नवरत्न अपनी मृत्यु से तीन घण्टे पूर्व तक भी 'श्रीमद्भागवत' का हिन्दी अनुवाद करने में निमग्न रहे। इस अनुवाद में उन्होंने मूलभाव को जीवित रखा व उसी के मूल छन्द का प्रयोग किया। अन्ततः 30 जून 1961 को भारत का यह द्विवेदी युगीन राष्ट्रभक्त हिन्दी-सेवी क्रान्तदर्शी साहित्य मनीषी अखण्डानन्द में लीन हो गया। आज देश और हिन्दी भाषा दोनों स्वतन्त्र तो हैं, परन्तु आवश्यकता है पं. नवरत्न जैसे सच्चे और समर्पित राष्ट्रीय साहित्यकारों की, जो इस विषम घड़ी में समाज और देश को हर मायने में सही दिशा निर्देश दे सकें।

❏❏

'अनहद' जैकी स्टूडियो
15, मंगलपुरा, झालावाड़-326001 (राज.)
मो. 9829896368

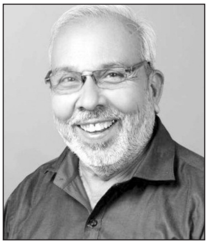

हरिवंश राय बच्चन का हालावाद

जितेंद्र निर्मोही

'मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता', इस जग में सभी साधु बने रहना चाहते हैं वह क्या है जिसे छिपाये जाने पर साधु समझा जाता है? जीवन में ऐसा क्या है जिसे छिपाने पर साधुवाद मिलता है? संसार में जो जपता है उसे जपना और जो तपता है उसे तपना का क्रिया-बोध कराया जाता है। प्रश्न यह है कि जिसका समग्र जीवन सरस व सपाट रहा हो, क्या वह साधु नहीं है? इसी भाव-बोध से सृजित हालावाद के प्रवर्तक, 'मधुशाला' के रचनाकार हरिवंश राय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर 1907 को इलाहाबाद (प्रयागराज) में हरिवंश पुराण की कथा के श्रवण व जाप के फलस्वरूप हुआ। बच्चन जी की सरलता, सजगता, आत्मीयता, गंभीरता एवं आडम्बर रहित जीवन ने उन्हें महान बनाया। विगत वर्ष ख्यातनाम गीतकार चन्द्रसेन विराट कोटा प्रवास में आये तो उनसे वार्ता करने पर इस तथ्य की पुष्टि हुई कि कवि सम्मेलनों का बृहद् रूप सन् 1935 से हमारे सामने आया जिसके बच्चन नायक रहे। उनके बाद की पीढ़ी में श्रद्धेय बाल कवि बैरागी व चन्द्रसेन विराट जैसे लोग आते हैं। बच्चन की अमर कृति 'मधुशाला' बच्चन की पर्याय बनी रही, तत्कालीन समय में इसे मंचों से खूब सुना गया। निसंदेह बच्चन का काव्य जीवंत व व्यावहारिक है। वह छायावाद की कारा को तोड़कर एक नये उत्तर छायावादी युग का रुझान खड़ा करने का संकेत देता है।

डॉ. जीवन प्रकाश के अनुसार 'बच्चन की काव्य भाषा का सर्वाधिक महत्व उनकी शब्द समाहार शक्ति में निहित है।' बच्चन जी का कथन है कि 'मैं लिखता इसलिए हूं कि अपने को व्यक्त करना ही मेरा जीवन है।' संभवतः यही है अभिव्यक्ति की निजी अनुभूत स्वछन्दता। कवि यहीं से अपना मौलिक स्वरूप बनाये रखने में सक्षम होता है। जिन्दगी जीना बड़ा दुश्कर है, जीवन में उल्लास भी है और अवसाद भी। कहीं दोनों का मिश्रण भी आम आदमी जी लेता है पर कवि उसे अनुभूति से परख कर शब्द देता है– हंसने के क्षण पाकर हंसते, रोते हैं पा रोने के क्षण/ स्मृति की आई है बेला, कर पाये न इसकी अवहेला/ आ भूले हास रुदन दोनों मधुमय होकर दो-चार पहर/ है आज भरा जीवन मुझमें कि आज भरी मेरी गागर।

इस तरह कृति 'मधु कलश' का संचयन होता है। महादेवी भी इसी प्रकार के भाव रखती हैं 'जग पीड़ित रे अति सूख से, जग पीड़ित रे अति दुख से'। नीरज कहते हैं 'विरह रो रहा है मिलन गा रहा है किसे याद कर लूं किसे भूल जाऊं।' कवि के जीवन में मधु है तभी तो वह 'मधुशाला' (1935), 'मधुबाला' (1936), 'मधुकलश' (1937) की रचना करता

है और उसके इस मधु (आसव) का असर 'निशा निमंत्रण' (1938) में देखने को मिलता है। यह कवि के जीवन में अवसाद का समय है। समय परिवर्तनशील है, इस महान कवि का जीवन फिर एक नया मोड़ लेता है और अब मधु 'मिलन यामिनी' के रूप में समाने आता है। जहां कवि कहता है– *चांदनी फैली गगन में, चाह मन में/ दिवस में सबके लिए बस एक जग है/ रात में हर एक की दुनिया अलग है/ कल्पना करने लगी अब राह मन में/ चांदनी फैली गगन में, चाह मन में।*

यह जिन्दगी है जहां उतार-चढ़ाव आते हैं। कोई कवि पहले नश्वरता का बोध पा लेता है तो कोई बाद में। कवि बच्चन पहले नश्वरता का बोध प्राप्त कर लेते हैं, जहां उमर खय्याम की रूबाइयां भी हैं और पत्नी श्यामा का वियोग भी है। 'मिल यामिनी' के समय वियोग का दौर समाप्त हो चुका है। 'मिलन यामिनी' के रूप में अब है तेजी बच्चन की परिणति, स्थिर पानी पर फिर बादलों की वर्षा से बहाव आया है, अब जिन्दगी में मधु है, आनन्द है। यहां कवि विगत की परिस्थितियों को पलट देना चाहता है, कहता है– *आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ/ है कहां वो आग जो मुझको जलाये/ है कहां वो ज्वाल मेरे पास आये/ रागिनी तुम आज दीपक राग गाओ/ आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।* निसंदेह परिस्थितियां पलट गयी हैं। वियोगी कवि अब रोमांटिक हो गया है। वह गुलों से खेलना चाहता है, वह जुल्फों में बंध जाना चाहता है, वह रुखसारों पर अधरों का स्पर्श चाहता है। यह समर्पण का समय है। अब उसे कोई नहीं रोक सकता, वह समय के सापेक्ष कहता है– *आज कितनी वासना मय यामिनी है/ दिन गया तो ले गया बातें पुरानी/ आज ही पहली निशा मन भावनी है/ आज कितनी वासना मय यामिनी है।*

यकीनन प्रेयसी को स्पर्श करने की अनुभूति से ही यह सहज, सरल, गम्भीर, लालित्यपूर्ण संयोग शृंगार का गीत आया है। कवि यहां विस्तृत और व्यापक हो जाता है, जिसमें यहां कवि की व्यष्टि द्वारा प्रकृति के समष्टि फलक को छू लेने की यात्रा है, जिसमें वह कहता है– 'दुग्ध उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर, जो बिछी नभ के पलंग पर आज उस पर, चांद से लिपटी लजाती चांदनी है।' बच्चन इसलिए याद किये जाते हैं कि उनके गीतों की भाषा शैली सरस, गत्यात्मक, ध्वन्यात्मक एवं उन्मुक्त प्रभावोत्पादक है। उनके गीत ऐसे हैं कि आप गायें तो गाते चले जायें। यहां जिन्दगी का ठहराव नहीं, जिन्दगी की एक यात्रा है। जिन्दगी में हमसफर का साथ हर कोई चाहता है क्योंकि जिन्दगी का सफर लम्बा है, इसलिए शायर कहता है– *'बहुत लम्बा है सफर थोड़ी दूर साथ चलो!'* बच्चन की जिन्दगी में हमसफर आने से विश्वास आया है, यह विश्वास प्रगाढ़ है अति प्रगाढ़ जो कवि को निडर बनाता है, वह कहता है– *प्राण कह दो आज तुम मेरे लिए हो/ मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब/ मैं समय के शाप से डरता नहीं अब/ आज कुंतल छांह मुझ पर तुम किये हो/ प्राण कह दो आज तुम मेरे लिए हो।*

यहां कवि प्रेयसी को अपनी वाणी देता है। बच्चन का काव्य इश्क ए हकीकी भी है और इश्क ए महबूबी भी, बिना इश्क ए महबूबी के इश्क ए हकीकी सामने नहीं आ सकती। बच्चन की यात्रा उल्टी है वे पहले इश्क ए हकीकी समझते हैं फिर इश्क ए महबूबी का सफर तह करते हैं।

इश्क का मंजर एक अमीर खुसरो का है जहां वे नैनों से पीते हैं और कहते हैं 'छाप तिलक सब छीनी, तो से नैना मिलाय के'। इसके बाद कबीर कहते हैं कि 'बात कहूं मैं खरी'। फारसी सूफी कवियों रूमी, उमर खय्याम, राबिया आदि ने शराब, साकी, प्याला, मयखाना आदि प्रतीकों के माध्यम से परोक्ष सत्ता की चर्चा की और रोजा नमाज इत्यादि बाह्य पद्धतियों का खण्डन किया। हजरत बुल्ले शाह ने भी कहा 'मोहे रोजे नमाज न भाये मेरे पिया ने ये बिसराये।' बच्चन उसी सच को सामने लाते हैं और कहते हैं– *हमने छोड़ी कर की माला, पोथी पत्रा भू पर डाला।* मन्दिर मस्जिद के बंदी गृह को तोड़ दिया कर में प्याला। यह उनका दार्शनिक बोध है या रहस्यमयी अध्यात्म वे यह हाला पीकर कबीर की तरह सामने आ जाते हैं और कहते हैं *'मस्जिद मन्दिर बैर कराते, मेल कराती मधुशाला'*। मधुशाला का

अध्यात्म दर्शन ही प्रियतम (परमात्मा) को उसकी हाला का बोध कवि स्वयं प्याला बनकर कराता है?- *प्रियतम तू मेरी हाला है/ मैं तेरा प्यासा प्याला/ अपने को मुझमें भर कर तू/ बनता है पीने वाला/ मैं तुझको छक छलका करता मस्त मुझे पी तू होता/ एक दूसरे को हम दोनों/ आज परस्पर मधुशाला।*

कवि की दृष्टि अब 'सियाराम मय सब जग जानी' हो गई है। वह सृष्टि के प्रत्येक कण में प्रियतम की हाला देखता है। इसलिए वह कहता है– किसी ओर से आँखें फेरूं दिखलाई देती हाला / *किसी ओर मैं आँखें फेरू/ दिखलाई देता है प्याला/ किसी ओर मैं देखूं मुझको/ दिखलाई देती साकी/ किसी ओर देखूं दिखलाई/ पड़ती मुझको मधुशाला।* कवि की दृष्टि में मधु है यह संसार, मधुमय है यह प्रकृति जिसे हाला के रूप में देखता है– *हिम श्रेणी अंगूर लता सी/ फैली हिमजल है हाला/ चंचल नदियां साकी बनकर/ भरकर लहरों का प्याला/ कोमल कूल करों में अपनी/ छलकाती निश दिन चलती/ पी कर खेत खड़े लहराते/ भारत पावन मधुशाला।*

यह संसार मधुशाला है जिसे एक दिन काल पी जायेगा। वो काल पीने वाला है। कवि यहां नश्वरता और काल के शाश्वत स्वरूप का बोध कराता है– *क्षीण क्षुद्र क्षण भंगुर दुर्बल/ मानव मिट्टी का प्याला/ भरी हुई है जिसके अन्दर/ कटु मधु जीवन की हाला/ मृत्यु बनी है निर्दयी साकी/ अपने शतशत कर फैला/ काल प्रबल है पीने वाला/ संसृति है यह मधुशाला।* सुकवि बच्चन कबीर की तरह हाला पीने वालों की जाति में आस्था नहीं रखते। वे तो पीने वालों की जाति 'दीवाना' बताते हैं– *नाम अगर पूछे कोई तो/ कहना बस पीने वाला/ काम ढालना और ढलाना/ सबको मदिरा का प्याला/ जाति यदि पूछे यदि कोई तो/ कह देना दीवानों की।*

'हालावादी' सत्य धर्म समभाव का आदर करते हैं। वे पंथ निरपेक्ष हैं, वे धर्म ग्रंथों के पंथों से मुक्त हैं। वे सामाजिक विषमता, ईर्ष्या, द्वेष, राग, मोह से परे हैं-- *धर्म ग्रंथ सब जला चुकी है/ जिसके अन्तर की ज्वाला/ मन्दिर मस्जिद गिरजे सबको/ तोड़ चला जो मतवाला/ पंडित मोमिन पादरियों के/ फंदे जो है काट चुका/ कर सकती है आज उसी का/ स्वागत मेरी मधुशाला।* जो जीवन के गीत बनाता है, गाता है वही रास्ता दिखाता है। एक शायर कहता है 'एक बंजारा गाये जीवन के गीत सुनाये, हम सब जीने वालों को जीने की राह दिखाये' ऐसा गीतकार ही यदि मधु न मिले तो हलाहल पीने में भी संकोच नहीं करता– *सुन्दर सुन्दर गीत बनाता/ गाता सबसे नित्य गवाता/ थकित बटोही बहला मन/ जीवन पथ की श्रान्ति मिटाता/ हम सब मधुशाला जायेंगे/ आशा है मदिरा पायेंगे/ किन्तु हलाहल ही होगी तो/ पीने से कब घबरायेंगे।*

बच्चन 'हाला' की मादकता का प्रभाव जानते हैं इसलिए वे कहते हैं 'मेरी मादकता से ही तो, मानव सुख-दुःख सका झेल' इसलिए ही वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक ऐसी ही हाला पीना चाहते हैं– *मेरे शव के पीछे चलने वालो/ याद इसे ऐसे रखना/ राम नाम है सत्य न कहना/ कहना सच्ची मधु शाला।* अन्तिम समय में राम नाम सत्य का बोध कराया जाता है। जीवन का सार ही राम नाम है, किन्तु जब जीवन ही राम नाम मय हो जाये तो राम नाम सत्य का बोध कराने की क्या आवश्यकता है। मरने के बाद कवि अपना श्राद्ध भी खुली हुई मधुशाला के रूप में करवाना चाहता है वो कहता है– *प्राण प्रिये यदि श्राद्ध करो तो तुम/ मेरा तो ऐसा करना/ पीने वालों को बुलवाकर/खुलवा देना मधुशाला।*

कवि बच्चन जीवन में हाला के प्रति दीवानगी सहजता से व्यक्त करते हैं और भक्तिवाद भी संत्रासों से मुक्ति दिलवाने का एक प्रयोजन था तो 'हालावाद' भी ऐसे समय में आता है जब हम अपनी स्वाधीनता के लिए प्राणपण से सचेष्ट हो संघर्ष करते हैं। परन्तु बच्चन के काव्य में आशावाद भी है– *जो बीत गई सो बात गई/ जीवन में एक सितारा था/ माना वह बेहद प्यारा था/ वह डूब गया तो डूब गया/ अम्बर के आनन्द को देखो/ किसने इसके तारे टूटे/ कितने इसके प्यारे छूटे।* बच्चन के काव्य में हाला के कारण अदम्य साहस भी है और संघर्षरत रहने का भाव भी है, वे मनुष्य को लोह पुरुष बने रहने का संकेत करते हैं–

जो अपने कंधों से पर्वत से बढ़कर टक्कर लेते हैं/ पथ की बाधाओं को जिनके पांव चुनौती देते हैं/ जिनको बांध नहीं सकती लोहे की बेड़ी जंजीर/ मैं हूं उनके साथ खड़ी जो सीधी रखते अपनी रीढ़। और ये पंक्तियां- अग्नि पथ! अग्नि पथ! अग्नि पथ! वृक्ष हों भले खड़े, हो घने हों बड़े/ एक पत्र छाँह भी मांग मत/ मांग मत! मांग मत! मांग मत!

सहायक स्त्रोत

1. बच्चन का परवर्ती काव्य–श्याम सुन्दर घोष। **2.** बच्चन व्यक्तित्व और कृतित्व–जीवन प्रकाश जोशी। **3.** बच्चन का साहित्य : कथ्य और शिल्प -डा. जय प्रकाश भाटी। **4.** कवि की कृतियां।

❑❑

बी-422, आर. के. पुरम्,

कोटा-5 (राज.)

मो. 9413007724

सत्य का बोध ही 'हाला' है, यही 'राम-रसायन' है, यही 'मधु' है। इसे जिसने पी लिया बुद्ध हो जाता है, रूमी-खय्याम-राबिया हो जाता है, फिर प्रियतम अपना लेता है 'नैना मिलाय के', जिसने इसे पी लिया वह कबीर हो जाता है और जीवित रहता है सैकड़ों-सैकड़ों साल बाद भी बातों-ख्यातों-काव्यों में। प्रस्तुत हैं हाला के सरूर में मगन कविवर बच्चन की 'कबीरी' पंक्तियां–

पत्थर के भगवान को लगते छप्पन भोग।
मर जाते फुटपाथ पर भूखे प्यासे लोग।।
फैला है पाखंड का अंधकार सब ओर।
पापी करते जागरण मचा-मचा कर शोर।।
क्या बात करें इस दुनिया की।
हर शख्स के अपने-अपने अफसाने हैं।।
जो सामने हैं उन्हें लोग कहते बुरा।
जिसको देखा नहीं उसे खुदा कहते हैं।।

◆◆◆

... और इस लेख को पढ़ते-पढ़ते रची गई मेरी कुछ पंक्तियां–

सोच समझ के आना यहां पर...
यह है बंधु मधुशाला।
आओगे जिन कदमों से यहां / लौटते रहेंगे नहीं तेरे वे...
यह है बंधु मधुशाला।
आ गये तो फिर नहीं रहोगे/ हिन्दू-मुसलमां-सिक्ख-इसाई
नहीं रहोगे ऊंचे-नीचे / रह जाओगे इनसां बस...
यह है बंधु मधुशाला।
आओगे इठलाते खुदी पर अपनी
पी लिया जो हाला का प्याला/ फिर खुद कहां औ खुदी कहां...
यह है बंधु मधुशाला।

–सम्पादक

श्रीअरविन्द का काव्य चिन्तन

डॉ. अमरसिंह वधान

यह कहना तनिक भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि श्रीअरविन्द एक उच्चकोटि के योगी, दार्शनिक, कवि एवं मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के नेतृत्वकारी थे। उनके योग और दर्शन पर रचित ग्रंथ मनुष्य की ऊंची से ऊंची मेधा के उत्कृष्ट प्रमाण हैं। इसी तरह अंग्रेजी में रचित उनका 'सावित्री' काव्य बुद्धि की रचना नहीं है, वह तो उस शक्ति का करिश्मा है जो बुद्धि की सरहद के परे विहार करती है, जिससे अदृश्य देखा जाता है और अकथनीय को कथनीय बनाया जाता है। निस्संदेह, 'सावित्री अकथनीय के ही कथन का सफल प्रयास है। उनका दृढ़ विश्वास था कि कविता मनुष्य को नया वस्त्र दे सकती है, उसका सम्पूर्ण रूपांतरण कर सकती है। मन की सीमा के बाहर वाली जगह को अरविन्द ने अतिमानस कहा है। जब तक मनुष्य की अतिमानसी जाति उत्पन्न नहीं होती, उसकी समस्याओं का समाधान नहीं मिलेगा।

कवि अरविन्द अपने काव्य चिन्तन की बुनियाद वेद की ऋचाओं की भूमि पर रखते हैं वे इन ऋचाओं को सर्वोच्च काव्य मानते हैं। वैदिक ऋषि काव्य रचना तभी करते थे जब उनके भीतर अनुभूतियां स्वयं अभिव्यक्ति खोजने लगती थीं। मंत्र की हैसियत वाली इस कविता का आकार छोटा होता था। अरविन्द भी यही मानते हैं कि कविता का सर्वोत्तम ध्येय है कि वह मंत्र बन जाए। जब शुद्ध अनुभूति कौंधकर चली जाती है तो वह अपने पीछे मंत्र- कविता छोड़ जाती है। आश्चर्य नहीं कि 'सावित्री' काव्य की प्रत्येक पंक्ति मंत्र की स्थिति को पहुँच गई है। यह कविता लंबी अवश्य हो गई है। लेकिन यदि बारीकी से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि अरविन्द के भीतर आध्यात्मिक अनुभूतियां सतत् विद्यमान रहती थीं, सदैव प्रसारणशील भी। यह सिद्ध बात है कि कवि जब अध्यात्म के धरातल पर स्थित हो जाता है तो उसे न तो अध्ययन की जरूरत होती है और न ही रचना के मूड में पहुँचने के लिए उसे आयास करना पड़ता है। कविता तब स्वतः प्रवाहित होकर कलम से बहने लगती है। इस स्वतः स्फूर्त कविता को अरविन्द मंत्र कविता मानते हैं। मनीषी अरविन्द का मानना है कि कविता ज्ञान प्रदान नहीं करती है। वे इस बात का भी खंडन करते हैं कि कविता का चरम ध्येय मनोरंजन वाला आनंद है। साधना के धरातल पर कविता न तो रस है, न भोग है, न देवोपम कार्य है। कविता दिव्य आनंद देकर समाप्त नहीं हो जाती, वह हमारे भीतर कुछ निर्माण करती है, किसी लोक को प्रकाशित करती है। इसी बिन्दु पर काव्यात्मक मनोरंजन एवं दिव्य आनंद में अंतर स्वतः स्पष्ट हो जाता है। वे आगे स्पष्ट करते हैं कि आध्यात्मिक कविता की रचना आत्मा करती है और आत्मा ही उसका ग्रहण और आस्वादन भी करती है। वे कहते हैं कि कवि को प्राणिक स्तर से ऊपर उठ जाना चाहिए। इसमें

कोई संदेह नहीं है कि विश्व में जो भी प्रभावशाली काव्य है, वह प्राणिक शक्ति से उत्पन्न हुआ। इसलिए वे शेक्सपियर और कालिदास को प्राणिक शक्ति के कवि मानते हैं। यूँ तो अरविन्द की भी कई कविताएँ प्राणिक शक्ति की कविताएँ हैं। 'सावित्री' अवश्य आत्मा के धरातल पर पहुँचकर लिखा गया काव्य है।

अरविन्द की सांध्यवार्ताओं में पुराणीजी और नलिनीकान्त गुप्त द्वारा काव्य संबंधी पूछे गए कुछ प्रश्नों के उत्तरों में हमें अरविन्द के गंभीर एवं गहन काव्य चिंतन के मूल्यवान रेशे मिलते हैं। वे जॉन कीट्स को महाकवि मानते हैं, यद्यपि कीट्स अपना 'हाइपीरियन' महाकाव्य पूरा नहीं लिख सके। महाकाव्य की रचना को लेकर अरविन्द का विचार है कि महाकाव्य लिखने वाला मस्तिष्क बहुत ही ऊंचा, उदात्त, विस्तृत और शक्तिशाली होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि फ्रेंच भाषा बहुत ही व्यवस्थित, कोमल और प्रांजल है। लेकिन फ्रेंच में कोई महाकाव्य नहीं लिखा जा सका। वे इस बात पर संतोष व्यक्त करते हैं कि माइकेल मधुसूदन दत्त ने होमर और वर्जिल से प्रेरणा लेकर अवश्य सफल महाकाव्य लिखा है। अरविन्द का विचार है कि टैगोर की कविताओं के भीतर जो गरिमा और मौलिकता है, वह इकबाल की कविताओं में नहीं है। टी. एस. इलियट को अरविन्द आधुनिक कविता के प्रवर्तक मानते हैं। उनकी दृष्टि में आधुनिक कवि वह है, जिसकी कविता वह खुद समझता है अथवा उसके मित्र समझते हैं। महाकाव्यकार होमर, वर्जिल, मिल्टन, मधुसूदन आदि के प्रति अरविन्द के हृदय में सम्मान भाव रहा है, क्योंकि इन कवियों ने आत्मा के धरातल पर पहुँचकर अपने महाकाव्यों की रचना की थी।

अपनी सूक्ष्मेक्षिणी दृष्टि एवं आलोचकीय स्वर में अरविन्द कहते हैं कि जैसे फ्रेंच का आलोचक अंग्रेजी काव्य पर सही निर्णय नहीं दे सकता, उसी प्रकार अंग्रेजी का आलोचक भी फ्रेंच कविता के विषय में जो कुछ कहेगा, वह ठीक और शुद्ध नहीं होगा। कारण यह कि वे अलग-अलग संस्कृति एवं विचारधारा के अंदर जीने वाले आलोचक हैं। भारतीय परंपरा के मापदंड से एक भारतीय आलोचक अंग्रेज़ी की कृति का क्या मूल्यांकन करेगा। नई कविताओं पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए, अरविन्द का कहना है कि आलोचक सबसे अधिक जोर टेकनीक पर दे रहे हैं, किन्तु वे भूल जाते हैं कि टेकनीक के कमज़ोर रहने पर भी महान आत्मा महान काव्य का निर्माण कर सकती है। इस महत्वपूर्ण संदर्भ में हम कबीरदास और मीराबाई के काव्य का अवलोकन कर सकते हैं। देखा जाए तो कबीर और मीरा दोनों की कविताओं में भाषा के अनगढ़ होने पर भी उनके भीतर जो गहराई नजर आती है, जो व्योम दिखाई देता है, वह समस्त विश्व साहित्य के लिए एक अनूठी चीज है।

अरविन्द ने शेक्सपियर, दाँते, ब्लेक को बड़ी गहराई से पढ़ा था। इन कवियों की कविताओं के मूल्यांकनोपरान्त उनका निष्कर्ष है कि शेक्सपियर प्रबल कवि हैं, लेकिन दाँते बड़ा ही उच्च कवि है। दाँते ने जिस ऊंचाई को स्पर्श किया था, शेक्सपियर को उस ऊंचाई का अनुमान भी नहीं था। अरविन्द ब्लेक को शेक्सपियर से ऊंचा मानते हैं, क्योंकि ब्लेक रहस्यवादी कवि था और रहस्यवादी चेतना शेक्सपियर में थी ही नहीं। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कवि अरविन्द कविता में यांत्रिकता (कलाबाजी, तकनीक, कौशल) को अधिक महत्व नहीं देते हैं। वे बल देकर कहते हैं कि प्रेरणा के वेग में काव्य रचना आत्मा ही करती है। कविताओं में वर्ण्य-वस्तु को वे बहुत महत्व देते हैं।

उनका यह भी कहना है कि वस्तु की आत्मा के उद्‌घाटन से उद्‌भूत होने वाला आनंद सबसे बड़ा आनंद है। आत्मा की अनुभूति का चित्रण ही वास्तविक काव्य है। कवि अरविन्द ने 'सुररियलिज्म' की कविता को स्वप्न चेतना की कविता कहा है। उन्हें इस बात का दुःख है कि यूरोप के नए कवि और चित्रकार अपनी सतही चेतना से रचना कर रहे हैं, वे चेतना की गहराई में प्रवेश करना नहीं चाहते। वे रेखांकित करते हैं कि कवि अपनी चेतना के कूपतल में पहुँच जाएँ, वस्तुओं के भीतर जो आत्मा छिपी है, उससे एकाकार हो जाएं और वे बाहरी बातों का भी वर्णन भीतरी अनुभूति के प्रकाश में ही करें। वे खिन्न हैं कि यह हो नहीं रहा है। वे अधिक स्पष्ट करते हैं कि कवि मन के एक्सरे से ही भीतर की चीजों को देख रहे हैं। वे सावधान भी करते हैं कि यदि कवि विकृतियों को उछालने में सारी ताकत लगाने लगें तो कविता पतन के गर्त में भी गिर सकती है।

अरविन्द की मान्यता है कि कविता समझने की नहीं, महसूस करने की चीज है। कवि के भाव बिंब और प्रतीक मन के किसी धुँधलके से, किसी अँधेरी गहराई से निकलते हैं। ये प्रतीक एवं बिंब प्रायः परस्पर संबद्ध भी होते हैं। लेकिन वह संबद्धता सतही बुद्धि के दर्पण में नहीं देखी जा सकती। वे यह भी मानते हैं कि प्रेरणापूर्ण वाक्यांशों, सटीक शब्दों एवं लय के कारण कविता की दीर्घायु होती है। प्रेरणा का स्पर्श पाए बिना सत्य कविता की रचना बिल्कुल असंभव बात है। उन्होंने कहा है, केवल 'ब्रेन माइंड' से मत लिखो। भावना और विज़न की आत्मा के भीतर पहुँचकर लिखना ही कविता लिखने का सही ढंग है। वे आगे कहते हैं कि कविता केवल जैव शक्ति के कारण शक्तिशालिनी होती है। आध्यात्मिक कविता में भी अभिव्यंजना की शक्ति जैव शक्ति से ही आती है।

अरविन्द कवि की प्रसिद्धि एवं अप्रसिद्धि को लेकर एक बड़े मार्के की बात कहते हैं कि किसी कवि के पाठक कम होना अथवा किसी अन्य कवि के पाठक बहुसंख्यक होना अप्रसिद्धि या प्रसिद्धि का प्रमाण नहीं है। जो आज प्रसिद्ध है, वह कल पाठकों की दृष्टि में गिर सकता है और जो आज अप्रसिद्ध है, वह कल जाकर प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है। परन्तु दोनों जनता की आँखों से ओझल नहीं होंगे। उन्होंने मेलार्मे और रेम्बू कवियों के उदाहरण देकर अपनी बात को सिद्ध किया है। अरविन्द के काव्य चिंतनानुसार अंग्रेजी में सफलता उसी कवि को मिलेगी जिसने उस भाषा को मातृभाषा के समान सीखा हो। रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि को वे 'अनइंगलिश' मानते हैं। लेकिन उनका पुख्ता विचार है कि गीतांजलि अनइंगलिश होने पर भी बाधाओं को पार कर गई है।

ऐसा नहीं है कि अरविन्द ने तोरुदत्त, रोमेशदत्त और सरोजनी नायडू की काव्य रचनाओं को महत्व न दिया हो। तोरुदत्त के विषय में उनका कहना है कि वे कविता बढ़िया लिखती हैं और उनके भीतर प्रतिभा की चिंगारी भी है। रोमेशदत्त की कविता की भी उन्होंने प्रशंसा की है। लेकिन सरोजनी नायडू के बारे में उनका विचार है कि अंग्रेजी भाषा में जिन भारतीय कवियों ने कविताएँ लिखी हैं, उनमें से किसी भी कवि की कविता उतनी जीवंत, शक्तिशालिनी और मौलिक नहीं उतरी, जितनी सरोजनी नायडू की कविता उतरी है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि सरोजनी की कविता कालजयी है और उनकी अभिव्यक्तियां भी स्वच्छ हैं।

भाषा पर भी अरविन्द ने मार्मिक चिंतन किया है। उनका मानना है कि किसी भी भाषा का ह्रास तब होता है, जब उस भाषा को बोलने वाली जाति का ह्रास होता है, उससे जब जीवन और आत्मा निकल जाते हैं तथा शुष्क बुद्धि और थकी इंद्रियाँ शेष रह जाती हैं। ताज्जुब नहीं कि विश्व की जो भाषाएं नष्ट हो चुकी हैं, जो समाप्त होने के कगार पर हैं तथा जिनके नष्ट होने का खतरा है, इसके मूल में अरविन्द की भाषाई वैचारिकी हमें सावधान करती है। काव्य भाषा पर उनकी चिन्तनात्मक टिप्पणी है कि कविता की असली भाषा कवि की मातृभाषा ही हो सकती है। सीखी हुई भाषा में ज्ञान का साहित्य लिखा जा सकता है, किंतु रस अथवा आनंद का साहित्य नहीं लिखा जा सकता है। भरत के नाट्यशास्त्र में सही कहा गया है कि कविता वाणी के रूप में आत्मा की भाषा है।

इस नपे-तुले सार में हामी भरी जा सकती है कि कवि, कविता, महाकाव्य, भाषा, तुलनात्मकता आदि के विषय में अरविन्द का चिंतन, उनकी विचारणाएँ और मान्यताएँ तत्कालीन साहित्य के वैश्विक परिदृश्य एवं रचना परिवेश को लेकर व्यक्त की गईं थीं। लेकिन उनके काव्य चिन्तन की गूंज आज भी अपनी पुख्ता प्रासंगिकता के साथ गुंजित है। एक कवि एवं समालोचक के रूप में उन्होंने काव्य-कृति की सही एवं निष्पक्ष परख पहचान के कुछ सूत्र विकसित किए जो मौलिक हैं, राहदर्शक हैं और हैं अनुसरणीय भी। काव्य के योगी मूल्यांकनकर्ता श्री अरविन्द की दृष्टि कविता के आर-पार की चीजों को बड़ी पारदर्शिता से देख लेती है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य का गहन अध्ययन-समझ होने के कारण उनकी तुलनात्मकता की धार को काटना आज भी आसान नहीं है।

❑❑

निदेशक- उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र
3150, सेक्टर 24-डी
चंडीगढ़-160023 मो. 9876301085

'ईदगाह' के बहाने जरूरी सवाल

डॉ. अंजना वर्मा

प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह', जिसे लगभग सभी ने पढ़ा होगा। गौर करने की बात यहा है कि इस कहानी को पढ़ने के बाद इसे कोई भूलता नहीं– खासकर इस बात को कि नन्हना हामिद अपनी दादी के लिए एक चिमटा खरीदकर लाता है। एक कहानी की सबसे बड़ी सफलता पाठक के अन्तर्मन में गहरे उतरकर उसकी याददाश्त का एक हिस्सा बन जाने में है। कितनी ही कहानियां ऐसी होती हैं जो एक बार पढ़ने के बाद हमेशा के लिए मन-मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ जाती हैं। 'ईदगाह' एक ऐसी ही कहानी है जो बच्चे से लेकर बूढ़े तक सबके मन को छूती है और उम्र-भर के लिए स्मृति में दर्ज हो जाती है। लेकिन इस कहानी का दुर्भाग्य यह है कि इसे या तो बाल-पाठ्यक्रम में संकलित कर दिया जाता है या अहिन्दी भाषी छात्रों के पाठ्यक्रम में। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी को सीढ़ियों पर खड़ा कर दिया जाय, हर चढ़ने-उतरने वाले की नजर उस पर पड़ेगी, लेकिन चढ़ने-उतरने की जल्दबाजी में कोई रुककर उससे दो बात नहीं करेगा। एक सरसरी निगाह उस पर डालते हुए आगे बढ़ जायेगा।

ईदगाह एक छोटे बच्चे की कहानी है। हामिद अपने माता-पिता को खो चुका है। उसकी दादी अमीना उसे पाल रही है। कहानी में जो कुछ कहानीकार कहना चाहता है वह ईद और ईदगाह के प्रसंग से पूरा हो जाता है। ईद के मौके पर मेले में जब सब बच्चे मिठाइयां खा रहे हैं और तरह-तरह के खिलौने खरीद रहे हैं, हामिद का लोहे का एक चिमटा खरीद लेना उसकी गरीबी, विवशता और समझदारी पर मुहर लगा देता है। कहानी के चरम बिन्दु के लिए पर्याप्त भूमिका तैयार रहती है। गरीब अमीना सोच रही है कि हामिद बच्चों के साथ ईदगाह गया है। वहां वह मिठाइयां खायेगा और खिलौने खरीदेगा। उसे यह सोचकर बहुत संतोष होता है कि अभाव में पल रहे इस अनाथ बालक को कम-से-कम आज के दिन तो मनपसंद चीजें मयस्सर होंगी। वह ईदगाह के मेले में जाकर अपने अरमान पूरे कर लेगा। लेकिन हामिद है कि जिसे खिलौनों के बाजार में भी अपने हाथों से रोटियां पलटकर अपनी उंगलियां जलाती हुई दादी याद आ जाती है। अपने बाल-मन की तरंगों पर नियंत्रण रखता हुआ वह लोहार की दुकान से अपने जमा किये तीन पैसे देकर एक चिमटा खरीद लेता है। अब लौटने का दृश्य है। सारे बच्चे अपने-अपने खिलौनों के साथ लौट रहे हैं। बच्चों में प्रतिस्पर्धा की भावना होती है। सभी बच्चे देखते हैं कि हामिद ने खिलौने नहीं खरीदे। आखिर उस चिमटे में क्या खास बात है कि उसने चिमटा ही खरीदा? उन्हें अपने खिलौनों की खरीद पर अफसोस होता है। हामिद अपनी मजबूरी किसी को बताना नहीं चाहता था। अपनी मजबूरी छिपाने के लिए वह अपने चिमटे की तारीफ करने लगता है और इस तरह वह अपने दोस्तों पर अपना सिक्का जमा लेता है। सारे बच्चे प्रभावित हो जाते हैं और बारी-बारी से अपना खिलौना देकर उसका चिमटा हाथ में

लेकर सराहने लगते हैं। हामिद जब अपने साथियों के खिलौने हाथ में लेता है तो ललचाता जरूर है लेकिन उसे लगता है कि उसने चिमटा खरीदकर सही किया, क्योंकि चिमटा पाकर उसकी दादी खुश हो जायेगी। उसे अपनी दादी को खुश करना है। यहीं उसकी बालबुद्धि गलतफहमी का शिकार हो जाती है।

'ईदगाह' कहानी गरीबी में विकसित हुई एक अनाथ बच्चे की मानसिकता एवं व्यवहार को दर्शाती है। यहां सिर्फ गरीबी नहीं है, नियति की क्रूरता भी है, क्योंकि बच्चे के माता-पिता असमय काल-कवलित हो चुके हैं और वह अपनी बूढ़ी दादी की छाया में बड़ा हो रहा है। कहानी इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि यह गरीबी से उत्पन्न विचलनों की ओर संकेत करती हुई इस दिशा में अनेक प्रश्न उठा देती है। इस विचलन की भी अनेक दिशाएं हो सकती हैं– अच्छी या बुरी। कथा के नायक हामिद के संदर्भ में जो विचलन है वह विकृत नहीं है, लेकिन त्रासद अवश्य है। किसी बच्चे का बचपन मर जाय– यह कितना दुःखद है। कहानी यह दिखलाती है कि गरीबी किस तरह बचपन को चबा जाती है। कठिन परिस्थितियों में पकते हुए बच्चे की सोच-समझ और व्यवहार की दिशा सामान्य परिस्थितियों में पलने वाले बच्चों से अलग होती है।

अनाथ हामिद उस बाल-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो बच्चों को मिलने वाले उस सामान्य परिवेश से भी वंचित है, जहां माता-पिता का प्यार और उनकी ओर से मिलने वाली सुरक्षा की शीतल बयार होती है, जिनके कारण बच्चों के भीतर हौसला भरा रहता है, उनकी आंखों में आशाएं रहती हैं और ओठों पर मुस्कान जिससे बालक के बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास को एक ऊर्जा मिलती रहती है। यह ऊर्जा कमोबेश अमीर-गरीब दोनों वर्गों को सुलभ होती है। यहां यह शून्य है। माता-पिता की कमी को बूढ़ी, गरीब और लाचार अमीना पूरी करने की कोशिश करती है जो उसकी परिस्थिति में संभव नहीं हो सकती। इसलिए लाचार दादी के अभिभावकत्व में पलते हुए हामिद का बचपन निराशा के अंधेरे में गुम होने लगता है। गरीबी अपने आपमें बहुत बड़ा दुःख है। इसमें बेबसी होती है। हामिद के संदर्भ में इस बेबसी का रंग अलग है। यह बेबसी है– अपने को अन्य बच्चों से अलग कर सयाना समझने की बेबसी, छोटे कंधों पर जिम्मेवारी संभालने की बेबसी। यहां बचपन अकालमृत्यु को प्राप्त होता है और उत्तरदायित्व के एहसासों का असमय जन्म होता है। इन दो छोरों पर संवेदना जगाना कहानी का उद्देश्य है।

हामिद का मेले से चिमटा लेकर लौटना एक बच्चे के संदर्भ में अस्वाभाविक है, लेकिन उसकी नियति और परिस्थिति को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं लगता। यह किसी एक हामिद की तस्वीर नहीं है। यह किसी भी गरीब परिवार के बच्चे की तस्वीर हो सकती है, जिसे गरीबी असमय सयाना बना देती है और वह खेलने-खाने के दिनों में जीवन जीने की चिंताओं को ओढ़ना सीख जाता है। गरीबी यदि एक ओर तोड़ती है तो दूसरी ओर एक नये व्यक्तित्व का सृजन भी करती है। यह कथा रूपांतरित बाल-मनोवृत्ति को रेखांकित करती है। हामिद की यह रूपान्तरित मनोवृत्ति एक नमूना है- यह दिखाने के लिए कि भारत जैसे विशाल देश में जहाँ आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी की रेखा से नीचे गुजर-बसर करने को बाध्य है, जहां बच्चों के बचपन का खो जाना, रूपान्तरित हो जाना या विकृत हो जाना आम है। यह इतनी आम बात है हमारे लिए कि हम इस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझते। 'ईदगाह' कहानी गरीबी को नहीं, उससे होने वाली विडम्बनाओं को रेखांकित करती है। भारत में गरीबी वर्तमान समय में भी एक बड़ी समस्या नहीं है, केवल आज ही गरीबी के कारण मां अपने बच्चे को बेच देने के लिए विवश नहीं है, तुलसी का ज़माना भी ऐसा ही था कि तुलसी को कहना पड़ा, 'पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी'।

गरीबी जिन रास्तों को दिखाती है उनमें पहला रास्ता सबसे आसान है और वह है अपराध का अगर पारिवारिक संस्कार ऐसा करने से रोकते हैं तो जो दूसरा रास्ता बालक अपनाता है वह भी वेदनापरक ही है। यह सही दिशा में होकर भी चोट पहुँचाता है। इसमें बचपन की शरारतों का पटाक्षेप हो जाता है। खेलने की इच्छा

मर जाती है। बच्चे मेहनत-मज़दूरी करके अपना और अपने परिवार का पेट पालने को बाध्य हो जाते हैं। एक चार-पाँच साल के बच्चे का ईदगाह के मेले से चिमटा खरीदना इस देश के तमाम गरीब और मजबूर बच्चों का क्लोज-अप खींचकर रख देता है।

कहानीकार हामिद की दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों का पाचिय इस तरह देता है, 'और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती होती एक दिन मर गयी। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था? दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से ही विदा हो गयी। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पांव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोट काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियां और अम्मीजान नियामतें लेकर आयेंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहां से उतने पैसे निकालेंगे, ईदगाह में हामिद के जीवन में अभाव है, लेकिन फिर भी संस्कार बचे हुए हैं। परिवार के सदस्यों में एक-दूसरे के लिए संवेदनाएं बची हुई हैं। लेकिन इतने पर भी तो बच्चे का बचपन तो खो जाता है।

हमारे देश में यह खोया हुआ बचपन मजदूरी की राह पकड़कर चल देता है। बाल-श्रम के लिए वर्जित स्थानों, जैसे- आतिशबाजी उद्योग, कालीन एवं चर्मशोध आदि उद्योगों में भी बच्चे खटने को बाध्य हो जाते हैं। बाल-श्रम को रोकने के लिए दो दशक पहले ही कानून बनाया गया। इसे बार-बार लागू करने की कोशिशें भी हुईं, लेकिन परिणाम क्या हुआ? बाल-श्रम को व्यावहारिक रूप से हटाया नहीं जा सका है। अभी हाल की घटना है। दिल्ली पुलिस ने कुछ बच्चों को मजदूरी करने से रोका और उन्हें वापस घर भेजने की योजना बनाने लगी तो वे रोने लगे। उनका कहना था कि उन्हें क्यों रोका जा रहा है! वे मेहनत-मजदूरी करके अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं, कोई चोरी तो नहीं करते? आज देश में लगभग छह करोड़ बाल-मजदूर हैं। ऐसी स्थिति में जब परिवार के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व छोटे कंधों पर आ जाय, स्कूली शिक्षा संभव कैसे हो पायेगी? हर बच्चे को स्कूल नसीब कैसे हो पायेगा? मजदूरी करने के सिवा यदि कोई दूसरा रास्ता बचता है तो वह अपराध का है। भूख और हताशा से गुजरता हुआ बचपन अपराध की अंधेरी गलियों में गुम हो जाता है।

'ईदगाह' कहानी ऊपर से सरल दिखायी देती है, लेकिन इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। कहानी के सरल प्रतीत होने के कारण भी हैं। कहानी में बालक पात्रों की संख्या काफी है। मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी ये सब हामिद के साथ ईदगाह जाते हैं। इनके बीच होने वाला वार्तालाप काफी रोचक है। जैसे एक उदाहरण–

'आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरु हुईं। आज खूब सजी हुई थी। इतनी मिठाइयां कौन खाता है। देखो न, एक-एक दुकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात खरीद ले जाते हैं.... हामिद को यकीन न आया-- ऐसे रुपये जिन्नात को कहां से मिल जायेंगे? मोहसिन ने कहा, जिन्नात को रुपये की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें, चले जायें। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं, जिससे खुश हो गये, उसे टोकरों जवाहरात दे दिये। अभी यहीं बैठ हैं, पांच मिनट में कहो कलकत्ता पहुंच जायें। हामिद ने फिर पूझा, जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे?

मोहसिन, एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। जमीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायें।' यह संवाद लम्बा चलता है। बच्चों के बीच की यह बातचीत इतनी स्वाभाविक है कि पाठक इसे बच्चों का साहित्य ही समझ बैठते हैं। बच्चों का साहित्य रचना अपने आप में ही चुनौती-भरा काम है, लेकिन यह कहानी बच्चों के मनोरंजन के लिए नहीं लिखी गयी

है। यह एक परिपक्व मस्तिष्क की रचना है और उस कहानीकार की रचना है जिसने जीवन और समाज की बुनावट के एक-एक सूत को पहचाना और परखा था-- नीचे से ऊपर तक। बच्चों का चित्रण करते समय बाल-सुलभ हाव-भाव और कल्पनाओं को उकेर देना इतना आसान नहीं! और शायद यही इस कहानी को गम्भीर बन जाने से बचा लेता है। खैर, बहस का जो मुद्दा उठता है वह चिमटा देखकर हामिद की दादी अमीना के भावविह्वल होकर रो पड़ने में खो जाता है।

कहानी की मूल संवेदना का यदि एक भावात्मक पक्ष है तो दूसरा वैचारिक पक्ष भी है जो इस संदर्भ में अनेक गम्भीर प्रश्न उठा देता है। वर्तमान समय में हिन्दी में बाल-समस्याओं से जुड़े लेखन को लेकर एक उदासीनता-सी बनी हुई है। यद्यपि इस देश को बाल-साहित्य की विरासत के रूप में पंचतंत्र की कथाएं मिली हैं जिनकी रचना 200 वर्ष ईसा पूर्व विष्णु शर्मा ने संस्कृत में की थी, हिन्दी का अपना बाल-साहित्य भी सौ वर्षों से ऊपर का हो चुका है। भारतेंदु से लेकर आज तक के नामी-गिरामी लेखक भी इस क्षेत्र में लिखने का लोभ संवरण नहीं कर पाये हैं, लेकिन जिस किस्म के साहित्य की जरूरत है वह नहीं लिखा जा रहा है। या अगर लिखा भी जा रहा है तो ध्यान खींच नहीं पा रहा है।

बच्चों के मनोरंजन के लिए लिखे जाने वाले साहित्य और बच्चों के दुःख और उत्पीड़न को आधार बनाकर रचे गये साहित्य में जमीन-आसमान का अंतर होता है। एक बच्चों के लिए है, दूसरा बच्चों पर रचा जाकर भी बच्चों के लिए नहीं है।....... दुधमुंहे बच्चे दूध के बिना मर रहे हैं। बच्चे पढ़ने के दिनों में कचरे के ढेर से कचरा चुन रहे हैं, कुपोषण और मृत्यु का शिकार हो रहे हैं। बच्चियां वेश्याएं बना दी जा रही हैं। जिन्दगी पाने के लिए मौत और त्रासद परिस्थितियों से गुजरते हुए बच्चे आज बहस के केंद्र में क्यों नहीं हैं? हर पत्रिका को आज दलित-विमर्श और स्त्री-विमर्श पर सामग्री चाहिए, बाल-विमर्श की मांग क्यों नहीं है? दलित वर्ग और स्त्री यदि अत्याचार सहने के कारण सुर्खियों में हैं तो क्या बाल-जीवन के साथ कम अपराध और अन्याय हो रहे हैं? विश्व-भर में पोर्नोग्राफी का घिनौना व्यापार चल रहा है। चार्ल्स डिकेंस ने 'डेविड कॉपरफील्ड' लिखकर एक बच्चे की दुर्वह परिस्थितियों, कठिनाइयों और गहन पीड़ा को आवाज दी है। ऐसी कृति की अपेक्षा हिन्दी साहित्य से सहज ही की जा सकती है। कहीं यह सच तो नहीं कि यहां इतने कॉपरफील्ड हैं कि किस-किस की पीड़ा को शब्द दिये जायें? फिर भी, इन प्रश्नों से मुंह तो नहीं फेरा जा सकता।

❑❑

– (पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष)
बृजबिहारी लेन, ब्रह्मपुरा
मुजफ्फरपुर-842003
मो. 8210777500

❖ एक विजेता सपने देखने वाला होता है जो कभी भी अपने लक्ष्य को छोड़ता नहीं है, बल्कि उसे पूरा करता है।

❖ जीवन को ऐसे जिओ कि जैसे कोई देख नहीं रहा हो और अपने आप को व्यक्त ऐसे करो कि जैसे हर कोई सुन रहा हो।

❖ लोगों को उनके मानवाधिकारों से वंचित करना उनकी मानवता को चुनौती देना है।

– नेल्सन मंडेला

काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में समाज

डॉ. अभिलाष कुमार गोंड

प्रत्येक साहित्यकार अपने समय और समाज की ऊपज होता है। कुछ ऐसे भी साहित्यकार होते हैं, जो अपनी लेखनी के माध्यम से इतिहास की सीमित परिधि का अतिक्रमण करते हुए बुनियादी तथ्यों से साहित्य को समृद्ध करते हैं। इसके लिए वे कभी अभिव्यक्ति के पारंपरिक ढाँचे में फेरबदल करते हैं, तो कभी अपने सम्प्रेषण के लिए भिन्न शिल्प गढ़ते हैं। काशीनाथ सिंह ऐसे ही कथाशिल्पी हैं जो आज़ादी के पश्चात बदलते राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य के बीच अपने उपन्यासों के माध्यम से खासा चर्चित रहे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से राजनीतिक मोहभंग से उत्पन्न क्षोभ तथा सामाजिक अस्थिरता के बीच उभरते आर्थिक प्रश्नों को जीवंतता के साथ उठाया। अपने उपन्यासों में उन्होंने भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के बीच के गठजोड़, सामाजिक विषमताओं और रूढ़िवादिता के विरुद्ध प्रतिरोध के स्वर को प्रबल करते हुए बहुत कई बार अपने उपन्यासों की नई विषय वस्तु को साहित्य की मुख्य धारा से जोड़ा। 1972 ई. में प्रकाशित अपना मोर्चा, 'काशी का अस्सी' (2002 ई.) ,रेहन पर रघू (2008 ई.), 'महुआचरित' (2012 ई.), 'उपसंहार' (2014 ई.) जैसे उपन्यास अपनी विषय-वस्तु और भाषा की सहज संप्रेषणीयता के कारण खासा चर्चित हुए।

काशीनाथ सिंह आज़ादी के उस महत्व को भली-भांति समझ रहे थे, जिसे औपनिवेशिक साम्राज्यवादी शक्तियों से त्याग और बलिदान द्वारा अर्जित किया गया था। यही कारण था कि 'साठ' के दशक का मोहभंग केवल धूमिल का मोहभंग नहीं था, बल्कि उनके अभिन्न मित्र काशीनाथ सिंह का भी मोहभंग था, जो उनके उपन्यास 'अपना मोर्चा' में प्रकट हुआ। यह उपन्यास आज़ादी के दो दशकों के बीच तेज़ी से परिवर्तित होते विश्वविद्यालयी परिसर के बदलाव के साथ आरंभ होता है, जिसे काशीनाथ सिंह से पूर्व यशपाल और दुष्यंत कुमार जैसे साहित्यकारों ने न केवल पहचाना बल्कि अपने लेखन के माध्यम से उसे मूर्त भी किया। इस क्रम में काशीनाथ सिंह का यह उपन्यास उनके काशी हिंदू विश्वविद्यालय में शिक्षक और आंदोलनों का प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। उन्होंने जो देखा और अनुभव किया उसे ही मूर्त करते हुए उन्होंने लिखा कि 'इस विश्वविद्यालय में देश के कोने-कोने से लड़के आते हैं और चाहते हैं कि कोई उन्हें जीना सिखाए। उनके जीने को उनके लिए आसान कर दे। यहाँ कोई तो हो जो उन्हें जीने का सही तरीका सिखाए और कोई के नाम पर यहीं हम हैं– मैं हूँ। मैं भी कभी इस विश्वविद्यालय में इसी उम्मीद से आया था लेकिन मेरे निरपराध और बेकसूर पाए जाने के बाद मुझे यह सजा मिली कि उन्हें यह तरीका मैं सिखाऊं।'[1] छात्रों के आंदोलन के बीच उन्होंने अध्यापकों के एक वर्ग को प्रमुखता के साथ दर्शाने का कार्य किया, जो अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक मर्यादा को भूलते हुए बहुत बार सत्य से विमुख होते दिखते हैं।

काशीनाथ सिंह जब सामाजिक अस्थिरता के प्रश्न को उठाते हैं तो उनके जेहन में आंदोलन का राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक परिप्रेक्ष मौजूद होता है। जिससे टकराते हुए उन्होंने बहुत बार उन विषयों को भी मूर्त किया जो सामाजिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण थे, परंतु बहुत से लोगों के लिए गैर जरूरी थे। यह बाजारवाद के प्रभाव का ही परिणाम था कि लोग अपने सामाजिक दायित्व को भूलते हुए घोर व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं। स्त्रियों के प्रति उनकी नकारात्मक दृष्टि बहुत बार यह सिद्ध कर देती है कि बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक का यह समाज आज भी कितना संकुचित भाव रखता है। 'तुम सड़क पर मत देखो। वह तुम्हारी जगह नहीं है। वह लड़की, जिसके साथ छेड़छाड़ हो रही है तुम्हारी बहन नहीं है। बीवी नहीं है और फिर यह हरकतें क्यों हो रही हैं?[2] तेजी से बदलते सामाजिक वातावरण के बीच यह उपन्यास मूल्यहीनता का प्रबलतम उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, उत्तरदायित्व की भावना से विमुख होते समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। जिनके लिए स्त्री, संवेदना और सुरक्षा का नहीं बल्कि मनोरंजन का विषय बनकर रह गयी है।। इस प्रवृत्ति को काशीनाथ जी ने बाज़ार की अर्थव्यवस्था तथा उसकी राजनीति से जोड़कर देखते हुए दुकानदारों की सोच को स्पष्ट करने का प्रयास किया कि किस तरह एक दुकानदार लगातार लड़के-लड़कियों की ओर इशारा करते हुए अपने नौकर को समझाता हुआ कहता है, 'इनके मुंह न लगो, इनसे दिल्लगी न करो, इन्हें सहो! झेलो! क्योंकि ये हमारे रोजगार हैं, उसकी आमद हैं। इन्हीं के चलते शहर आबाद है, सड़कें रोशन हैं, जिंदगी में खुशियां हैं, मजे ही मजे हैं। जरा सोचो तो सही, यह न होंगे तो हमारी 'नेस्कफे' और 'ब्रुकबांड' का क्या होगा? 'पांड्स', 'सिलविक्रीन', 'नीविया', 'बिनाका' कहाँ जाएँगे? 'धारीवाल', 'लाल इमली' और 'माडेला' के उनी मालों को कौन पूछेगा? 'टेरीलीन' और 'टेरिकाट' की मिलें क्या होंगी? 'गागल्स', 'रेडियो', 'जूते', 'ट्रांजिस्टर', 'कैमरे', 'घड़ियाँ', 'सर्फ', 'लक्स' गरज कि पूरे देश का क्या होगा?'[3]

काशीनाथ सिंह अपने युगीन समाज की मनोवृत्ति तथा भारतीय समाज में आ रहे अप्रत्याशित बदलावों को मात्र इतिहास के आधार पर नहीं बल्कि भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के गठजोड़ के रूप में भी देखते हैं। उन्होंने यह भी समझाने का यत्न किया है कि पश्चिमी संस्कृति के वर्चस्व ने जहां पारंपरिक भाषाओं, परंपराओं और मूल्यों का ह्रास किया, तो वहीं सांस्कृतिक संकट भी मंडराने लगा है। बाज़ारवाद ने भौतिक सुख-सुविधाओं को प्रधानता देकर समाज में उपभोक्तावाद की मानसिकता को सुदृढ़ करते हुए नैतिक और सामाजिक मूल्यों का पतन आरंभ किया है। जिसे फ्रेमबद्ध करते हुए भी बहुत बार उभरते ज्वलंत विषयों को समझाना कठिन हो जाता है। इसे समझाने के लिए ही काशीनाथ सिंह नवीन कथा-शिल्प सृजित करते हैं। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक चौथीराम यादव इस संदर्भ में अपनी पुस्तक लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा में लिखते हैं, 'काशीनाथ सिंह ने औपन्यासिक प्रबंधत्व को तोड़कर हिंदी उपन्यास को नया जीवन प्रदान किया। किसी रचना के मूल्यों में परिवर्तन, सामाजिक मूल्यों में होने वाले परिवर्तन के साथ सहज ही बदलता रह सकता है लेकिन पारंपरिक 'फार्म' को तोड़ना एक कठिन चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकार करने वाला लेखक उस कर्मठ किसान की तरह होता है जो अपनी हाड़तोड़ मेहनत से कंकरीली-पथरीली धरती को तोड़ते हुए जोत-बोकर उसे उर्बर भूमि में बदल देता है। उपन्यास के प्रबंधतत्व को तोड़ने का प्रयास यद्यपि इससे पहले 'कुरु कुरु स्वाहा', 'नौकर की कमीज़' और 'कलिकथा वाया बाईपास' जैसे कुछ गिने-चुने उपन्यासों में भी देखने को मिलता है, लेकिन प्रबंधत्व को तोड़ना एक बात है और 'नॉवेल' के पश्चिमी 'पैटर्न' को तोड़कर भारतीय पद्धति का एक नया 'माडल' निर्मित कर देना जिसकी नकल संभव न हो, बिलकुल दूसरी बात।'[4]

चौथीराम जी के उक्त कथन पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यांत्रिकता और पश्चिमी मॉडल के बीच के भारतीय मॉडल की चर्चा करते हुए बहुत बार काशीनाथ सिंह ऐसे विषयों का चुनाव कर लेते हैं, जो साहित्य की परिधि से बाहर के विषय थे। उन्होंने कभी समाजशास्त्रीय ढंग से अपने विषयों को गढ़ा तो कभी उनके पात्र मनोवैज्ञानिक प्रश्नों के इर्द-गिर्द जूझते दिख जाते हैं। इसी से उनका संपूर्ण कथा-साहित्य में विषय

की विविधता के साथ नवाचार प्रमुखता से परिलक्षित हो जाता है। उनका कथ्य मॉडर्निटी तक सीमित नहीं रहता बल्कि भारतीय परंपरा और संस्कृति को समान रूप से महत्व देते हुए 'काशी का अस्सी' में विलय हो जाता है जहां 'अस्सी' काशी या बनारस का मात्र एक मोहल्ला न होकर भारतीय जीवन अनुभवों के सतत् प्रवाह के रूप में मौजूद है जो 20वीं शताब्दी के नवें दशक तक आते आते वैश्वीकरण और बाज़ार के प्रभाव को महसूस करते हुए अपनी पुरातन सांस्कृतिक पहचान को बचाए रखने हेतु संघर्षरत है। 21वीं सदी के शुरु आती दशक की काशी तथा उसके बाज़ार के साथ धर्म के नव-संसर्ग को तभी समझा जा सकता है, जब सर्ग हम उपन्यास के व्यंग्यात्मक चित्रण की मंशा को नहीं समझ लेते। इसके लिए काशीनाथ जी आरंभ में ही काशी की एक सामाजिक और सांस्कृतिक छवि गढ़ते हुए लिखते हैं, 'अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है। जो भाषा में गन्दगी, गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद् 'परम' कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएँ– तो, सबसे पहले इस मुहल्ले का मुख्तसर-सा बायोडाटा कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ, यह 'यूनिफॉर्म' है अस्सी का! हालाँकि बम्बई-दिल्ली के चलते कपड़े-लत्ते की दुनिया में काफी प्रदूषण आ गया है। पेंट-शर्ट, जीन्स, सफारी और भी जाने कैसी-कैसी हाई-फाई पोशाकें पहनने लगे हैं।[5] इस तरह इस तरह भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव से फक्कड़ मिजाज बनारस अपने स्वरूप को खोता चला जा रहा था, मोहल्ले का स्थान कॉलोनियों ने ले लिया था जिसे बनारस के सांस्कृतिक ह्रास के रूप में देखा जा सकता है। यही वह समय था जब बनारसियों के बीच आइडेंटिटी का सवाल मजबूती से उठाया जाने लगा।

बीसवीं शताब्दी के नवें दशक तक आते-आते काशी में बाज़ारीकरण का प्रभाव इतना बढ़ गया कि लोग अपने सिद्धांतों और आदर्शों को दरकिनार करते हुए अपनी संस्कृति को भी भूमंडलीकरण के प्रभाव में खोते चले गये। इतना ही नहीं बाजार की प्रत्येक वस्तु को प्राप्त कर लेने की महत्वाकांक्षा ने उनके सनातनी आदर्शों, सिद्धांतों और जीवन मूल्यों को कमतर कर दिया। इसे भारतेंदु हरिश्चंद्र भी भली-भांति पहचानते हुए अपने 'अंधेर नगरी' नाटक में लिख चुके थे कि 'नैन मछरिया रूप जाल में देखत ही फंसी जाए', भारतेंदु की यही दृष्टि आगे चलकर काशीनाथ सिंह के विचारों से जुड़ती हुई प्रतीत होती है। उन्होंने बहुत बार उपभोक्तावादी संस्कृति के बीच आदमी के छोटे होते कद को समझाने का प्रयास करते हुए लिखा, 'लोग इसके कारण महंगाई भूल गए, आंदोलन भूल गए, देश की समस्याओं पर विचार करना भूल गए। लोग जैसे चलना भूल गए वैसे हंसना भी भूल गए। डॉक्टर, इंजीनियर और अफसर सब बनना चाहते हैं पर आदमी कोई बनना नहीं चाहता। आज लोग पूजा भी करते हैं तो क्यों करते हैं किसी को पता नहीं।'[6] वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव से टूटते भारतीय समाज के बीच के अंतर्विरोधों, संघर्षों और बदलती मानसिकता का संकट ही काशी के धर्म और संस्कृति के ह्रास का कारण बना। जिसे बड़े ही विस्तार से काशीनाथ सिंह धर्मनाथ शास्त्री जैसे परंपरावादी पात्रों के माध्यम से दर्शाते हुए काशी की सभ्यता और संस्कृति पर खतरे के संकेत को स्वीकारते हैं। काशीनाथ सिंह इसकी ओर संकेत करते हुए समझाते हैं कि जो व्यक्ति पूर्व में विदेशी प्रभाव और सांस्कृतिक विकृति का विरोध करता था, वही आर्थिक लाभ के लालच में अपनी मूल परंपराओं से समझौता करने को तैयार हो गया। 'मादलेन' नामक एक विदेशी युवती को किराए पर कमरा देने के लिए शास्त्री जी ने अपने घर में अपने आराध्य शिवजी तक की उपेक्षा कर जो परिवर्तन किया उससे काशी की समृद्ध भावना आहत हुई।

काशीनाथ जी के उपन्यास के पात्र बिखरते सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच निराशा की कालिमा में नहीं घिरते, बल्कि उससे जूझते हुए संघर्ष करने की प्रेरणा भी देते हैं। 'रग्घू' तेजी से परिवर्तित होते शहरों और गावों की भौगोलिक स्थिति के बीच 'मातृभूमि' (गांव) से अलगाव के कारण खिन्न दिखता है, जो उसके मध्यवर्गीय जीवन की निराशा के साथ टूटते मानवीय संबंधों से ही उपजी खिन्ता थी। तेजी से परिवर्तित होते गांव के संदर्भ में काशीनाथ जी लिखते हैं, 'आंबेडकर

गांव हो जाने के बाद पहाड़पुर तेजी से बदल रहा था। गांव में बिजली आ गई थी, केबुल की लाइनें बिछ गई थीं। अखबार लेकर हाकर आने लगे थे। कुछ घरों में टी.वी., पंखे और फोन भी लग गए थे।'[7] उपन्यास में भूमंडलीकरण के प्रभाव के साथ तेजी से परिवर्तित होते गांवों की दशा का मूर्तिकरण करने का प्रयास किया गया है। आज गांव का जिस तेजी से विकास हो रहा है वह निश्चित रूप से चिंता का विषय है। परंतु लेखक की चिंता का कारण विकास नहीं है, विकास तो सृष्टि का नियम है, चिंता तो ग्रामीणों की भोली संवेदना के जड़ हो जाने का है। जिसे उपन्यासकार ने बड़े ही कलात्मक ढंग से जनसंख्या और आवासीय आवश्यकता के कारण बढ़ते शहरीकरण की समस्या के रूप में लिया है। आज जिस तरह से बड़ी-बड़ी कॉलोनियां निर्मित हो रही हैं वह मनुष्य की संवेदना, संबंधों के साथ उसकी सामूहिकता का निर्मम ध्वंस है। काशीनाथ जी लिखते हैं, 'अशोक विहार उनकी कॉलोनी थी जो अध्यापक थे, बाबू थे, दोयम दर्जे के सरकारी गैर सरकारी कर्मचारी थे और इससे भी खास बात यह है कि जो या तो रिटायर हो चुके थे या निकट भविष्य में रिटायर होने वाले थे'[8] और ये परस्पर असम्बद्ध थे जिनके बीच संवेदनात्मक सामूहिकता नहीं थी। उपन्यासकार ने अच्छी शिक्षा, अच्छे स्वास्थ सुविधाओं के लिए जन्मभूमि (गांव) को छोड़ने के दंश को स्वयं झेला था। काशीनाथ जी का चंदौली को छोड़कर बनारस जाना मात्र उनकी पीड़ा नहीं थी, बल्कि रग्घू के साथ उन तमाम भारतीयों की भी पीड़ा थी जिसे मार्मिकता के साथ लेखक ने मूर्त करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि 'रेहन पर रग्घू' को पढ़ते हुए पहली अनुभूति रचना की वस्तु और शिल्प पर ठहरते हुए भी विषय की नवीनता पर टिक जाती है, जो इस उपन्यास की सार्थकता का ही प्रमाण है।

विगत कई वर्षों में काशीनाथ जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से विषय और विधाओं की सीमाओं को तोड़ते हुए कुछ ऐसे विषयों को जोड़ा है, जो उपन्यास की संरचना को भीतर तक प्रभावित करते हुए अभिव्यक्ति के लिए भिन्न शिल्प की मांग करते हैं। उनका भिन्न शिल्प ही पारदर्शी अल्हड़ता के बीच दार्शनिक मुद्रा में मौजूदा दौर की मानवीय त्रासदी का विश्लेषण करते हुए उन्हें अपने दौर के दूसरे रचनाकारों से भिन्न बनाता है। काशीनाथ जी ने 'रेहन पर रग्घू' के माध्यम से स्पष्ट संकेत दे दिया है कि वैश्विक दौर का यह विस्तार उत्तरप्रदेश के एक गांव का ही विस्तार नहीं, बल्कि बनारस दिल्ली से होते हुए यह अमरीका तक है। जिसे काशीनाथ सिंह ने 'रेहन पर रग्घू' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उन्होंने भारत के पढ़े-लिखे मध्यवर्ग की बुजुर्ग पीढ़ी की बेचैनी को साकार कर पाठक और चरित्रों के मध्य एक संवेदनात्मक जुड़ाव कायम किया है। कथाकार की बेचैनी यहां अन्यथा नहीं है बल्कि वर्तमान पीढ़ी में निराशा, असुरक्षा और अवसाद की भावना के बीच विचारों का खुलेपन से उपजी बेचैनी है जो नौजवानों को गलत निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है।

उनका 'महुआचरित' उपन्यास भी खासा चर्चित हुआ जिसमें युवा-वर्ग की आधुनिक जीवन-शैली को प्रमुखता से उद्घाटित करते हुए लेखक ने 'लिविंग रिलेशन' तथा इसके दूरगामी परिणामों पर अपनी चिंता व्यक्त की है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है, वैसे-वैसे हमारे मूल्य भी खण्डित होते जा रहे हैं। आज बिना विवाह के शारीरिक संबंध बनाना आम बात हो गई है। जिसके दूरगामी परिणामों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लेखक युवा-वर्ग की मानसिक अस्थिरता का चित्रण महुआ और हर्षल के कार्यों से करते हैं। संस्कार और मूल्यों को दरकिनार कर महुआ अपने शादीशुदा मुस्लिम पड़ोसी के साथ उसकी पत्नी हामिदा बनकर इलाहाबाद से हैदराबाद का सफर तय करती है। उधर महुआ से प्रेम संबंध स्थापित होने के बावजूद भी हर्षल अपनी सहकर्मी वर्तिका से प्रेम करता है। यह भोगवादी मानसिकता का ही परिणाम है। उत्तर आधुनिकता के दौर में विकसित होते प्रेम को 'महुआचरित' की महुआ का आत्मकथन है, 'पूरी कोशिश की कि वह विश्वास कर ले कि मेरे यौवन का प्रथम पुरुष वही है और इसमें कामयाब भी हुई। मेरी ही तरह वह भी कामयाब हुआ यह साबित करने में कि उसके भी जीवन की प्रथम स्त्री मैं ही हूँ।'[9] ऐसे में संबंधों की विश्वसनीयता जैसे-जैसे अपने अस्तित्व की तलाश करती

जाती है, वैसे-वैसे संबंधों की अस्थिरता बढ़ती जाती है। इससे व्यक्ति के संबंध दूरगामी नहीं रह पाते, महुआचरित बदलते समय में प्रेम के विखंडित स्वरूप को हमारे सम्मुख पेश करता है।

वर्णन की शैली के कारण काशीनाथ सिंह को अतिशय यथार्थवादी उपन्यासकारों की श्रेणी में शामिल किया जाता है। परंतु बहुत बार उनके उपन्यास यथार्थ की जटिल प्रक्रिया से गुजरते हुए भी संवेदना की उस दिशा की यात्रा करते दिखते हैं जहां 'अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव चः' के भाव से पूरे महाभारत में कृष्ण खड़े थे। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'उपसंहार' युद्ध की विभीषिका से जूझती द्वारिका का हृदयविदारक वर्णन प्रस्तुत करता है जहां कृष्ण यह स्वीकारते दिखते हैं कि युद्ध किसी भी समाज या राष्ट्र के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता। युद्ध ने सदा मानवता को खण्डित करते हुए शांति को भंग करने का ही प्रयास किया है। युद्ध की इसी विभीषिका को कृष्ण के माध्यम से चित्रित करते हुए लिखते हैं कि 'राज्य में महामारी फैल रही है, लोग मर रहे हैं। गांव के गांव अपना राज्य छोड़कर दूसरे राज्य में भाग रहे हैं।'[10] जिस तरह से दो विश्व युद्धों के बीच मानवता दम तोड़ रही थी वह जितना हृदयविदारक था उससे कहीं अधिक मार्मिकता के साथ उपसंहार इसका चित्रण हुआ है– 'भीषण अकाल पड़ा है और क्यों न पड़े? राज्य की धरती जलकर राख हो चुकी है। नदियां और तालाब सूख चुके हैं। खेतों में काम करने वाले युद्ध की भेंट चढ़ चुके हैं। लोग बिलबिला रहे हैं।'[11] उपन्यास का कथानक पौराणिक होने के बावजूद भी काशीनाथ जी का यह उपन्यास वर्तमान हिंसा और युद्ध की विभीषिका का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए अहिंसात्मक होने की प्रेरणा देता है। परंतु काशीनाथ सिंह जी ने उसकी पौराणिकता तथा परम्परागत मान्यताओं को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकारा बल्कि पुनर्मूल्यांकन की मांग के साथ इसे अपने पाठकों को समर्पित किया है।

साररूपेण काशीनाथ सिंह के सभी उपन्यास वर्चस्व की सत्ता का विरोध करते हुए कभी सामाजिक सौहार्द की मांग करते दिखते हैं, तो कभी मौन होकर अपनी असहमति जाहिर करने की व्यंजना और टीस से पाठकों के हृदय को उद्वेलित करते हुए चिंतन के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं। वस्तुतः उनके उपन्यास अपनी विषय-वस्तु की परिधि तक सीमित नहीं रह जाते बल्कि युगीन प्रश्नों पर मुखर होते हुए अपनी जिम्मेदारी सुनिश्चित करते दिखते हैं।

सन्दर्भ :

1. अपना मोर्चा, काशीनाथ सिंह , रचना प्रकाशन, इलहाबाद, पृष्ठ संख्या 11। **2.** अपना मोर्चा, काशीनाथ सिंह , रचना प्रकाशन, इलहाबाद, पृष्ठ संख्या 22। **3.** अपना मोर्चा, काशीनाथ सिंह , रचना प्रकाशन, इलहाबाद, पृष्ठ संख्या 22। **4.** लोकधर्मी साहित्य की दूसरी धारा, चौथीराम यादव, अनामिका पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लिमिटड, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या -197। **5.** काशी का अस्सी (देख तमाशा लकड़ी का), काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 2016, पृष्ठ संख्या 11। **6.** गरीबिली गरीबी के कथाकार काशीनाथ सिंह, योगेश देसाई, पृष्ठ संख्या 158। **7.** रेहन पर रग्घू, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. संख्या 61। **8.** वही पृ. संख्या 104। **9.** महुआचरित, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. संख्या 64-65। **10.** उपसंहार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 58। **11.** उपसंहार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 59।

❑❑

- सहायक प्रोफेसर,
क्षेत्रीय केंद्र, कोलकाता
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
मो. 8090613455
ईमेल-bhuabhilash@gmail.com

हिजड़ा-किन्नर : विडम्बनाएं और समाधान

डॉ. निशा भारद्वाज

यह शोध पत्र किन्नरों पर है, जिनको उभयलिंगी, हिजड़ा (हिन्दी खड़ी बोली), किन्नर, छक्का (हिन्दी), अरावनी (तमिल), मंगलामुखी (कन्नड़), खुसरा या जखा (पंजाबी) और पवैया (गुजराती) कहकर सम्बोधित किया जाता है। मैं किन्नर या हिजड़ा शब्द का उपयोग जन्म से विकृत लोगों के लिए कर रही हूँ, जिनको नर-नारी की श्रेणी में शामिल नहीं किया जाता है, अर्थात उक्त व्यक्ति लैंगिक रूप से पुरुष-महिला की पहचान नहीं रखता है।[1] अतः इस लेख के तहत किन्नरों की पहचान, जीवन, स्वभाव, कार्य शैली एवं पद्धति, समस्या और भय (जीवन, पहचान और पेशे) का विश्लेषण किया जाएगा। इस लेख के लेखन में किन्नरों के साक्षात्कार और प्रकाशित सामग्री को आधार बनाया गया है। साक्षात्कार और प्रकाशित सामग्री के आधार पर ही किन्नरों के पौराणिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों और आज के परिप्रेक्ष्य में उनके जीवन और समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

कानूनी पहचान : सन् 2014 में भारतीय सर्वोच्च न्यायलय के न्यायधीश के.एस. राधाकृष्णन और ए.के. सीकरी ने फैसला देते हुए कहा कि सभी व्यक्तियों को अपने लिंग की पहचान करने का अधिकार है, इसलिए हिजड़ें या किन्नर कानूनी तौर पर तीसरे लिंग के रूप में पहचाने जाएंगे। लैंगिक पहचान जैविक पहचान की बजाय सहज धारणा का प्रतिपादन है। इस प्रकार किन्नर और ट्रांसजेंडर वव्क्ति संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 19 (ए) और 21 के तहत मौलिक अधिकारों के हकदार हैं। इनके साथ लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव, उनकी पहचान और निजता के अधिकार का हनन है।[2] यह फैसला जेंडर की धारणा को ही बदल देता है। अब तक जेंडर-अध्ययन के तहत हम महिलाओं की समाजिक-राजनीतिक और ऐतिहासिक निम्न स्थिति का विश्लेषण करते थे। अब जेंडर के तहत पुरुष-नारी के अलावा किन्नरों को तीसरे लिंग या व्यक्तिकी पहचान प्राप्त हो गई है। तीसरी श्रेणी के तहत उभयलिंगी या किन्नरों के साथ ट्रांसजेंडर (नारी गुण प्रधान पुरुष, मर्दाना महिला, बधियाकरण प्रणाली द्वारा बनाया गया किन्नर) व्यक्तियों को भी साथ में रख दिया गया है। अब सवाल उठता है कि, क्यों भारतीय संविधान के तहत किन्नरों के साथ बधिया पुरुषों को तीसरे लिंग की पहचान प्रदान की गई है?

उपनिवेश काल में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय रियासतों को ब्रिटिश राज्य में विलय करते समय नाजरों (बधिया पुरुष) के कारण सूचना-तंत्र की विफलता और अनेक राजनैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ा था। दूसरा ब्रिटिश सरकार को प्रशासन और प्रशासनिक व्यक्तियों पर नियन्त्रण स्थापित न कर पाने के कारण नाजरों की आड़ में राजघरानों या हरम की महिलाओं के विद्रोह का सामना करना पड़ा था। नाजर, भारतीय रियासतों के राजाओं-नवाबों का अपनी दासता और विकृत पहचान के कारण वफादार अधिकारी था। नाजर अपनी वफादारी के कारण

राजकीय प्रशासन का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था। नाजर अपनी शक्तिशाली स्थिति के कारण राजदरबार के निर्णयों को प्रभावित कर प्रशासनिक कार्य-कुशलता के तहत अधिकारियों पर नियन्त्रण रखता था। अपने पद एवं स्थिति के कारण नाजर ब्रिटिश सरकार की रियासतों को हड़पने की कूटनीतिक चालों के सफलतापूर्वक कार्यान्वित होने में मुख्य बाधा बन गया था। राजनैतिक असफलता के कारण ब्रिटिश सरकार ने नाजरों के कत्लेआम का निर्णय लिया था। जीवन रक्षा के लिए पतनशील रियासतों के नाजरों ने दूसरी रियासतों के राजाओं से सहायता और संरक्षण प्राप्त किया था।[3] ब्रिटिश राजनैतिक हितों के खातिर लेफ्टिनेंट गवर्नर एड्मंड ड्रमड़ (1814-95) ने नाजरों पर 'सार्वजनिक शालीनता का उल्लंघन करने एवं नैतिक परिवर्तन में असमर्थ' होने का आरोप लगाकर, कानून के माध्यम से उनसे जमीन का अधिकार छीन लिया था। नाजरों का जैविक अधिकार खून के रिश्ते (परिवारिक संबंध) पर आधारित नहीं था। इससे नाजरों के जीवन पर संकट छा गया था, जिसके परिणाम स्वरूप नाजर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ खुलेआम षड्यंत्रों में लिप्त हो गए थे। अतः नाजरों के कार्यों और कार्यवाहियों पर रोकथाम और नाजर नायक किरदार को धूमिल करने के लिए ब्रिटिश सरकार 1871 में 'क्रिमिनल ट्राइब एक्ट' लाई।[4] इस एक्ट में विभिन्न घुमंतु जातियों के साथ नाज को भी समुदाय अपराधी समुदाय में शामिल किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सन् 1952 में भारत सरकार ने यह कानून निरस्त कर दिया, लेकिन तब तक नाजर और किन्नर के बीच का अंतर समाप्त हो गया था। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रियासत और राजा न होने के कारण नाजरों का बनना रुक गया और किन्नरों को अपराधिक स्थिति में रखने के कारण उनका पतन हो गया था। अतः ब्रिटिश कानूनों और व्यवस्था के कारण समाज में किन्नरों के प्रति समाज का रवैया और धारणा ही बदल गई, जोकि समाज में किन्नरों की बदहाली एवं दयनीय स्थिति का मुख्य कारण है।

2014 में भारतीय संविधान द्वारा LGBT (Lesbia= समलैंगिक, Gay = समलैंगिक, Bisexual= उभयलिंगी, Transgender = उभयलिंग) लोगों अर्थात नपुंसक मर्दों या बधिया ऑपरेशन द्वारा महिला बने पुरुष किन्नरों और जन्मजात किन्नरों को थर्ड जेंडर की श्रेणी में रखा गया है। इसी क्रम में नारी गुण प्रधान ट्रांसजेंडर पुरुष बड़ी मात्रा में दृश्य पटल पर उभरे हैं। 21वीं सदी में समाज के दोहरे चरित्र और सामाजिक उत्पीड़न को नकार कर ट्रांसजेंडर लोगों ने समाज में स्थान, स्वीकारोक्ति और आदर के लिए संघर्ष करना आरम्भ कर दिया। इसी कारण हम एल जी बी टी (LGBT) लोगों की बढ़ती संख्या और मौलिक अधिकारों के लिए खुले संघर्ष को देख रहे हैं।[5] LGBT लोगों ने मौलिक अधिकारों की मांग के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाना और राष्ट्रीय स्मारकों पर सामूहिक रूप से मोमबत्ती जलाकर अपने अस्तित्व का पक्ष रखना आरम्भ कर दिया है। सन् 2000 से LGBT लोगों ने प्रतिवर्ष जून का महिना LGBT प्राइड मंथ (आत्म गौरव) या स्वयं के सम्मान में जश्न के तौर पर मनाने के लिए चुना है, जोकि LGBT के संघर्ष और स्वयं की आजादी (समाज में खुलेतौर पर अपने व्यक्तित्व को दर्शाना, सामाजिक बंधनों को तोड़ना और सामाजिक स्वीकारोक्ति की अपील) को महत्व प्रदान करता है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने समय, परिस्थितियों और उक्त व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति का सम्मान करते हुए फैसला लिया कि, समाज में सभी व्यक्तियों को किन्नर व्यक्तियों (Transgender) के लिंग के साथ-साथ उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति के आधार पर उनके व्यक्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। इसके तहत भारत सरकार ने 2014 में थर्ड जेंडर की पहचान का कानून पारित किया। भारत सरकार ने थर्ड जेंडर के सामाजिक कल्याण के लिए 2016 में शिक्षा का अधिकार और 2019 में स्वास्थ्य अधिकारों की प्राप्ति का कानून बनाया है। आधुनिक परिपेक्ष्य में थर्ड जेंडर के तहत किन्नरों की पहचान, कारण स्थिति, कानूनी हक एवं मान्यता को समझने के बाद पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्थिति को भी समझना जरूरी है। भारतीय पौराणिक ग्रन्थों और ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में किन्नरों के वर्णन, धर्म एवं समाज में स्थिति, निवास, अधिकार और स्थान को देखना आवश्यक है, क्योंकि

तभी हम किन्नरों के विकास, पत्तन, पद-स्थिति, अधिकारों और स्वीकार्य स्थिति का विश्लेषण करके समाज में उनके निम्नतम स्तर और अस्वीकार्यता कारणों को समझ पाएंगें।

पौराणिक ग्रन्थों में किनर : पौराणिक मान्यताओं के आधार पर माना जाता है कि हिजड़े या किन्नर का जन्म भगवान ब्रह्मा की छाया या उनके पैर के अंगूठे से हुआ था। किन्नरों को देवी-देवताओं के नर्तक-गायक के रूप में स्वीकारा गया है।

किं कुत्सितो नरः। अश्वमुखत्वा तथा त्वम्
स्वनामख्यात देवयोनि। स तु अश्वमुख त्वात्
कुत्सितनरः स्वर्गगायक तुम्बुरू प्रभृतिः।[6]

किन्नरों को भगवान शिव के सेवक स्वीकार करके आदर किया गया है। किन्नर अपनी पहचान भगवान शिव के अर्द्ध-नारीश्वर रूप से जोड़ते हैं। वाल्मीकि जी रामायण के उतरकाण्ड में किन्नरों के देवों से जन्म का *अत्र किंपुरुषी भूत्वा शैलीरोधसी वत्स्यथ आवामत्सु। गिरावस्मिन मीनाक्षी शीघ्रमेव विधीयताम।।* कहकर वर्णन करते हैं। तुलसीदास की रामचरितमानस के उतरकाण्ड में भगवान राम द्वारा किन्नरों की भक्ति से प्रसन्न होकर उनकी निस्वार्थ भक्ति के सम्मान में शब्द (सन्दर्भ) प्राप्त होते हैं कि पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई। सर्व भाव नाज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोई।[7]

रामचरितमानस के अनुसार 14 वर्ष के वनवास हेतु गमन के समय भगवान राम संग सभी अयोध्यावासी उनके पीछे-पीछे गए थे। भगवान राम ने अयोध्या नगरी छोड़ते हुए सभी नर-नारियों को वापस घर जाकर अपने-अपने कार्यों में लिप्त हो जाने का आदेश (जथा जोगु करि विनय प्रणाम, विदा किए तब सानुजराम।। नारि पुरुष लघु मध्य वडेरे सब सनमानि कृपानिधि फेरे।।) दिया था।[8] इसी प्रसंग से जुड़कर जनश्रुति प्रचलित है कि 14 वर्ष बाद वापस अयोध्या लौटने पर भगवान राम देखते हैं कि, एक डेरा उक्त प्रस्थान स्थल पर बैठकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। भगवान राम ने उन व्यक्तियों से वहीं पर रहने का कारण पूछा तो, उहोंने कहा कि, भगवान आपने नर-नारियों को घर और व्यवसाय स्थलों पर लौट जाने का आदेश दिया था, हमें नहीं। तब भगवान राम ने उनसे उनकी पहचान पूछी, तो उन्होंने स्वयं को न नर, न नारी के रूप में किन्नर बताया था। तब भगवान राम ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें मंगलामुखी यानि मंगलमय होने, बधाई वादक और सन्यासी यानि दूसरी दूनिया का प्राणी होने का वरदान दिया एवं उनके निवास को डेरे की संज्ञा प्रदान की थी और कलियुग में सम्मान प्राप्त करने का वरदान दिया था।[9]

तुलसीदास जी रामचरितमानस में किन्नर समाज का 26 बार सम्मानीय लोगों के साथ आदर सहित नाम लेते हैं। बालकाण्ड में सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किन्नर मुनिवृंद और सीता स्वयंवर में किन्नर भी नव वर-वधू को आशीर्वाद देने आते हैं– देव दनुज नर खग प्रेत पितर गंधर्व। बंदनउँ किन्नर रजनिचर कृपाकरतु अब सर्वा और देवतुल्य रूप माघ महिने में देव, असुर और नर संग स्नान करने का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– माघ मकरगति रवि जब होई, तीरथपति आव सब कोई। देव, दनुज, किन्नर नर श्रेणी, सादरमज्जहि सकल त्रिवेणी।।[10]

महाभारत में राजा द्रुपद की संतान शिखंडी का वर्णन है जो पहले स्त्री था और फिर पुंसत्व प्राप्त किन्नर जैसा था (कथं शिखण्डी गाण्डेय कन्या भूत्वा पुरा तदा। *पुरूषोऽभूद युधिश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह) इसे आगे कर अर्जुन ने युद्ध प्रारम्भ किया तो भीष्म युद्ध से विरत होकर घायल हो परास्त हुए। शिखण्डिन तमासाद्य भरतानां पितामह। अवर्यतज्ज संग्राम स्त्रीत्वं तस्यसात्रुसस्मरन।।*[11] विराट पर्व में वनवासी पांडव अर्जुन को अप्सरा उर्वसी से किन्नर या बृहन्नला वेश में रहने का वरदान रूपी श्राप प्राप्त करते देखते हैं।

9वीं सदी में तमिल भाषा के लेखक पेरूतेवनार ने महाभारत कथा का परतावेनपा नाम से लेखन किया था। इस कृति के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण ने पांडवों को उनकी विजय सुनिश्चित करने के लिए काली माता को एक वीर योद्धा की बलि चढ़ाने की सलाह दी थी। बलि देने के लिए अर्जुन और नाग कन्या उलुपी के पुत्र अरावन ने हामी भरी थी। परन्तु बलि देने से पहले वीर अरावन ने विवाह की मांग रखी। अरावन की विवाह की मांग को श्रीकृष्ण ने मोहिनी रूप धारण करके

(क्योंकि कोई भी पिता अपनी पुत्री को विधवा जीवन देने के लिए तैयार नहीं हुआ था) पूरा किया था। मोहिनी ने विवाह की एक रात्रि बाद राजकुमार अरावन द्वारा बलि देने के लिए अपना मस्तक काट देने पर चूड़ियाँ तोड़कर अपने वैधव्य का शोक मनाया था। इसी कारण दक्षिण भारत के किन्नर स्वयं की पहचान वीर अरावन से स्थापित करके खुद को अरावनी कहते हैं। भगवान अरावन का तमिलनाडु के विल्तुपुरम जिले के उलुदुरपेट तालुका के कूवंगम गांव में मंदिर है, जहाँ पर हर साल किन्नर समुदाय 18 दिन तक भगवान अरावन संग स्वयं का विवाह उत्सव मनाकर नारियल की बलि देकर अपनी चूड़ियां तोड़कर विधवा होने का शोक मनाते हैं।[12] *तमिल भाषा में रचित महाभारत कालीन अरावन मोहिनी कथा का 14वीं सदी में दोबारा विलिपुट्टरलवर ने मकपरतम ग्रन्थ में, 15वीं सदी में विलिपुथुरर ने विल्लिभारतम् में और नल्लपिल्लई ने 18वीं सदी में भारतम् ग्रन्थ नव तरीके से वर्णन किया है।* अरावन परम्पराओं का अन्य स्रोत तमिलनाडु के रंगमंच पर कुथू नाम से अरावन की बलि को अरावन कलप्पली नाम से मेलनूर कोटूकिझी और येरावड़ी गांवों में प्रत्येक वर्ष मंचित किया जाता है।[13]

चिकित्कीय और साहित्यिक आधार पर तृतीय प्रकृति के व्यक्तियों की श्रेणी 3 हजार साल पहले से भारत में विद्यमान है। तृतीय प्रकृति की धारणा का कारण पुरुष संग समरूपता न होना वजह बना था। इनको साहित्यिक आधार पर नपुंसक कहा गया था, जिसका अक्षरसः मतलब न पुरुष न महिला होता है। किन्नरों ने महिलाओं के व्यवसाय गायन, नृत्य और बाद में वेश्यावृति को भी अपनाया था। इस प्रकार साहित्यिक, व्याकरण और चिकित्सकीय आधार पर तृतीय प्रकृति की पहचान को छठी शताब्दी ईसा पूर्व में अपनाया गया था। वैश्विक आधार पर तृतीय प्रकृति (शारीरिक रूप से विकृत व्यक्ति) को चौथी शताब्दी में पहचान या मान्यता प्राप्त हुई थी। जैन साहित्य में इनको त्रयरसिका और तृतीया कहकर सम्बोधित किया गया है। ट्रांसजेंडर पुरुषों महिलाओं को कलीबा और पंड़ाका शब्द से पहचान प्राप्त हुई थी।

ट्रांसजेंडर व्यक्ति बाहरी तौर पर पुरुष शरीर का स्वामी और कार्य पद्धति में महिलाओं का आचरण अपनाते हैं। जैन साहित्य में ट्रांसजेंडर व्यक्ति के बजाय तृतीय प्रकृति के व्यक्तियों (नारी आत्मा) को अपनाया गया था।[13] इतिहासकार शालिनी शाह ने उभयभिस-रिकानुसार बताया है कि, किन्नरों या तृतीया प्रकृति व्यक्तियों को नारी के मुकाबले ज्यादा फायदे प्राप्त थे, जैसे कि प्रेम उत्सव के दौरान महिना एवं गर्भ धारण की समस्या बाधा नहीं बनती है। नपुंसक व्यक्ति यौन संबंधों का सुख लेकर भी महिला हाव भाव का प्रर्दशन करते थे। इस प्रकार नपुंसक और कुछ मर्द महिला आचरण का व्यवहार करके नारी शील को भंग करने का प्रयास करते थे। इसलिए महिलाओं को नपुंसक पुरुषों से सावधान रहने को कहा जाता था।[14]

बौद्ध धर्म के जातक ग्रन्थ 481 में किन्नर को पक्षी की तरह निर्दोष और हानिरहित व्यक्ति की संज्ञा दी गई है। जातक ग्रंथ 485 में एक किन्नर द्वारा माता-पिता द्वारा त्यागी संतान का पालन-पोषण करने का उदाहरण प्राप्त करते हैं। जातक ग्रन्थ 504 में एक किन्नर की आत्मकथा का प्रसंग है। बौद्ध धर्म में किन्नर को मानव वर्ग में रखा गया है। कालिदास ने कुमारसम्भव ग्रन्थ में किन्नर को हिमालय वासी कहा है। इस प्रकार हमें अपने इतिहास में किन्नर का मानवीय गुणों के तहत वर्णन प्राप्त होता है. जोकि समाज में आमजन की तरह रहता, खाता-पीता एवं कार्य करता था। किन्नरों की सम्मानीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्थिति को देखने के बाद मैं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनकी स्थिति का वर्णन प्रकाशित सामग्री और साक्षात्कार (यूटूब पर काजल मंगलामुखी और पानीपत के कुछ किन्नरों से बातचीत) के आधार पर करूंगी।

किन्नरों की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पहचान, स्थिति एवं कार्य : एक व्यक्ति के तौर पर किन्नर लैगिंक पहचान न होने के कारण स्वयं को कर्मकाण्डों में शामिल नहीं कर सकते हैं। किन्नर बिना जातिगत और धार्मिक भेदभाव के समूह में रहते एवं कार्य करते हैं। किन्नर बच्चों के जन्म और विवाह के समय नाच-गाना करके बधाई देते हैं।[15] किन्नरों की आराध्य देवी बहुचारा माता या मुर्गे वाली माता का मंदिर अहमदाबाद में स्थित है।

यह उतर भारत के किन्नरों का एकमात्र मंदिर है। किन्नरों का मुख्य निवास स्थल उतर भारत को माना जाता है।[16] चिकित्सकीय आधार पर ज्यादातर किन्नरों का जन्म पुरुष रूप में होता है। परन्तु मनोवैज्ञानिक आधार पर किन्नर अपनी पहचान और मनोभाव महिला रूप (हारमोन्स के कारण) में प्रस्तुत करते हैं। पुरुष किन्नर को अगवा कहा जाता है। नारी-आत्मा के कारण पुरुष किन्नर अपनी लैंगिक पहचान को ऑपरेशन द्वारा बदलवाते हैं। हालांकि सभी किन्नर अपनी खराब आर्थिक स्थिति के कारण इस ऑपरेशन को डाक्टर से करवाने में सक्षम नहीं होते हैं। ज्यादातर किन्नर अपना ऑपरेशन आराध्य बहुचारा माता मंदिर में बनी छोटी-छोटी घास-फूस की कूटियाओं में दाई से करवाते हैं। दो-तीन दाई किन्नर के हाथों को सिर के पीछे करवाकर उसके हाथों और टांगों को पकड़ कर चाकू से उसके लिंग को काट देती हैं। इस दर्दनाक लिंग भेदन के बाद बहते खून और संक्रमणशील स्थिति में उक्त किन्नर को बिना दवा-दारू के कुछ घंटों के लिए छोड़ दिया जाता है। लगातार खून बह जाने पर भी और संक्रमण से बच जाने वाले किन्नर के जीवन को बहुचारा माता का वरदान और इस नव-स्थिति को महिला होने का प्रमाण माना जाता है। इस प्रक्रिया को निर्वाण की संज्ञा प्रदान कर रखी है। निर्वाण या लिंग भेदन के बाद अगले 40 दिन तक उक्त किन्नर का उसकी गुरु माता एक जच्चा की तरह ख्याल रखती है। 40 दिन बाद उक्त किन्नर को आईना दिखाकर उसकी दाढ़ी-मूछों को साफ करके सुबह-सुबह (दिन निकलने से पहले) समुद्र में जल-पूजन करवाकर उसकी गोद भराई की जाती है। फिर उसको नव जीवन संग गूरु माता नया नाम और अपना चेला होने का दर्जा प्रदान करती है। एक किन्नर का नाम, किन्नर समुदाय में शामिल होने से लेकर गुरु प्राप्ति तक कई बार बदला जाता है।[17]

उत्तर भारत के किन्नरों ने स्वयं को एक धार्मिक पंथ की तरह जोड़कर रखा है। इनका संगठन एक जाति की तरह होता है। किन्नरों की एक जमात होती है, जोकि किन्नरों के समूह व हित से संबधित फैसले करती है। उत्तर भारत में किन्नरों के पाँच बड़े समूह या घराने हैं जोकि दिल्ली, मुम्बई, चण्डीगढ़, अहमदाबाद और लखनऊ में स्थित हैं। किन्नरों के सामाजिक संगठन के तहत गुरू-चेले का सम्बंध होता है। किन्नर समूह बधाई देने, भिक्षावृत्ति और रेड लाइट एरिया में वेश्यावृति का कार्य भी करते हैं। गुरू ही समूह द्वारा कमाए गए समस्त धन की स्वामी होती है। रेड लाइट एरिया में वेश्यावृत्ति का काम करने वाले और ट्रैफिक लाईटों पर वे रेल-बसों में भिक्षावृत्ति या आशीर्वाद देकर मांगने का काम करने वाले किन्नर भी अपने गुरू के अधीन कार्य करते हैं।[18]

किन्नर समुदाय गुरु-चेले की नातेदारी द्वारा अपनी परम्पराओं का संरक्षण और संवहन करते हैं। गुरू अपने चेलों की जरूरतों का माँ की तरह ख्याल रखती है। उनको अपने डेरे के रीति-रिवाजों की शिक्षा देती है और निश्चित समय पर अपने उत्तराधिकारी का चयन करती है। संबोधन के आधार पर किन्नर अपने समूह में पारिवारिक सम्बंधों का व्यवहार करते हैं, जैसेकि गुरु-चेला, दादी यानि गुरु की गुरु के लिए सम्बोधन, नानी, दादी की गुरु के लिए, बुआ शब्द चेले अपनी गुरु की बहन गुरु (दूसरे समूह की गुरु) के लिए एवं बहन शब्द अपनी हम उम्र किन्नरों के लिए इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार किन्नर स्वयं और समूह को सामाजिक संबंधों में बांधकर रखते हैं। किन्नर समुदाय अपने निवास स्थल को कोठी और समूह को डेरे की संज्ञा प्रदान करते हैं। एक कोठी में गुरु के अधीन 4-5 किन्नरों से लेकर 15-16 किन्नर निवास करते हैं। प्रत्येक कोठी का गुरु दूसरी कोठी के गुरु संग मिलकर अपना-अपना क्षेत्र निर्धारित करते हैं। किन्नरों में एक-दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश करने, भिक्षावृत्ति या बधाई लेने पर आपस में मारपीट और क्षेत्रीय विवाद के रंजिश में तब्दील (दिल्ली और हरियाणा के किन्नरों एक-दूसरे की कोठी में घुसकर गोलीबारी हो चुकी है) होना आम बात है। किन्नर प्रत्येक साल अपने पूर्वजों को सम्मान देने और उनके नाम पर रोटी या मृत्युभोज देने के लिए किन्नर सम्मेलन का आयोजन करते हैं, जिसमें अन्य राज्यों के डेरों के किन्नरों को आमन्त्रित किया जाता है। किन्नर सम्मेलन में ही किन्नरों की समस्याओं पर चर्चा और डेरों के बीच के आपसी सामाजिक-आर्थिक तनाव व कारणों को सुलझाया जाता है। 2022 का किन्नर सम्मेलन पानीपत में हुआ था।

अब सवाल उठता है कि, ऐसे क्या कारण हैं कि किन्नर स्वयं को परिवार में नहीं रख सकते या परिवार किन्नर बच्चे को अपने साथ नहीं रख सकते, उनकी आर्थिक और शैक्षिक बदहाली के कारण क्या हैं तथा उनकी समस्याएँ क्या हैं। इन सवालों का जवाब मैं मनीमाजरे (चण्डीगढ़) की किन्नर काजल मंगलामुखी के यू-टूब पर उपलब्ध साक्षात्कार द्वारा दूँगी। मैंने काजल मंगलामुखी से 11 जुलाई 2023 को 2:53 पर 11 मिनट बात की है। काजल जी INC Media Associate और किन्नर समाज की भलाई के लिए एक किन्नर-संस्था का संचालन करती हैं। काजल जी ने स्वयं अपने यू-टूब पर उपलब्ध साक्षात्कारों की जानकारी प्रदान की है तथा अपने साक्षात्कारों को इस पत्र लेखन में उपयोग करने की अनुमति दी है।[19]

काजल मंगलामुखी का जन्म कर्नाटक के एक मध्यमवर्गीय परिवार में तीसरे पुत्र के रूप में हुआ था। काजल के पिता ने इनका नाम राजशेखर उर्फ राजू रखा था। राजू को 5वीं कक्षा में लड़कियों जैसे शौक और मनोभाव होने कारण अपने दोनों भाइयों से अलग स्थिति और पहचान का बोध होने लगा था। यद्यपि परिवार और कक्षा के मित्रों ने उनके लड़के होने की पुष्टि करके उनके मनोभावों पर विराम लगाने का असफल प्रयास किया था, परन्तु आसपास के अन्य लोगों और परिजनों को उनके हाव-भाव के कारण उनके किन्नर होने का निश्चय हो गया। बालक राजू का छठी-सातवीं कक्षा में उनके एक परिचित अंकल ने बलात्कार किया और यह सिलसिला लगातार नौवीं कक्षा में घर छोड़कर भागने तक चलता रहा। यौन व्यभिचार से तंग आकर नौवीं कक्षा में राजू घर छोड़कर बेंगलुरू शहर भाग गया। बेंगलुरू के पार्क में दूसरे किन्नरों ने राजू को किन्नर रूप में पहचान लिया और राजू को उसकी किन्नर पहचान से वाकिब करवाया, यहीं पर राजू को अपने किन्नर होने की पहचान का पता चला। राजू एक किन्नर को अपना गुरु मानकर उसके साथ मुम्बई चला गया। गुरु ने राजू को कमाठीपुरा के किन्नर वेश्यालय को बेच दिया, जहाँ पर उसने वेश्यालय के गुरु की बुजुर्ग गुरु माता की सेवा-टहल का कार्य कई साल तक किया। गुरु माता ने राजू को बिन्दु नाम दिया। पुरुष ग्राहकों को किन्नर वेश्याओं द्वारा लूटे जाने और 6-7 साल जबरन वेश्यावृत्ति करवाए जाने तथा बार-बार की मारपीट से तंग आकर राजू ने यहां से भागने का निर्णय लिया। कमाठीपुरा से भागकर बिन्दु रूप में राजू ने कई साल ट्रैफिक रेड लाईटों पर भिक्षावृत्ति या मंगती का काम किया। मंगती के दौरान राजू ड्रग और दारू का आदी हो गया। इससे राजू का किन्नर रूप में जीवन पूर्ण तौर पर नारकीय हो गया। इसी दौरान राजू की पंजाब के किन्नर गुरु सत्या से मुलाकात हुई। मोहाली के मनीमाजरा गाँव की किन्नर-कोठी में रहते हुए राजू ने गुरु से बधाई देने की रश्मों में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने उसके अगवा यानी पुरुष किन्नर होने की बात कहकर, महिला किन्नर द्वारा ही इस काम को करने की बात बताई। किन्नर परम्पराओं का ज्ञान पाकर राजू ने बहुचारा माता मंदिर में दाई को 3000 रुपये देकर अपना लिंग भेदन करवाया और महिला किन्नर की पहचान पाई। गुरु माँ सत्या ने बिन्दु (राजू) महिला किन्नर बनने पर उसे काजल नाम प्रदान किया। काजल ने अंग्रेजी भाषा का ज्ञान वेश्यावृत्ति के दौरान अपने विदेशी ग्राहकों से प्राप्त किया था।[20] इस प्रकार अंग्रेजी भाषा में वाक्पटुता से काजल ने लड़कों के ही नहीं लड़कियों के जन्म को भी उनके परिवारों के समक्ष शुभ बताकर बधाई देने की परम्परा स्थापित की। अपनी थोड़ी बहुत शिक्षा और प्रभावी संवाद के कारण काजल आम किन्नर से कई गुना कमाने लगी। काजल ने बधाई देने का कार्य करते हुए अपनी कन्नड़ पहचान के साथ मंगलामुखी नाम पहचान को साथ में जोड़ लिया। अब काजल अपने डेरे की गुरु बनकर किन्नर समाज की भलाई के लिए कार्य कर रही हैं।

काजल ने जीवन के उतार चढ़ावों को देखकर किन्नर समाज के कल्याण के लिए शिक्षा अभियान और स्वास्थ्य आदि अन्य कार्यक्रमों का संचालन करती हैं। काजलजी यू-टूब पर अपने INC Media Associate चैनल द्वारा किन्नर समुदाय की समस्याओं, परम्पराओं और जीवन को लोगों के समक्ष रखती हैं। इस प्रकार काजल मंगलामुखी समाज से किन्नरों की पहचान स्वीकारने, सम्मान देने और मानवीय व्यवहार करने की

अपील करती हैं। इसके अलावा काजल दूसरे किन्नरों से साक्षात्कार करके पुरुष प्रेमियों द्वारा किन्नरों को ठगे जाने और समाज द्वारा अपमानित एवं मारपीट करने के मामले भी उजागर करती है। जैसे पंजाब की सिमरन का उसके प्रेमी द्वारा, सरपंच बनने, अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर लेने और विवाह के 2 साल बाद किन्नर कहकर अपमानित करने एवं तलाक लेने का मामला, इसी प्रकार अनेक किन्नरों की भावनाओं का लड़कों द्वारा मजाक बनाने और ट्रांसजेंडर के किन्नर बनने एवं उनके परिवारों द्वारा सामाजिक कलंक कहकर नकार देने की अनेक कहानियाँ दिखाती है।

इसी प्रकार पानीपत की मुस्कान किन्नर का पिता पुलिस अधिकारी है। मुस्कान का जन्म भी दो बहनों के भाई राजेश के रूप में हुआ था। राजेश के माता-पिता ने पुत्र की किन्नर पहचान को छुपाकर उसका पालन-पोषण लड़के के रूप में किया था। अपनी किन्नर पहचान से अनजान राजेश अपनी भावनाओं के कारण सेकंड्री स्कूल में लड़कियों के बीच घुल-मिलकर रहता था। राजेश के लड़कियों जैसे शौक और शारीरिक हाव-भाव के कारण पी टी आई शिक्षक ने उसको छुट्टी के समय बाथरूम में बुलाकर रोक लिया और बाथरूम में जबरन राजेश के कपड़े उतारकर उसकी किन्नर पहचान पाकर बलात्कार कर डाला। शिक्षक ने बलात्कार करने के साथ ही उसके छोटे जनानांगों को सबके समक्ष बता देने की बात कहकर अपमानित करके चुप कर दिया। पी टी आई शिक्षक ने अन्य शिक्षकों को भी राजेश के किन्नर होने की बात बताकर उसे शारीरिक रूप से उत्पीड़ित करवाया। डरा सहमा राजेश अभी तक अपने साथ बलात्कार होने और अपनी पहचान को समझ नही पाया था। हिम्मत करके राजेश ने पिता को शिक्षकों द्वारा बलात्कार करने की बात बताई। पुलिस अधिकारी पिता ने राजेश पर उसके कमजोर होने और परिवार के लिए कलंक होने का आरोप लगाकर पिटाई कर डाली। समाज में एक पुलिस अधिकारी के बेटे के बलात्कार और किन्नर होने की बात फैलने के डर से राजेश के पिता ने बलात्कारियों के खिलाप कारवाई करने के स्थान पर चुपचाप राजेश का स्कूल बदल दिया। दूसरे स्कूल में भी अध्यापकों और सीनीयर विद्यार्थियों द्वारा यौन शोषण करने पर पिता ने पढ़ाई छुड़वाकर ITI में दाखिला करवा दिया। परिवार ने राजेश के यौन शोषण की कानों-कान किसी को खबर नहीं होने दी। ITI में अध्ययन के दौरान मुस्कान अपनी लड़की जैसी स्थिति और अलग पहचान कारण किन्नरों के तरफ आकर्षित हो गया। किन्नरों से अपनी पहचान और समाज में अपनी विषम स्थिति जानकर राजेश मुम्बई भाग गया। मुम्बई में फुटपाथ पर रहने के दौरान कई बार जबरन शरारती लड़कों द्वारा उसका उत्पीड़न किया गया। भीख मांगने पर पुलिस वालों ने भी शारीरिक रूप से उत्पीड़ित किया। कहीं से भी न्याय और सहायता न पाकर राजेश ने मुस्कान बनकर सालों तक वेश्यावृत्ति का काम किया। मुस्कान को वेश्यावृत्ति के कारण स्वास्थ्य सम्बंधित अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। दूसरा सामाजिक जागरूकता न होने के कारण डॉक्टरों से भी भेदभाव मिलता है। अन्त में स्वास्थ्य कारणों और समाज द्वारा नकारे जाने के बाद मुस्कान ने पानीपत में आकर टोल पर मंगती का कार्य करने लगी। पानीपत में मुस्कान का कई पुरुष प्रेमियों ने आर्थिक फायदा उठाया। कई बार दिल टूटने और समय के साथ आई परिपक्वता ने मुस्कान को सिखाया कि किन्नर से कोई पुरुष प्रेम नहीं करता है। केवल वह किन्नर से आर्थिक और शारीरिक सुख प्राप्त करता है।[21]

किन्नरों से साक्षात्कार के दौरान किन्नर जीवन के अनेक रूप देखने को मिले। जैसेकि असामाजिक अपराधी लोगों ने भिक्षावृत्ति के लिए गरीब परिवारों के छोटे लड़कों का अपहरण करके उनको किन्नर बना दिया। इस बात का प्रमाण रवीना है। रवीना का बंगाल के गरीब परिवार में लड़के के रूप में जन्म हुआ था। रवीना की माँ गरीबी से निजात पाने के लिए अपनी 12-13 साल की बेटी शिखा से वेश्यावृत्ति करवाती थी। पिता और भाई रवीना की माँ द्वारा शिखा से वेश्यावृत्ति करवाने की खबर हुई, तो पिता और भाई ने शिखा से वेश्यावृत्ति करवाने का विरोध किया। तब माँ ने चालाकी से अपने पति को घरेलु हिंसा का आरोप लगाकर जेल में डलवा दिया। बेटे को चुपचाप गुंडों को बेचकर अगवा करवाकर किन्नर रवीना बनवा दिया, ताकि कोई उसका विरोध न कर

सके। रवीना ने किन्नर जीवन की विषमता को बहन से प्रेम के कारण चुपचाप अपना लिया। रवीना ने अपने किन्नर समुदाय की सहायता से अपनी माँ से बहन शिखा का पीछा छुड़वाया। रवीना ने अपनी बहन के जीवन को खुशहाल बनाने के लिए उसका दूसरे शहर के एक युवक से विवाह करवाया। विवाह के बाद भी माँ ने शिखा को भावनात्मक आधार पर ब्लैकमेल किया और किसी न किसी बहाने से पैसे मांगती रहती थी। लगातार पैसों की मांग ने शिखा और उसके पति के बीच झगड़े की नींव रख दी, जिसके कारण शिखा का तलाक हो गया। तलाक के बाद शिखा ने माँ और अपनी बेटी के पालन-पोषण के लिए दोबारा वेश्यावृत्ति में कदम रख दिया। रवीना को जब शिखा के तलाक और पेशे की जानकारी हुई, तो दोबारा बहन को वेश्यावृत्ति के चंगुल से निकालने की कोशिश में गंडों से संघर्ष में अपनी जान गवानी पड़ गई।[22] रवीना ने बहन को उचित मार्ग अपनाने की सलाह दी थी। जिसके कारण आज शिखा वेश्यावृत्ति छोड़कर फैक्टरी में काम करके अपने जीवन का गुजर बसर कर रही है। शिखा की माँ को मुम्बई पुलिस ने शिखा को बचपन में वेश्यावृत्ति में धकेलने, दोबारा वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर करने, रवीना को किन्नर बनाने और गुण्डों द्वारा उसकी हत्या करवाए जाने के आरोप में गिरफ्तार करके न्यायलय से सजा दिलवाई है।

किन्नर सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 19 लाख हैं, जोकि देश की कुल जनसंख्या का 0.15 प्रतिशत (श्रिओशी सिन्हा, डॉ. पीयुष सक्सैना) है। काजल मंगलामुखी, मुस्कान, रवीना एवं अन्य किन्नरों से बातचीत करके मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि पुरुष रूप में किन्नर पैदा होने के बावजूद इनकी आत्मा, शारीरिक-हारमोनल-मनोवैज्ञानिक दशा महिला की होती है। माता-पिता अपने किन्नर बच्चों को उनकी वास्तविकता के संग अपना नहीं पा रहे हैं। माता-पिता को अपने किन्नर बच्चों को उनकी पहचान संग अपनाकर शिक्षित करके आत्मनिर्भर बनाना चाहिए। माता-पिता को स्वयं अपनी किन्नर संतान को उनकी किन्नर पहचान से अवगत कराकर सामाजिक उत्पीड़नों से बचाव और सम्मान से रहने की शिक्षा देनी चाहिए। सामाजिक उत्पीड़न या यौन हिंसा होने पर (शर्मिंदा होने की बजाय) पोक्सो एक्ट का सहारा लेना चाहिए।

भारतीय पुलिस को भी मानवीय व्यवहार के तहत किन्नरों से पैसा वसूलने के लिए मारपीट नहीं करनी चाहिए। भारतीय समाज में किन्नर के अस्तित्व को ही स्वीकारा नहीं जाता तो उनको दफ्तरों में कार्य कौन देगा। समाज के दोगले व्यवहार के कारण किन्नर व्यक्तियों की शिक्षा बीच में रुक जाती है या हो ही नहीं पाती है। इसलिए किन्नर व्यक्ति को मजबूरन वेश्यावृत्ति, मंगती और बधाई देने का काम करना पड़ता है। पुलिस को भी किन्नरों के खिलाफ होने वाले अपराधों को गंभीरता से लेना चाहिए, ताकि कोई किन्नर को अपमानित और बेईज्जत न कर सके। दूसरा किन्नर बच्चों से जबरन वेश्यावृत्ति करवाने और उनके साथ होने वाले यौन उत्पीड़न को बलात्कार स्वीकार करके विशेष कानून बनाना चाहिए। तीसरा, किन्नर की नारी सुलभ कोमल भावनाओं का फायदा उठाने वाले पुरुषों द्वारा उनके संग विवाह और धन गबन को अपराध मानना चाहिए। हमें आधुनिक परिवेश के तहत आगे बढ़कर किन्नर समाज को शिक्षित और स्वावलम्बी बनने में सहायता करनी चाहिए। अब तो कमजोर आर्थिक स्थिति वाले पुरुषों ने भी किन्नर भेष धारण करके (नकली किन्नर के गले में गोटी होती है) भीख मांगना आरम्भ कर दिया है। भीख न देने पर लोगों के साथ गाली-गलौच और मारपीट करते हैं, जोकि गलत है। अतः हमें ऐसे लोगों को भी रोक कर किन्नर समाज को बदनाम होने और उनके पारम्परिक रोजगार को बचाना चाहिए।

संदर्भ/पादटिप्पणी

1. किन्नर बच्चे का जन्म भी आम बच्चों की तरह ही होता है। सामान्य बच्चों के लिंग उनकी उम्र के साथ बढ़ते हैं। किन्नर बच्चों के लिंग का विकास नहीं होता है। किन्नर बच्चे का लिंग जन्म समय से ही सामान्य बच्चों से छोटा होता है। किन्नर बच्चों में सिर्फ महिला हारमोन्स काम करते हैं। **2.** National Legal Services Authority (NLSA) vs Union of India, Air 2014 SC 1863, Supreme Court of India. 3. C. A Bayly, Rulers, Townsmen and Bazaars : North Indian Society in the Age of British Expansion, 1770-1870, South Asian Studies, Cambridge, Cambridge University press, 1992.

1857 की क्रांति के दौरान हम सबने शाही महिलाओं द्वारा विद्रोह करने और सेना का नेतृत्व करने के बारें में बहुत पढ़ा है। वास्तव में चुनिंदा महिलाओं लक्ष्मीबाई, चेनम्मा आदि को छोड़कर बाकी के विद्रोहों का नाजरों ने नेतृत्व किया था, जिसमें से अवध की बेगम हजरत महल और दिल्ली की बेगम जीनत महल जैसे किरदार उभरे। मुस्लिम महिलाओं द्वारा नेतृत्व की कहानियों वामपंथी इतिहासकारों द्वारा बुनी गई हैं। इसकी एक वजह नाजर व्यक्तियों की समाज में से भूमिका को समाप्त करना था, दूसरा नाजर नामक व्यक्तियों को इतिहास और स्मृतियों में से मिटाना है, ताकि कोई नाजर नामक व्यक्ति का नाम आदर सहित न ले और श्रेय शाही बेगमों को मिल जाए। **4.** ब्रिटिश सरकार नाजरों और किन्नरों के बीच, सेक्स और जेंडर के आधार पर अन्तर स्थापित नहीं कर पाई थी। ब्रिटिश सरकार की नजर में नाजर का मतलब किन्नर होता था। जबकि नाजर बधिया पुरुष होता है और किन्नर जन्म से विकृत लिंगी और स्त्री हारमोन्स वाला व्यक्तिहोता है। **5.** एल जी बी टी लोग समाज की मुख्य धारा के व्यक्ति हैं। भारतीय पौराणिक ग्रन्थों और इतिहास में हमें ऐसे बहुत से व्यक्तियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। जैसेकि, इला, राजा मान्धाता, मोहिनी, अर्द्धनारीश्वर शिव-पार्वती, अर्द्धनारीश्वर राधा-कृष्ण आदि। ऋग्वेद में भी विकृति ही प्रकृति कहकर सभी व्यक्तियों को मुख्य धारा में सम्मिलित किया गया है। **6.** वाल्मीकि कृत रामायण, 99वां सर्ग, श्लोक 22। **7.** तुलसीदास कृत रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 398/4। **8.** तुलसीदास कृत रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड। **9.** वीरेन्द्र मिश्रा, ट्रांसजेंडर इन इण्डिया : एन इन्ट्रोडक्शन, रटजलेण्ड, न्यूयार्क, पृष्ठ, 5 और एम मिशेलराज, हिस्टोरिकल इवोल्यूशन ऑफ ट्रांसजेंडर कम्यूनिटी इन इण्डिया, एशियन रिव्यू ऑफ सोशल सांइस, वोल्यूम 4, न. 1, पृष्ठ संख्या 17-19। **10.** तुलसीदास, रामचरितमानस, उतरकाण्ड 87 क.। **11.** महाभारत, भीष्मपर्व 69 सर्ग, श्लोक 29। **12.** वीरेन्द्र मिश्रा, ट्रांसजेंडर इन इण्डिया : एन इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ संख्या, 6-7। **13.** लियोनार्ड जविलिंग और एम.जे. स्वीट, लाइक ए सिटी अलबेज : द थर्ड सेक्स एण्ड क्रियेशन ऑफ सेक्सुअलिटी इन जैन लिटरेचर, जर्नल ऑफ द हिस्ट्री ऑफ सेक्सुअलिटी, वोल्युम 6 नं. 3, जनवरी 1996, पृष्ठ संख्या, 359-84. 14। **14.** शालिनी शाह, लव, इरोटिज्म एण्ड फिमेल सेक्सुअलिटी इन क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर, 7-10 सेंचुरी, मनोहर, 2009, पृष्ठ संख्या, 359-84। **15.** मैरिस इ ओपलर, फरदर कम्पैरिटव नोट्स ऑन द किन्नरा ऑफ इंडिया, अमरिकन एन्थरोपलोजिस्ट, न्यू सीरीज, वोल्यूम, 83, नं. 6, दिसम्बर 1961, पृष्ठ संख्या, 1331-32। **16.** सेरेना नंदा, नाइदर मैन नोर वुमन, द हिजड़ा ऑफ इण्डिया, वेड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, 1999। **17.** https:// www.youtube. com/watch? v=lePEbLiB2wc last accessed on 19-7-23* https://www.youtube.com/watch?v=HUTpa-jSROXU. **18.** नंदा शर्मा, नाइदर मैन नोर वुमन, वेडसवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, 1998, पृष्ठ संख्या, 1-30। **19.**https:// www.youtube.com/ watch?v= ZCeUXiZHJ18&t= 73s, https://www.youtube. com/watch?v= ZCeUXiZHJ18&t= 187s, https://www. youtube. com/watch?v= 4XECVu-UDV.co, https:// www.youtube. com/watch?v= cuWMp Ymhkns, https://www. youtube. com/watch?v= HaiNM-NXszaQ&t=182shttps//www.youtube.com/watch?v=yhpb 4d1Pg8Y. **20.** काजल का वेश्यावृत्ति के दौरान इग्लैंड के एक मुस्लिम व्यक्ति से प्रेम प्रसंग हो गया था। वह काजल को प्रतिदिन चार हजार रुपये और कपड़े, घड़ी एवं अनेक प्रकार के उपहार देता था। काजल किसी ओर ग्राहक के साथ न जाए, इसके लिए वह उसे शाम चार बजे अपने साथ होटल ले जाकर खिलाता-पिलाता और ड्रिंक करवाता था। वह व्यक्ति काजल को वेश्यावृत्ति से दूर करके अपने साथ इग्लैंड लेकर जाना चाहता था। वह काजल को किन्नर रूप में स्वीकार करके अपने बच्चों की माँ के रूप में रखना चाहता था। काजल की गुरु माता ने काजल को समाज की किन्नरों के प्रति विषमता और पराए देश में नौकर के रूप रखने की बात बताकर उसको इससे दूर रहने की सलाह दी थी। अतः काजल ने फिर से सामाजिक उत्पीड़न के भय से मना कर दिया। **21.** मुस्कान का साक्षात्कार 15 सितम्बर, सायंकाल 5 बजे, ताऊ देवीलाल पार्क, सेक्टर 7, पानीपत। **22.** रवीना ने किन्नर बनने के बाद परिवार से नाता तोड़ लिया था। किन्नर बनने के कुछ माह बाद ही बहन शिखा ने भाई को किन्नर भेष में बाजार में भीख मांगते हुए पहचान लिया था। बहन ने भाई को इसी रूप में स्वीकार करने की बात कहकर संबंध स्थापित किया था। भाई-बहन का प्रेम एक-दूसरे के लिए जीवन की दुश्वारियों में जीने का आधार बना। रवीना की मृत्यु भी दोबारा बहन का वेश्यावृत्ति में फंसने के कारण हुई थी। वेश्यावृत्ति करते हुए शिखा को गुंडों ने जबरन पकड़कर उसकी बेटी सहित घर में कैद कर दिया था। किन्नर भाई रवीना, बहन और भानजी को गुण्डों से छुड़वाने के लिए लड़ते हुए गोली लगकर मरा था।

❐❐

द्वारा- श्री मांगेराम शर्मा
मकान नं. 461, दोपलाना पाना, निकट-
सीताराम मंदिर, गांव - टीकरी कलां,
नई दिल्ली-110041 मो. 9599560417
ईमेल- nisharanibhardwaj@gmail.com

युद्ध पीड़ितों की वेदनाओं का विकल्प

चित्रा माली

युद्ध के विषय में महात्मा गांधी ने कहा था 'जब तक युद्ध के कारणों को नहीं समझा जाएगा और उनको जड़ से नष्ट नहीं किया जाएगा तब तक युद्ध को रोकने के सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध होंगे। क्या आधुनिक युद्धों का प्रमुख कारण दुनिया की तथाकथित दुर्बल प्रजातियों के शोषण के लिए मची अमानवीय होड़ नहीं है'?[1] दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच सशस्त्र सेनाओं के संघर्ष को युद्ध कहा जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के कारणों का अध्ययन प्रोफेसर सिडनी बी.फे ने किया था और वे गुप्त संधियों की व्यवस्था को युद्ध का मूल कारण मानते हैं और इसके अतिरिक्त राष्ट्रवाद, सैनिकवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद तथा समाचार पत्र प्रकाशन को भी युद्ध के कारणों में शामिल करते हैं। टाल ए. टर्नर अपनी किताब 'The Causes of War and the New Revolution' में युद्ध के 41 कारणों का उल्लेख करते हैं जिन्हें वे चार भागों में विभाजित करते हैं। आर्थिक, धार्मिक, भावनात्मक, राजवंश संबंधी कारण स्टीवेन जे. रोजन तथा वाल्टर एस. जोन्स ने भी अपनी किताब The Logic of International Relations में बहुत ही तार्किक और विस्तृत रूप से युद्ध के बारह कारणों का वर्णन किया है जिन्हें Twelve Theories of Causes of War के नाम से जाना जाता है। विभिन्न विद्वानों ने युद्ध के कारणों की पड़ताल अलग अलग तरीके से की है जो काफी हद तक सही भी साबित होती हैं। स्टीड ने युद्ध के कारणों में सबसे प्रमुख 'भय' को माना है।[2] जिसकी पुष्टि कई सामाजिक वैज्ञानिकों के द्वारा भी की गई है, असुरक्षा की भावना ही मनुष्य और राष्ट्रों को हिंसा करने के लिए बाध्य करती है। युद्धों पर सर्वाधिक फिल्में अमेरिका और रूस में बनी हैं जिनमें प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध की हर घटना को दर्ज किया गया है और यूरोप की जगह में हुए युद्ध की दास्तान है जिनमें युद्ध की हृदयविदारक विभीषिका के सभी पहलू हैं।

एरिक फ्रॉम का मानना है कि जब हम मानवीय प्रवृत्ति को युद्ध के लिए जिम्मेदार मानते हैं तो सामाजिक परिस्थितियों और महत्वाकांक्षी व्यक्तियों और निहित स्वार्थों की अनदेखी कर रहे होते हैं। अधिकतर युद्धों से लेकर महायुद्धों तक आर्थिक स्वार्थों और हमारे उद्योगपतियों और राजनीतिक व सैनिक नेतृत्व की आकांक्षा से भी हुए हैं। स्वार्थ केवल वैयक्तिक ही नहीं होते हैं वह सामूहिक होकर एक प्रकार के राष्ट्रीय या जातीय अथवा किसी प्रकार की मतवादी आत्मरति में बदल जाते हैं।[3] इस प्रक्रिया को एम. एन. राय ने सुपर ईगो कहा है जिसमें व्यक्ति अपनी निजी अस्मिता और उसके साथ निजी विवेक का विलय कर देता है और परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद, अंध आक्रामकता का विस्फोट, सांप्रदायिकता और सैनिकवाद के रूप में परिलक्षित होता है।[4] युद्धों का अध्ययन करने वाले शोधकर्ताओं के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सभ्य होते चले जाने के साथ-साथ मानव-इतिहास में युद्धों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई है, जबकि हमारे

सभ्यता के विकास के साथ साथ युद्धों की संख्या में कमी होनी चाहिए थी।

युद्धों की पृष्ठभूमि में तकनीकी-आर्थिक दबावों व स्वार्थों की आवश्यकताएं सभी के सामने हैं। हिंसा का सबसे भयानक रूप युद्ध ही है। दो विश्वयुद्धों की महाविभीषिका से यह सिद्ध हो चुका है कि मानव का कल्याण युद्ध में न होकर शांति में ही निहित है। जब शांति को परिभाषित किया जाता है तो 'युद्ध के अभाव को ही शांति की संज्ञा दी जाती है' जो शांति की अपूर्ण परिभाषा हो सकती है लेकिन सामान्य रूप से शांति की समझ इसी आधार पर विकसित होती है। 'शांति' की अवधारणा अपने आप में एक विस्तृत अवधारणा है जिसके विभिन्न आयाम हैं। शांति की अवधारणा के रूप में 'शांति एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटना है, जो कि सामाजिक हित और विश्व के हितों को प्रदर्शित करती है। युद्ध और शांति शब्द विलोमार्थक शब्द हैं। शांति स्त्रीयोचित है तो युद्ध पुरुषोचित शब्द है।

युद्ध पर बात आंद्रेई दिमित्रीविच सखारोव के बिना अधूरी ही मानी जायेगी। सखारोव को सोवियत हाइड्रोजन बम का जनक भी कहा जाता है। सखारोव प्रसिद्ध परमाणु भौतिकशास्त्री और मानवाधिकार समर्थक थे। सखारोव आरम्भ से ही नाभिकीय हथियारों की होड़ और नाभिकीय ध्रुवीकरण के प्रति सजग रहे और रूस की अवाम और नीति निर्माताओं को इसके खतरों के प्रति आगाह करते रहे। 1966-67 में सखारोव ने स्टालिन की पुरानी नीतियों को लागू करने का विरोध किया और नागरिक स्वतंत्रता पर जोर दिया। 1968 में न्यूयॉर्क टाइम्स में उनका लेख रिफ्लेक्शंस आफ प्रोग्रेस, पीसफुल को-एक्सिसटेंस एंड इंटेलेक्चुअल फ्रीडम प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता, पूर्व पश्चिम सहयोग, हथियारों की प्रतिस्पर्धा को खत्म करने की पैरवी की थी और साथ ही युद्ध के खतरों के प्रति लोगों को सजग भी किया था। इस लेख के प्रकाशन के बाद सखारोव को रूस के सभी वैज्ञानिक शोधों से हटा दिया गया था और उन्हें मास्को से गोर्की नामक स्थान पर निर्वासित भी कर दिया गया था जहां उन्हें किसी से भी मिलने की अनुमति नहीं थी। फिर सोवियत संघ की राजनीति में गोर्बाच्योव के आने के बाद तथा सखारोव के सोवियत संसद में चुने जाने के बाद उन्होंने नए संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने कार्यालय में उन्होंने निःशस्त्रीकरण, राजनीतिक कैदियों के लिए एमनेस्टी इंटरनेशनल, प्रजातीय व नस्लीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान तथा सत्ता के मुख्य केंद्रों की शक्तियों को सीमित करने पर लगातार जोर दिया। सखारोव को नोबेल शांति पुरस्कार से नवाजा गया। यह पुरस्कार उन्हें आणविक निःशस्त्रीकरण एवं मानवाधिकारों के हनन की आवाज को मुखर करने के लिए प्रदान किया गया था। एक वैज्ञानिक होने के नाते उनका अभिमत था कि 'विज्ञान तर्क के आधार पर संचालित है, अतः लोकतंत्र में भी वस्तुनिष्ठ सत्य पर वैज्ञानिक प्रक्रिया के जरिए पहुंचा जा सकता है।[5]

युद्ध का नकार सर्वप्रथम मोहिस्ट दार्शनिक स्कूल के द्वारा किया गया। बावजूद इसके कि वे युद्धरत पॉलिटिकल समय में रहते थे और किलेबंदी के विज्ञान को विकसित कर रहे थे। 20वीं शताब्दी में युद्ध के नकार और युद्ध की विभीषिका के खतरों को खत्म करने के दुखोबोर्स (विश्व शांति के लिए कार्य करने वाला एक संप्रदाय) के द्वारा नग्न होकर सिलसिलेवार प्रदर्शन किए गए। जिससे अधिक लोगों को आकर्षित किया जा सके तथा युद्ध की विभीषिका से रूबरू करवाया जा सके। यह नग्न प्रदर्शन एक रणनीति के तहत किए गए, जिनमें आधुनिक नारों का समावेश किया गया। जिसमें 'निशस्त्रीकरण के लिए कपड़े उतारना' और 'शांति के लिए नग्नता' जैसे नारों का इस्तेमाल किया गया। युद्धों को रोकने के लिए व शांति को बनाए रखने के लिए अहिंसक प्रयास महिलाओं के द्वारा अधिक किए गए हैं क्योंकि वे ही युद्धों की अधिक विक्टिम रही हैं। इनमें वूमेंस पीस पार्टी, इंटरनेशनल कमिटी ऑफ वीमेन फॉर पर्मानेंट पीस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में अमेरिकी कांग्रेस की पहली महिला सदस्य जीनेट रानकिन ने अमेरिका के महायुद्धों में शामिल होने के प्रस्तावों का अकेले विरोध किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध का विरोध करने वाली वे एकमात्र महिला थीं।[6]

महिलाओं के द्वारा युद्धों के खिलाफ अहिंसक प्रतिरोधों की एक व्यापक शृंखला है जो नए नए तरीकों से प्रतिकार करती आई हैं जो आज भी इजरायल-हमास युद्ध के खिलाफ जारी है। रूस यूक्रेन युद्ध और वर्तमान में जारी इजरायल और हमास युद्ध पर काफी कुछ युद्ध विश्लेषकों व बौद्धिकों के द्वारा लिखा जा चुका है और लगातार लिखा भी जा रहा है जिसमें युद्ध के सभी पहलुओं और अन्य देशों पर इसके प्रभाव का उल्लेख भी किया जा रहा है। लेकिन इसमें महिलाओं और बच्चों पर युद्ध के प्रभावों पर अलग से विमर्श की दरकार है। युद्ध का प्रभाव युद्धरत देशों व उनके आस पास के देशों की महिलाओं और बच्चों पर अधिक पड़ता है। रूस यूक्रेन युद्ध जब प्रारंभ नहीं हुआ था और युद्ध की अटकलें लगाई जा रही थीं, तभी पूर्व के युद्धों की विभीषिका और महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा, खासकर यौन हिंसा का जिक्र लगातार सोशल मीडिया साइटस पर किया जा रहा था, जो भयावह था। पर्यावरणीय नारीवाद ने हमेशा युद्धों का विरोध किया है क्योंकि युद्ध पुरुषवादी और वर्चस्ववादी मानसिकता का परिचायक है। युद्धों में होने वाली हिंसा का शिकार सर्वाधिक महिलाएं, बच्चे व बूढ़े होते हैं। महिलाओं के द्वारा ही युद्धों का विरोध और शांति के लिए, अहिंसक प्रयास किए जाते रहे हैं और साथ ही उन्होंने शांति अभियानों में सक्रिय भूमिका निभाई है तथा ऐसे आंदोलनों का कुशल नेतृत्व भी किया है।

बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं और अगर भावी भविष्य को उज्ज्वल देखना चाहते हैं तो बच्चों को गरिमामय, सम्मानपूर्ण और स्वतंत्रतापूर्वक विकास के अवसर प्रदान किए जाने आवश्यक हैं। दो विश्व युद्धों की विभीषिका के बाद मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 10 दिसंबर 1948 में की गई लेकिन इसके भी पूर्व 1924 में राष्ट्र संघ ने बाल अधिकारों की घोषणा जारी की जिससे देशों के भविष्य को संरक्षित संवर्धित किया जा सके। फिर संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा जारी मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अंतर्गत भी विशेष हिदायत दी है कि 'बचपन पर विशेष ध्यान और सहायता की आवश्यकता है। बच्चों के विकास और खुशहाली के लिए उन्हें आवश्यक संरक्षण और सहायता मिलनी चाहिए जिससे वे समाज में अपनी जिम्मेदारी पूर्ण रूप से निभा सकें'। बच्चों को समाज में अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के साथ जीने के लिए तैयार किया जाना चाहिए और उनका पालन-पोषण संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र के आदर्शों की भावना शांति, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, समानता और परस्पर एकता की भावना के अनुरूप होना चाहिए। मानवाधिकारों के घोषणा-पत्र के अनुच्छेद 24 में प्रत्येक बच्चे को 'नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, संपत्ति या जन्म पर आधारित किसी भी तरह के भेदभाव के बिना अपने परिवार, समाज और राज्य से संरक्षण के ऐसे साधन प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता दी गई है जो उसकी नाबालिग हैसियत के अनुसार आवश्यक है। बच्चे के नाम, पंजीकरण और राष्ट्रीयता प्राप्त करने के अधिकार को भी इस अनुच्छेद में मान्यता दी गई है। बच्चे की देखरेख और शिक्षा संबंधी अधिकार उसके अभिभावकों को दिए गए हैं।[7]

1959 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी बाल अधिकारों की घोषणा की। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 में (अनुच्छेद 23 व 24 में) तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 के (अनुच्छेद 10) में भी बच्चों के कल्याण से जुड़ी विशिष्ट संस्थाओं और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से संबंधित विधानों और प्रपत्रों को मान्यता प्रदान की गई है। तदुपरांत 20 नवंबर 1989 में बाल अधिकारों का अंतरराष्ट्रीय अभिसमय (कन्वेंशन) हुआ तथा उसकी सिफारिशों को 1990 में लागू कर दिया गया। 26 जनवरी 1990 में सत्र के पहले ही दिन 61 राष्ट्रों ने इस बाल अधिकार के अंतरराष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए थे। वर्तमान में इस अंतरराष्ट्रीय समझोते पर विश्व के 193 राष्ट्रों की सरकारों ने हस्ताक्षर कर दिए हैं। बाल अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय अभिसमय में 54 अनुच्छेद हैं जिनमें विविध प्रकार के प्रावधानों को शामिल किया गया है। बाल अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय अभिसमय में बच्चों की सुरक्षा पर अधिक बल दिया गया है। 'शारीरिक तथा मानसिक

रूप से अपरिपक्व होने के कारण, बच्चों की सुरक्षा के लिए विशेष उपायों और देखभाल की आवश्यकता है। इसमें जन्म से पूर्व तथा बाद में भी समुचित कानूनी संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।[8] बाल अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय अभिसमय में सर्वप्रथम बच्चा किसे माना जाए उसकी उम्र क्या हो इस पर काफी विचार विमर्श के बाद तथा विभिन्न देशों में आंशिक विधिक योग्यता के बाबजूद मानवाधिकारों की दृष्टि से 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को बच्चा या बालक माना जाएगा। इसी के साथ यह भी तय हुआ कि बाल अधिकार में प्रत्येक अधिकार की समान हैसियत होगी और किसी एक अधिकार के नाम पर दूसरे किसी अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया जा सकेगा। अभिसमय में यह भी माना गया कि बच्चा अधिकारों का सक्रिय भोक्ता है उसे परिवार की संपत्ति की तरह नहीं माना जा सकता है प्रत्येक बच्चे को प्राकृतिक अधिकार के साथ जीवन के अधिकार, नागरिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकारों की भी स्वीकृति प्रदान की गई है। प्रत्येक बच्चे का एक नाम और राष्ट्रीयता हो, पारिवार संबंधी जानकारी हो इसका भी ध्यान रखा गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ सूचना प्राप्ति का अधिकार और हानिकारक सूचनाओं से बचाव के अधिकार को भी शामिल किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात इस अभिसमय की यह है कि इसमें बच्चों की निजता-प्राइवेसी के अधिकार पर भी ध्यान दिया गया है तथा उल्लेख किया गया है कि बच्चे के आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा को क्षति नहीं पहुंचाई जा सकती है। बच्चे के विकास के अधिकार में शिक्षा, मनोरंजन, खेलों में भाग लेने व कलात्मक गतिविधियों में सहभागिता करने का और इनके साधन प्राप्त करने का तथा अपने से संबंधित न्यायिक और प्रशासनिक मामलों में भी अभिव्यक्ति का अधिकार का है। इस अधिकार के अंतर्गत ही माता-पिता के तलाक संबंधी मामलों में भी बच्चे की राय ली जाती है। इन सभी अधिकारों में प्राथमिकता, बच्चे के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य और संरक्षण को दी गई है और बीमार हो जाने पर स्वास्थ्य सुविधा पाने का भी अधिकार है। बच्चों की खरीद फरोख्त, अपहरण, व्यापार तथा स्वतंत्रता से वंचित न किए जाने तथा सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक बीमा और आर्थिक शोषण से मुक्तिके प्रावधान को भी शामिल किया गया हैं। किसी भी बच्चे को उसके माता पिता से जबरन अलग नहीं किया जा सकता है, अवैध रूप से कहीं भी नहीं भेजा जा सकता है तथा वापस आने पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है। इस अभिसमय के अनुच्छेद [38] में उल्लेख किया गया है कि 'सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में नागरिकों को बचाने के अंतरराष्ट्रीय कानूनों के तहत अपने दायित्वों की पूर्ति के अनुरूप ही, समस्त सदस्य देशों को युद्ध से प्रभावित बच्चों के संरक्षण और देखभाल सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक प्रयास करेंगे'।

इसके अतिरिक्त शरणार्थी, विकलांग, अल्पसंख्यक व आदिवासी बच्चों के लिए विशेष प्रावधान को स्वीकार किया गया है। किसी भी बच्चे को उसके अधिकारों से वंचित न किया जाए और उनके साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो इसकी जिम्मेदारी माता पिता, अभिभावक, राज्य के साथ साथ संपूर्ण मानव समाज व मानव जाति की भी है। इसका अभिप्राय यह है कि अगर कोई भी बच्चा अपने अधिकारों से वंचित किया जाता है तो यह पूरे समाज की गैर-जिम्मेदारी को प्रदर्शित करता है। वर्तमान में जारी इजरायल और हमास युद्ध से प्रभावित बच्चों के वीडियोज और तस्वीरों से हम उनकी स्थिति का अंदाजा लगा सकते हैं। बच्चों के अधिकारों का हनन कहीं न कहीं मानवता के क्षरण का भी प्रतीक है इसलिए बच्चों के अधिकारों और अधिकारों के हनन के प्रति और अधिक सजग होने की आवश्यकता है।

अभी कुछ माह पूर्व एक फिल्म 'बवाल' आयी थी। अत्यंत साधारण सी दिखने वाली यह फिल्म एक संदेश संप्रेषित करती है खासकर युद्ध को लेकर। फिल्म में वर्ल्ड वॉर म्यूजियम, गैस चेम्बर, नोर्मंडी, ओमाहा बीच और ऐनी फ्रैंक का घर दिखाया जाता है। ऐनी फ्रैंक महज 13 साल की लड़की है जो अपने परिवार के साथ नाजी सेना के खौफ से छुपी हुई है। वह राइटर बनना चाहती है इसलिए प्रत्येक दिन की हर घटना को

डायरी में दर्ज करती रहती है। आज ऐनी फ्रेंक नहीं है लेकिन उसकी डायरी उसे आज भी जिंदा रखे हुए है। ऐनी फ्रेंक की तरह ही आज भी कई सारे बच्चे हो सकते हैं जिनके बहुत सारे सपने भी हैं उन्हें अतीत की बुरी यादों के बरक्स सुनहरे भविष्य का अधिकार है और यही मानवतापूर्ण सह-अस्तित्व के लिए आवश्यक है। युद्ध में महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा को गरिमा श्रीवास्तव की किताब 'देह ही देश' क्रोएशिया प्रवास-डायरी है जो महज डायरी न होकर एक विस्तृत ब्यौरा है कि किस प्रकार से स्त्री देह पर युद्ध लड़े जाते हैं और जीते जाते हैं। युद्ध की स्मृतियों में घृणा और भय से भरी विरासत पीढ़ी दर पीढ़ी ट्रांसफर होती जाती है। महिलाओं और बच्चियों के साथ हुए सामूहिक बलात्कार जिसमें उनकी चीखें घोर राष्ट्रप्रेम में कहीं विलुप्त हो जाती हैं। उग्र राष्ट्रवाद के नाम पर होने वाले युद्धों और बलात्कारों की विभीषिकाओं के बारे में एक स्वतंत्र विमर्श की आवश्यकता है जिससे युद्धों में महिलाओं और बच्चियों के साथ होने वाले शोषण और अत्याचारों के प्रति समाज व समाज का प्रत्येक व्यक्ति संवेदनशील हो, सचेत हो और एक सिरे से युद्ध का नकार करें। रूस और युक्रेन युद्ध में भी महिलाओं के साथ हो रही हिंसा की खबरें लगातार प्रकाशित हो रही हैं तथा इसमें छोटी उम्र के लड़के व लड़कियों के साथ भी दुर्व्यवहार किया जा रहा है। इस युद्ध के खिलाफ भी दोनों देशों की आवाम ने अहिंसक प्रतिरोध किए ताकि युद्ध को टाला जा सके।

महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा को नादिया मुराद के संस्मरण की किताब 'द लास्ट गर्ल' में भी महसूस किया जा सकता है। नादिया जो एक यजीदी युवती हैं जिन्हें आईएसआईएस ने कैद में रखा और उनका यौन उत्पीड़न किया लेकिन वे हिम्मत नहीं हारी और लगातार अपने लिए और अपने लोगों के लिए लड़ती रहीं। यह संस्मरण, इराक में नादिया के शांतिपूर्ण बचपन से शुरू होकर क्षति और क्रूरता और फिर जर्मनी में उनके सुरक्षित लौटने तक का सफर है। नादिया पर एलेक्जेंड्रिया बॉम्बाख ने 'ऑन हर शोल्डर्स' नाम की फिल्म भी बनाई है। नादिया मुराद मानवाधिकार कार्यकर्ता है और उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है इसके अतिरिक्त वक्लेव हैवल मानवाधिकार पुरस्कार व सखारोव पुरस्कार से भी नवाजा जा चुका है। साथ ही वे संयुक्त राष्ट्र के डिग्निटी ऑफ सरवाइवर्स ऑफ ह्यूमन ट्रैफिकिंग की पहली गुडविल एंबेसडर भी हैं। हम सिर्फ साहसिक नादिया मुराद की आपबीती को सुन पा रहे हैं लेकिन न जाने कितनी मासूम बच्चियों और महिलाओं की व्यथा, वेदना और चीखों से हम अनभिज्ञ हो कोसों दूर हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रभु आर के, राव यू.आर. (2012). महात्मा गांधी के विचार नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली. पृष्ठ क्र.431। **2.** डॉ. दुबे रमेश एवम डॉ. शर्मा हरिश्चन्द्र. (2007), अंतरराष्ट्रीय कानून, कॉलेज बुक डिपो त्रिपोलिया जयपुर. पृष्ठ क्र. 376-377। **3.** दुबे अभय कुमार (2013), समाज विज्ञान विश्वकोश खंड-1, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ क्र.306। **4.** आचार्य नन्दकिशोर (2010), अहिंसा विश्वकोश, प्रकाशन. पृष्ठ क्र. 557। **5.** वही, पृष्ठ क्र. 695। **6.** वही. पृष्ठ क्र.653। **7.** डॉ. दुबे रमेश एवम डॉ. शर्मा हरिश्चन्द्र. (2007), अंतरराष्ट्रीय कानून, कॉलेज बुक डिपो त्रिपोलिया, जयपुर, पृ. 346। **8.** डॉ. सिंह धरम (2015), मानवाधिकार, भारत बुक सेंटर 17, अशोक मार्ग लखनउ, पृष्ठ क्र.342।

❑❑

प्रभारी- क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय,
ऐकतारा, आईए-290, सेक्टर-3,
साल्टलेक, कोलकाता-700097
मो. 9422905721

झंडुराम मीना कृत राजा मोरध्वज की कथा

अभिलाषा मीना

राजस्थान के करौली जिले से 75 किलोमीटर दूर नादौती तहसील के गांव गढ़मोरा को राजा मोरध्वज की नगरी के नां से भी जाना जाता है। इसका इतिहास 5500 साल पुराना है। पहाड़ी पर अब प्राचीन नगरी के सिर्फ अवशेष रह गए हैं। यहां कभी मजबूत किला था। यहां मंदिरों की लंबी शृंखला है। यहां राजा के महल के अलावा बौद्ध स्तूप, खम्भों पर टिकी छतरी, बौद्ध मंदिर, मकरध्वज मंदिर, प्राचीन हनुमान मंदिर, नारायणी माता का मंदिर, देवनारायण मंदिर, गोपालजी मंदिर आदि भी प्राचीन इतिहास को दर्शाते हैं। इसलिए इसे देवनगरी या धार्मिक नगरी की उपमा भी दी जाती है। यहां पर मकर संक्रांति पर बड़ा मेला लगता है। इस दिन मोरध्वज राजा के कुंड में स्नान कर श्रद्धालू विशेष महात्म मानते हैं। कुंड के जल को गंगाजल की तरह पवित्र माना जाता है। राजस्थान के इस उत्तर-पूर्वी आदिवासी अंचल में सदियों से लोकगीतों की मौखिक परम्परा रही है जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ी है।[1] किन्तु आज के इस आधुनिक कहे जाने वाले तकनीकी युग में ये लुप्त होने के कगार पर हैं। आदिवासी लोकगीतों में पद गायन, कन्हैया गीत, रसिया गीत, हैला, ख्याल, कीर्तन, सुड्डा प्रमुख हैं।[2] इनमें विभिन्न पौराणिक व ऐतिहासिक गाथाओं व कथाओं के माध्यम से विभिन्न प्रसंगों को अपनी शैली में गाया जाता है।[3] यहाँ आदिवासी लोकगीतों की एक खास शैली 'पद गायन' का ऐतिहासिक व धार्मिक कथा के माध्यम के परिचय करवाया जा रहा है। पद गायन की बहुत प्राचीन व लम्बी परम्परा रही है। वर्तमान में पुरुष व महिलाएँ ऐतिहासिक पौराणिक कथाओं के माध्यम से पद गायन के द्वारा आदिवासी सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत कर रहे हैं। यहाँ आदिवासी लोकगीत गायक झंडुराम मीना द्वारा 'राजा मोरध्वज की कथा' को पद गीत के माध्यम से सुन्दर ढ्ग से प्रस्तुत किया है।[4]

हाँ तो सज्जनों मैं आप के सामने राजा मोरध्वज की कथा का प्रसंग प्रस्तुत करूंगा। राजा मोरध्वज एक ऐतिहासिक व पौराणिक महापुरूष रहे हैं।[5] जिनका व्याखान गढ़मोरा के खंडहर आज भी कर रहे हैं।[6] इस कथा का उल्लेख महाभारत व शिव पुराण में भी मिलता है।[7] शोधार्थी द्वारा राजा मोरध्वज की नगरी गढ़मोरा में मकर सक्रांति के दिन मेले का अवलोकन किया गया।[8] प्यारे सज्जनों होता क्या है– एक बार भगवान शंकर ने विचार किया कि पार्वती की परीक्षा लेनी चाहिए इसलिए पार्वती के पास आते हैं और कहते हैं कि पार्वती आज अपने हाथों से स्वादिष्ट भोजन बनाकर हमें खिलाओ जिसमें छह प्रकार रस होना चाहिए। पार्वती ने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा महाराज। भोजन तो मैं रोज बनाती हूं लेकिन आज चार चाँद लगा दूँगी। *एक दिना की बात, शिंभ कैलासी कहे उमा से बेन।/ बात सुन सांची कपट से, शिव-शंकर न्यो बोले।।/ उमा भवानी की करन परीक्षा डोले, सब पकवान बना तु प्यारी।/ छठरस*

भोजन आज बना, और तु बात मान म्हारी।। शिव ने ऐसो मतों उपायों अग्नि ली है, छिपाय परबत ऊपर धाम जमायों।

भगवान शंकर ने तीनों लोकों की अग्नि को अपने मुख में छिपाया और पहाड़ों पर जाकर सो गए। इधर माँ पार्वती ने भोजन बनाने के लिए सारा सामान एकत्रित किया और भोजन पकाने के लिए बार-बार अग्नि जलाने की कोशिश करती है लेकिन अग्नि प्रकट नहीं हो पाती क्योंकि अग्नि को तो लेकर भगवान शंकर पहाड़ों पर चले गए।

सब सामान इकठ्ठों कियो, अग्नि प्रकट करने के कारण,
वाने फँस भेळो कियो, करके कौल मात जब हारी।
बिन अग्नि के काय होय, धर्‌यो है सब सामान अगाड़ी।
होय आग नहीं प्रकट, धर्‌यो है तेल पकोटी में।
अब पारबती को उसणों रहगों, चैन खटोटी में।।

मातेश्वरी भगवान की चाल को पहचान जाती है और उसने एक सुन्दर बालक तैयार किया। उसे जीवनदान देकर कहा कि बेटा आज मेरी मदद करो और उसे अग्नि लाने के लिए बोलती है।

अरर अरर बेटा मेरे लाल लाडले अब के कयो बजा दे रे/ ओ तेरी मैया कु हाथन से अग्नि ला दे रे।

माँ की बात सुन कर वह बालक हाथ में फूस इकट्ठा कर पहाड़ों में जाता है तो क्या देखा कि भगवान शंकर की नाक से अग्नि की लौ निकल रही है। तो उसने फूस को नाक से लगाया और अग्नि फूस में लगाकर माँ पार्वती के पास आ गया। उससे माँ पार्वती ने रसोई बनाई।

सुन मैया के बचन चल्यो बलधारी, वाने कर मे लियो फँस।/ पहुँच गयो शिव क देख अगाडी, हाथ वाने तनिक नाक पे दियो।।/ और अग्नि की लौ लगी, अगाडी वाने फँस झट कर दियो।/ अग्नि ले मैया ढिग आयो, और झट से पारबती ने करी रसाई ।।

जब भगवान शंकर घर आये तो घर में बालक खेलता पाया। पूछने पर पार्वती समस्त वृतांत बताया और कहा कि महाराज ये हमारा ही पुत्र है। इसे पार्वती ने प्रकट किया इससे उसका नाम उमाध्वज रख दिया तथा तीसरे जन्म में भगवान शंकर ने उसे गढ़मोरा का शासक बनने का आशीर्वाद दिया। *जब शिव-शंकर घर आयो, लाला खेलत वाकु पायो।/ और पार्वती से कही ई, छोरा कहाँ से आयो।।/ ऐसे बोले मात भवानी, ई बेटा है नाथ आपणो।/ तुम हो अंतर्यामी, शिव ने अभयदान दे दियो।।/ उमा-भवानी ने प्रकट कियो, वाको नाम उमाध्वज धर दियो।/ जनम तीसरे में बेटा तेरो, ईश्वर काजे काज।।/ पश्चिम दिशा में जार करेगो, या गढ़मोरा को राज।*

देवलोक की अप्सरा की भक्ति से प्रसन्न होकर मात भवानी ने अपने पुत्र उमाध्वज से उसकी शादी करवा दी। *देव की नार अप्सरा, चली देवलोक से आई।/ पार्वती की भक्ति काजे, आसन दियो लगाई।।/ राजी हो उमा-भवानी, तोपे मैं प्रसन्न मांगले वर सयानी।/ मोकु दे-दे बलम हजारी, पति की सेवा करूं।।/ आपके जोडुं हाथ अगाड़ी, शादी उमाध्वज संग भइय।/ देख अनोख जोड़ा वा, राजी मन ही मन हो रही।।*

दोनों प्रसन्नता पूर्वक जीवन व्यतीत करते और भगवान का भजन करते। एक बार उमाध्वज नवरात्रों में बैठ जाते हैं और भगवत भक्ति में लीन हो जाते हैं। उधर कामदेव ने अप्सरा को सता लिया वह सोलह शृंगार बनाकर पति को रिझाने का प्रयास कर उमाध्वज का ध्यान भक्ति हटाने की कोशिश करती है।

उमाध्वज जब बैठ नौरता जावे लगयों काम को जोर। / जब नार चली पति ढि आवे, अरे वाने ऐसे अरज लगाई।।/ मैंने तो लई काम ने जीत, बलम अब पास तुमारे आई।/ अब हो गई आस-निरास, नहीं बोल्यो वासे ढोला।।/ और दियो नार ने श्राप, अब तु बणजा मोर मिठबोला।/ अरररर तीरया कर सोलह सिंगार बगल में कुदे/ ओ ढोला तो पण वाको मोडे से नहीं बोले......2।

काम से सतायी हुई औरत ने अपने पति को श्राप दे दिया कि जारे तू मेरी इच्छा पूरी ना करता मोर बनजा। पतिव्रता के श्राप लगने से उमाध्वज मोर बन जाता है। अपने पति को मोर स्वरूप देखकर उस अप्सरा को पश्चाताप हुआ और अपने को भी श्राप देकर कि अगले जन्म पति मिले तो मुझे यही मोर मिले और प्राण त्याग कर देवलोक को सिधार जाती है। *दियो नार ने श्राप,*

और छोड़ दई काया।/ पुनर्जन्म में उमाध्वज ने फिर जनम मोर का पाया।।/ देकर श्राप नार पछतावे मिले यही भरतार।/ तोरण मार भँवरियाँ खावे छोड़ी देह नार गई सुरपुर।।

अगले जन्म में उस अप्सरा ने वृक्षनगर के राजा इछलदे के घर में जन्म लिया और राजा की सातवीं सबसे छोटी पुत्री पदमा बाई बन गई। *वृक्षनगर के इछलदे के जार जनम लियो घर में।/ नृप के कन्या सात बताई और वहीं अप्सरा।/ नृप के बण गई सबसे छाटी बेटी पदमाबाई।* एक दिन राजा-रानी अपनी सभी सातों बेटियों के साथ बैठे हुए थे। बातों ही बातों में राजा ने अपनी बेटियों से पूछ लिया कि आप किसके भाग्य का खाती हो, उनमें से छह ने कहा कि पिताजी हम तो आपके भाग्य का खाती हैं।

एक दिन भेळी भई सटेटी, राजा-रानी राजी होवे देख लाडली बेटी। मोकु साँच बताओं बेटी, कुण का भाग को खावों राजा ऐसे बोले वाणी।। पिता हम साँची बात बतावें, तेरी बेटी भइ लाडली भाग तेरे को खावे।

लेकिन पदमा ने कहा कि मैं तो मेरे भाग्य का खाती हूं, खाती आई और खाती रहूंगी। इस बात को राजा सुनकर क्रोधित हो जाता है और कहता है। अब मैं तेरा भाग्य देखता हूं और समस्त नगर में पदमा के विवाह का ऐलान करवा देता है तथा मंत्रियों को आज्ञा देता है कल प्रातः दरवाजे पर जो भी दिखाई दे उसे ले आओ उससे ही पदमा का विवाह किया जायेगा। इस तरह से सभी नगरवासी राजा की इस घोषणा को सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। *पदमा ने दियो जबाव, पिता मैं भाग्य मेरे को खाउँ। सुन पदमा के वचन, नृप के तन-मन लग गई आग।। अरे मैं परखेंगो तेरो करम, और बेटी देखेंनगों तेरो भाग। राजा ने भेळो कियो द्वार-परिवार, दरवाजे पे प्रथम मिले।। वाकु बणा दो पदमा का भरतार, सुणत लोगों को अचरज होगो।*

इस हुकुम को सुनकर मंत्री दरवाजे पर जाते हैं और पदमा के भाग की परीक्षा करते हैं, लेकिन कोई मनुष्य वहाँ दिखाई नहीं देता, एक लंगड़ा मोर बार-बार इधर-उधर आता जाता दिखाई देता है। मंत्री उसे पकड़कर राजा के पास ले आते हैं गर्व में चूर राजा बड़ा प्रसन्न होता है और कहता है कि अब पदमा के भाग्य की अच्छी तरह परीक्षा हो जायेगी। पदमा की शादी मोर से कर देनी चाहिए। इस घोषणा से सभी नगरवासी आश्चर्यचकित रह जाते हैं, किसी ने सपने में भी नहीं सोचा कि राजकुमारी का विवाह मोर से होगा। *दिन उगत परभात द्वार पे मंत्रि आये, एक लंगड़ो पाये मोर पकड़ वाये लाये। देख मोर कू भूप मगन भयो मन में, पदमा के पाडुयो फेरा अब मोर के संग में।। हां... कोणे जाणी राजा के घर मोर पावणो आवेगो। अर.... वाकी छोरी के पखेरू फेरा खावेगो...... 2।* राजो के इस हठ को देखकर रानी हाथ जोड़कर पदमा का विवाह मोर से न करने को बोलती है और कहती है कि पदमा तो अभी नादान है वह भाग्य-कर्म के बारे में नहीं जानती है। *ऐ दोउ कर जोडु हाथ, बलम मेरे ऐसी हठ मत ठाणो। वारी उमर की सुता लाडली, भाग-करम ने का जाणे।। टोटे-बाड़े को घर हो तो, मेरी जार मजूरी कर लेती। देख अनोखा छोरा वा, सेवा सास-ससुर की कर लेती।। मेरी मानो बलम हजारी, प्राण से प्यारी सुता दुःख पावे भारी। अब खोटो निकल्यो भाग, पड़ रहे करमन के आटे। विकट वनी के बीच, अब लगेंगे मेरी छोरी के कांटे।।*

सभी लोगों ने राजा को खूब समझाया रानी ने भी उसे बहुत समझाया, लेकिन उसे कुछ समझ नहीं आई। उसने पदमा की शादी मोर से करवा दी और पदमा को मोर के साथ विदा कर दिया जाता है। मोर उड़ता हुआ जंगल में पेड़ के ऊपर आकर बैठ जाता है। बेचारी पदमा पति का पीछा करती हुई उसी जंगल में पेड़ के नीचे आकर बैठ जाती है। *नाट रहे नर-नार नगर के, नाटे वाकी नारी। मोर संग मत ब्याह करे, नेक मानो खेण हमारी।। एक न मानी खेण, और पाड़ दिये फेरा। अब दई विदा कराई, उड़गो मोर पिछाड़ी जावे।। विकट वनी के बीच पेड़ पे ढोला बैठो पावे।।*

सूर्यदेव छिप गये और जंगल में अंधेरा होने लगता है, जंगली जीव-जन्तु भी बोलने लगते हैं। अपने पति की तरफ देखते हुए पदमा विचार करती है कि महाराज आज तक तो मैं मेरी माँ की गोद में सोई थी, लेकिन आज इस वियावान में मेरा रैन बसेरा कैसे होगा और

विचार करती है कि अगर मैं मोरनी होती तो आपसे इसी डाली पर बैठ कर जी भर बात करती। खा सोउ रे मेरे बलमा डर लगे, भारा बोले रे वनी का गेदुआ...2, बण जाऊं रे म्हारा बलमा, कह दे तो उड़नी मोरनी...2। इतने में ही अंधड़ के साथ तेजी से पवन चलना शुरू हो जाती है, धड़ाम से मोर धरती पर आ गिरता है। ऐ हे सरर सरर पवन चलत है, पवन चलत जेमे गिरध उड़त है। गिरध उड़त जेमे बंद पड़त है, ऊपर बैठत बालमा की डाल हलत है। लगत झकोड़ा ढोला नीचा कू गिरत है।

अपने पति के पेड़ से गिर जाने के बाद भाग कर पदमा उसे गोद में उठा लेती है लेकिन गिरते ही उसके प्राण-पखेरू निकल गए। *मरे हुए पति को देख कर पदमा रुदन करती है। पोन को लगो झकोड़ भारो, धरण में गिरग्यो मोर विचारो। अब देख पति की सुरत नार ने, रूदन कियो गाढ़ो।। नैनन सु बरसे नीर, गोद में ले लियो मोर आड़ो। दे-दे हिलकी रोय नार जंगल में, छाती के लई है लगाय। पति की लास दोउ कर में, अबला तो नार रो रही। प्यारे भँवर तु कहां गयो, तेरे बिना कल ना पड़े।। बेरी ने बदला कर दियो, ढ्रोला गिरायो मेरा रूंख से। बारी उमर पिया मेरी, दाँत ना उखड़े दूध के।। अर सुन ढ्रोला प्यारे, कह दे सब हाल तुमारे। क्यों सोवे बलम हमारे, रोवे रे तेरी नार।। अरजी सुन मेरी चरणन की दासी तेरी, झुक रही रैन अँधेरी। कैसे कटे जमारो जग में, बोलो ना भरतार।।*

मरे हुए पति को देख कर पदमा माता पार्वती और शिव-शंकर को याद करने लगी– हे मातेश्वरी मुझे पति दिया तो मोर दिया वह भी छीन लिया। विचार करती है कि बिना पति के जीना सम्भव नहीं है, इसलिए पति पर सती होने का निश्चय कर वन में लकड़ियां इकट्ठी करती है। *करुणा कर-कर जब रोय नार वन में, गोदी में ले लियो मोर पटक रही माथो धरण में। रोते-रोते नार बीण रही लकड़ी वन में, भारो रुदन मचाय पति पे होवे नार सती।।* माँ पार्वती को दया आ जाती है और भगवान शंकर से कहने लगी है कि प्रभु आप ने मेरे बेटे उमाध्वज को तीसरे जन्म में राजा बनने का आशीर्वाद दिया था, मेरे बेटे के दो जन्म हो चुके है तीसरा जन्म होने से पहले ही बेटी पदमा सती होने जा रही है। पदमा की सहायता करनी चाहिए अन्यथा गलत हो जायेगा। *सुन अबला को रुदन, आय गये शंकर पार्वती। दया जब पारवती कूं आई, मोर को दियो मरद बणाई ।।* जब भगवान शंकर मोर को मनुष्य बनाने के लिए तत्पर हुए, तो पदमा हाथ जोड़ कर विनती करने लगी कि प्रभु इसके मोर का कुछ चिह्न छोड़ देना ताकि मैं इस दुनिया में सिर उठाकर जी सकुं । *वरना ये दुनिया इसे पर मर्द बताकर मुझे बोलियों से ही मार देगी। पदमा शिवजी से बतलाई किरपा करी, महाराज मोर को दियो चिह्न बणाई। किलंगी रख माथे पर दई है छा रही, खुशी अपार गैल वाने पीहर की लई है।।*

पदमा ने विचार किया कि इस जुगल जोड़ी को देख कर मेरे माँ-बाप खुश हो जायेंगे और वह अपने पीहर की तरफ चल पड़ती है। लेकिन पीहर में पदमा के सम्मान के स्थान पर लोग पदमा पर कीचड़ उछालते हैं तथा उसके माँ-बाप भी पदमा पर क्रोधित होकर उसको भला-बुरा कहते है। *बतळावें मरद-लुगाई रे, छोरी बलम दुसरो ले आई रे।/ भेळो होगो नगर सटाटों, छोरो भारो छट्टा।। और दियो मोर कुं छोड़, ले आई बीस बरस को पट्ठा।/ याने कर दई लोग हँसाई, छोरी सरम तोय नहीं आई।।/ पदमा सो-सो सोगन खावे, नैना हो गये पिता के लाल।/ साँच कतई को आवे, तेने नाम, डुबोयो मेरो।/ सो-सो राखे बींद, आज भाग देख लियो तेरो।/ मोकु दुनिया नाम धरेगी देगी, छोरी सपा तड़ा कु लेगी।।/ अब खूब करो बदनाम, निकाड़ दियो नाम मेरो।/ याकु लेजा संग जोरको, भाग देख लियो तेरो।।*

पिता के घर आश्रय न मिलने पर पदमा क्रोधित व दुखी होकर अपने पति को लेकर जंगल में लौट आती है। *अब गई रे पिता पर रिसा, नार चल दई जंगल में। पति को पकड़ो हाथ, गेल वाने विकट वनी की लई है।।* जब इस बात का पता भगवान शंकर को चला तो उन्होंने विश्वकर्मा से मोरध्वज व पदमा के लिए सुन्दर महल का निर्माण करवाया। इस तरह मोर को मोरध्वज नाम शिवजी ने दिया। मोरध्वज राजा हुआ और गढ़मोर नगर बसाया। शिव ने विश्वकर्मा बुलवाये विश्वकर्मा ने, जंगल में एक सुन्दर महल बनाये। पदमा देख मगन हुई

मन में, प्राणन प्यारे ढ़ोला को ले पहुँच गई महलन में। जाके माहाको राज चलायो, जब मोरध्वज राजा ने गढ़मोरा नगर बसायो।।

लोकगीत गायक झंडुराम मीना ने इस ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथा के माध्यम से ईश्वर में आस्था, काम- कोध, पुनर्जन्म, भाग्यवाद, कर्मवाद व सामंती परिवार की मानसिक दशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

लोकगीत हमारी सभ्यता व संस्कृति के हैं इनमें युग-युगीन परिस्थियाँ प्रतिबिम्बत रहती हैं। समाज के प्रत्येक पक्ष का इनमें सजीव चित्रण रहता है।[9] किन्तु आज लोकगीतों के प्रति हमारे सभ्य समाज का नजरिया उचित नहीं हैं, जबकि लोकगीत हमारे इतिहास, सभ्यता व संस्कृति की पहचाना हैं। आज के इस वैश्विक युग व आधुनिक युग इन्हें बचाना होगा और अपने जीवन का हिस्सा बनाना होगा।

संदर्भ

1. साक्षात्कार : रामपति देवी, उम्र 88 वर्ष, महस्वा (टोड़ाभीम), 20 नवंबर 2023, सायं 8 बजे। **2.** शोधार्थी द्वारा महस्वा गांव के कन्हैया दंगल व पद दंगल का अवलोकन किया गया। दिनांक 25-27 दिसंबर 2023। **3.** साक्षात्कार रमसी मीणा, उम्र 62 वर्ष, पद लोकगायक कलाकार, महस्वा, दोपहर 1 बजे, 25 दिसंबर 2023। **4.** सक्षात्कार झंडूराम मीणा, उम्र 56 वर्ष, पद लोकगायक कलाकार, महस्वा, दोपहर 2 बजे, 27 दिसंबर 2023। **5.** 'राजा मोरध्वज ने 5500 साल पहले बसायी थी नगरी', दैनिक भास्कर, पृष्ठ संख्या 8, दिनांक 14 जनवरी 2024। **6.** 'राजा मोरध्वज की नगरी गढ़मोरा' http://jjj.tourism.rajasthan.gov.in, **13** अक्टुम्बर 2023। **7.** कोली, रामजीलाल, मोरागढ़ दुर्ग का इतिहास (अप्रकाशित), साहित्यकार पब्लिकेशन जयपुर (2016) पृष्ठ सं. 27-28। **8.** शोधार्थी द्वारा गढ़मोरा में मेले के दिन मकर सक्रांति को सर्वेक्षण किया गया, दिनांक 14 जनवरी 2024, दिन रविवार। **9.** साक्षात्कार : भरत लाल मीणा, उम्र 52 वर्ष, अध्यापक, महस्वा, सायं 8 बजे, 17 अक्टुम्बर 2023।

❏❏

–शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान) ई-मेल - abhilashameena1998@gmail.com

मो. 7850077639

निर्देशिका- डॉ. शिल्पी गुप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर, ई-मेल :- shilpigupta@bansthali.in

मो. 9414543097

राजस्थान के करौली जिले से 75 किमी. दूर नादौती तहसील के गाँव गढ़मोरा को राजा मोरध्वज की नगरी के रूप में जाना जाता है। इसका इतिहास 5500 साल पुराना माना जाता है। पहाड़ी पर प्राचीन नगरी एवं किले के अवशेष हैं। यहाँ बौद्ध स्तूप, खम्भों पर टिकी छतरी, मोरध्वज मंदिर, हनुमान मंदिर, नारायणी माता का मंदिर, देवनारायण मंदिर, गोपालजी मंदिर आदि भी इस स्थान की प्राचीनता दर्शाते हैं। यहां पर मकर संक्राती पर बड़ा मेला लगता है। यहां स्थित मोरध्वज-कुण्ड में स्नान का श्रद्धालु विशेष माहात्म्य मानते हैं। कुण्ड में नीचे से गर्म जल निकलता है। इसके जल को गंगाजल की तरह पवित्र माना जाता है।

जिला चम्बा का प्रसिद्ध पिंदड़ियों का त्यौहार बसौ (वैसाखी)

डॉ. ब्रह्मदत्त शर्मा

वैशाखी भारत में अनेक ऐतिहासिक, प्राकृतिक, पारम्परिक और साम्प्रदायिक सद्भावना के सूत्रों से बंधा दिवस है। इस दिन देश के विभिन्न भावनाओं से ओत-प्रोत होकर देशवासी हर्षोल्लासित होते हुए नाचते-गाते, बजाते तथा पावन सरोवरों, नदियों, कुण्डों में स्नान करके कलुषित भावनाओं का नाश हो जाना तथा पुण्यार्जन मानते हैं। कहीं ऋतु राज और नव वर्ष का संगम मुख्य रहता है। कहीं ऋतुराज और नववर्ष का संगम रहता है, कहीं देश भक्तों के परम पावन बलिदान की अमर स्मृति उभर कर सामने आती है। एक ओर कृषि के परिश्रम के मधुर परिणाम का हर्षातिरेक तो दूसरी ओर समुद्र मंथन वाली पौराणिक कथा के आधार पर अमृताप्ति की चिरन्तन भावना का उल्लास। इधर मन्दिरों, गुरुद्वारों, मठों, आश्रमों आदि में भजन, कीर्तन, लंगर तो उधर भाषण, व्याख्यान, उपदेश एवं प्रवचन। सम्पूर्ण वातावरण में मन मुकुल के विकसित हो जाने की महक भर जाती है।

इस परम्परा का अतीत उसी समय से जुड़ा हुआ है जब मनुष्य ने सामाजिक जीवन के महत्व को समझा था। अपने अड़ोस-पड़ोस की बहनों को बेटियों को भी अपनी बहन, बेटी की तरह स्नेह और प्यार देकर ममता का सूत्र गांठा था। इन बहनों बेटियों को स्थानीय बोली में धियाणें कहा जाता है जो पंजाबी धी (बेटी) शब्द का रूप है। ऐसी भावना की प्रतीक वैशाखी को चम्बा में विस्सू या बसौ या बसोआ कहा जाता है। सम्भवतः इसलिये की सूर्य 12 राशियों में भ्रमण करके इस दिन पुनः मेष राशि में प्रवेश करता है। और इस प्रवेश काल को विषुवत काल कहा जाता है। नव वर्ष का आरम्भ होने से शुभ कामनाओं का आदान-प्रदान होता है। इसके साथ-साथ विष्णु प्रीति निमित्त घटदान करने की भी परम्परा है। जल से भर कर नया घड़ा, मिठाई, फल-पुष्प रखकर दान किया जाता है। घट ब्राह्मणों को दिया जाता या किसी छबील पर रखा जाता है। इसमें नव वर्ष के लिए शुभ कामनाएं हैं। दूसरी ओर ग्रीष्म काल के लिये शीतल जल पूर्ण घटादि दान से निजी हित में पुण्यार्जन का चिन्तन भी पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में एक दूसरी भावना से भी इस त्यौहार को मुख्यता दी जाती है। चम्बा जिला का भू-भाग दो हजार फुट से 21 हजार फुट तक समुद्रतल से ऊंचा है। फसल पकने लगती है और बोई जाने के लिए भूमि तैयार करनी पड़ती है, विशेष कर एक फसली, इसलिये दो तीन माह की कार्य व्यस्तता हो जाने एवं इतने दिनों में जीवन में कुछ भी हो जाने के भय से विस्सू के दिनों में बहनों बेटियों को बुलाकर खाना खिलाने एवं मिल जुल कर खुशियां मना लेने की परम्परा प्रचलित हो गई है। बसौ का अर्थ तो बसना है पर इस कहानी में एक बहन की दर्द भरी दास्तान है कि कैसे अपनी मां और सास द्वारा उसे दुःखी किया जाता है वह पिन्दडी के गीतों में नजर आती है। वैशाखी का त्यौहार पूरे देश में ही अलग-अलग तरीके से मनाया जाता है चम्बा

की बैशाखी में जहां खुशियां है वहीं विवाहित बहनों की दर्द भरी दास्तान है, जिला चम्बा जो ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों और बर्फ भरी पहाड़ियों से घिरा है। यहां का प्राकृतिक सौदर्य कवियों की कल्पना से भी ऊंचा है। चम्बा की भटियात तहसील हो या चुराह व पागी, भरमौर, चम्बा नगर हो या भांदल किहार सभी जगह समय-समय पर मौसम बदलने के साथ ही मेले त्यौहार आरम्भ हो जाते हैं। वहीं न जाने कहां से गीतों के बोल फूट पड़ते हैं जो जाने अनजाने सभी बच्चों बूढ़ों, नौजवानों, युवतियों के ओंठों पर आ जाते हैं। गीत क्या होते हैं, बस सभी उन दिनों गुनगुना उठते हैं। समय बीत जाता है और गीतों के स्वर बदल जाते हैं, भाव बदल जाते हैं।

बसौ, बसौआ, बिसु, वैशाखी ऐसा ही एक त्यौहार है जो हर जगह मनाया जाता है। गद्दी लोगों में वैशाखी के त्यौहार को बसौ के रूप में मनाया जाता है। गद्दी लोग चम्बा के भरमौर क्षेत्र में रहते है, जहां भारी सर्दी पड़ती है। लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़-बकरी पालन ही है। यह घुमन्तु प्रकृति के लोग सर्दियों में घास और हरी-भरी चारागाहों की तलाश में निचले मैदानी क्षेत्रों में चले जाते हैं। गर्मियां शुरू होते ही अपने घरों को लौट आते हैं। अधिकतर गद्दी लोग बैशाखी का त्यौहार अपने घरों में आकर ही मनाते हैं। इन दिनों यह घरों की सफाई कर सारे घर के अन्दर बाहर मिट्टी, सफेदी और मकोल फेरते हैं, काले या लाल रंग की मिट्टी से घर की दीवारों पर चित्रकारी करते हैं।

बसौ में जिसका सबसे ज्यादा महत्व है वह विशेष उपहार है 'पिंदडी' और पिंदडी का नाम लेते ही हर भाई, बहन, मां-बाप के दिल में जहां एक हूक सी उठती है, वे भावनात्मक रूप से एक दूसरे की याद में खो जाते हैं। पिंदडी का नाम लेते ही बसी या बसौआ की याद आ जाती है। इसके बिना त्यौहार का मानना ही बेकार समझा जाता है। 'पिंदडी' की प्रतीक्षा विवाहिता बहनें, सगे-संबंधी, मित्र सभी करते हैं। जबकि 'पिंदडी' कोदरे के आटे की पिन्नियां ही होती हैं, फिर भी भावनात्मक उपहार की पूर्ति बहुमूल्य उपहार भी नहीं कर सकते हैं। बसौआ से कुछ दिन पूर्व कोदरे को घराटों पर पिसवाया जाता है। बसौ से दो-तीन दिन पहले एक पतीले या कढ़ाई में पानी को उबाला जाता है। उसमें कोदरे के आटे को डालकर घोला जाता है और पकने दिया जाता है। उसे परात या लकड़ी की विशेष परात में थोड़ा सा गेहूं का आटा डालकर गूंथ लिया जाता है। इसके बाद ऐरा पौधे की पतियां उसमें मिलाई जाती हैं, यदि ऐरा न मिले तो कैथ या अखरोट की पतियों का भी उपयोग किया जाता है। कोदरे के आटे की गोल-गोल पर पिचकी-सी पिन्नियां बनाते जाते हैं। बाद में उन्हें एक टोकरी में सजा कर रख दिया जाता है। जब सब पिन्नियां बन जाती हैं तो बड़ी-बड़ी पिन्नियां राजा व रानी के लिए बनाई जाती हैं। टोकरी जब पूर्णतया भर जाती है तो उस पर थोड़ी छाछ फेंकी जाती है तदुपरान्त टोकरी को पत्तों से ढक दिया जाता है। बसौ वाले दिन तक पिन्नियां सफेद सी हो जाती हैं। इन्हीं पिन्नियों को पिंदड़ी की संज्ञा दी गई है। बांटने और खाने से पहले इन्हें पितरों को भोग के रूप में चढ़ाया जाता है। बाद में उपहार स्वरूप बांटा जाता है। पिंदड़ी को शहद, दूध व गुड़ में घोलकर खाया जाता है। बसौ के सुअवसर पर और भी कई पकवान बनाए जाते हैं। इस दिन परिवार के सदस्य एकत्रित होकर बैठते हैं और ऐसे में एक दर्द भरा गीत स्वयं ही सभी के स्वरों से निकल पड़ता है जिसे घुरैही के नाम से जाना जाता है। गीत का संबंध बहिनों से है, जिनकी शादी हो चुकी है और बसौ का त्यौहार आ जाता है। उन्हें अपने मायके की याद आती है, मायके से कोई बुलावा नहीं आता, बहन छटपटाती है– अपने मन की तड़प और वेदना को वह ऊंचे आसमान पर उड़ने वाली चिड़ियों को जब गा-गाकर कहती है, तो सुनने वालों के दिल रो उठते हैं।

ससुराल में एक तरफ वह अपनी सास के तानों और जुल्मों का शिकार होती है, उसका मन अत्यन्त ही उदास है। उसे प्रतीक्षा रहती है कि बसौ पर उसे उसके माता-पिता या भाई की तरफ से बुलावा अवश्य आयेगा, तब वह जाकर अपने ससुराल का दुखड़ा अपने माता-पिता या भाई से कहेगी। जब बुलावा नहीं आता है तो वह कितनी दुःखी होती है और उसका दुःखी मन गा उठता है– *वसन्दु ता फुल्ले माये घामी घूमें रित आइया सुंधढ़ौणी हो/ अम्मा ता मेरीये कुण त्यौहार आया हो?*

बसौ का त्यौहार समीप आने पर जब विवाहिता

को याद आती है तो वह माता से पूछती है, बसन्दू नामक सरसों की तरह पीले फूल अपने आप फूल पड़े हैं। यह ऋतु बहुत ही सुहावनी है। माता यह कौन सा त्यौहार आ रहा है तब माता कहती– *'धीये तु मेरीये बसोआ तुहार आया हों'* कि बेटी बसौ का त्यौहार आया है। तब लड़की कहती है– *अम्मा तू मेरिए मेरे बापू जो सादा भेजे हो।* मां उत्तर देती है– *बाप ता तेरा चम्बे चाकरी हो/ एं अप्पू आणा अप्पू जाना हो, बापू ता तेरा वृद्ध सियाणा हो/ अप्पु ईणा वो धीये अप्पू जाणा हो।*

माता अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहती है कि बेटी तेरा पिता तो चम्बा नौकरी करता है तथा बूढ़ा हो चुका है, इसलिए अपने आप ही आना और जाना पड़ेगा। बहन फिर भी निराश नहीं होती वह मां को मनाने का एक प्रयास और करती है और कहती है– *आया बसौआ माए पंजे सते, अम्मा तू भाऊए जो सादा भेजे-* मां अगर बापू नहीं आ सकता, तो तू मेरे भाई को ही भेज दे– पर माता उतर देती है– *भाऊआ ता तेरा धीये निक्का याणा, अप्पू आना जप्पू जाना हो। तेरा भाई तो अभी छोटा बच्चा है, वह नहीं आ सकता स्वयं आना और स्वंय जाना।*

तब लड़की के मन में निराशा और विद्रोह की भावना भड़क उठती है– वह गा उठती है– *भेजना ता भेजी दीएं न ता, चिडी वरहेडी वणी इल्ली हो-*

मां तूने किसी को भी बुलाने नहीं भेजा तो मैं बरहेड़ी नामक जंगली चिड़ियां बनकर आ जाऊंगी। अपने ससुराल में वह कितनी उदास है, यह उसकी भावनाएं ही बता रही हैं। मां उसके दर्द को समझ नहीं रही है या मजबूर है, तब उसका मन और विद्रोह कर उठता है, वह अब अपनी सास से ही विनय कर कहती है– *सवना दी नुआं सासो पियोके जांदी हो*

मिन्जो वी पियोके दा चाव हो-

सासू सबकी नुहें मायके जाती हैं, मुझे भी मायके जाने का चाव है, पर निष्ठुर सास तो पहले ही उसे तंग करती है, कहती है– *सवना दे सादे नुएं आई पुज्जे तेरा सादा न कोई हो।* सास कहती है कि गांव में सबके बुलावे आए हैं, तेरा तो कोई बुलावा नहीं आया, तुझे कैसे मायके भेजूं। इस प्रकार सास और अधिक ताने उसे मारती हैं।

तभी उसका भाई पिंदड़ी का उपहार और दूसरा सामान लेकर आ जाता है। भाई पिंदड़ी को अपने रिवाज अनुसार घर में बड़ी होने पर बहिन की सास को सौंपता है और सास सारी पिंदड़ी को स्वयं खा जाती है। वह अपनी बहू को जरा सी पिंदड़ी भी नहीं देती। बहिन को एक तरफ प्रसन्नता होती है, उसका भाई आया है। दूसरी ओर दुःखी है कि सास ने उसे पिंदड़ी चखने को भी नहीं दी। वह अपने भाई से कहती है– *चले ता भाईआ बिहया बांथे/ सुरहाड़ी रा दुःख सुख लांदे हो।*

भाई-चलो उधर बरामदे में बैठते हैं और ससुराल का दुःख-सुख सुनाती हूं। तब वह अपने भाई को सास की बातें सुनाती है, बहिन कहती है– *पिंदड़ी ता पिंदड़ी भाईया, अप्पू खाये/ ऐरे दे पठ्ठे मिंजो दिते हो-*

भाई पिदड़ी को तो सास स्वयं खा गई और केवल ऐरे के पते मुझे दिए हैं–

आगे रो-रोकर कहती है– *अप्पू तो खाए भाईया घिऊए-चुरे, छाई दी छेड़ी मिन्जो दिति हो-*

अपने आप तो घी में चूर कर पिंदड़ी खाई जो छाछ बची वह मुझे दे दी। बहन दिल खोलकर ससुराल की सारी बातें अपने भाई को बताती है– भाई दुःखी होता है। वह कहती है कि इतनी बातें ही आपसे कर सकती हूं। अगर मां सामने होती तो और भी अधिक बातें होती। जब भाई वापस घर जाता है तो अपनी मां को बताता है कि बहन के ससुराल वाले बड़े सख्त हैं और बहिन वहां बड़ी तंग है वहां परदेस में उसका दुःख सुनने वाला भी कोई नहीं है– वह कहता है– *धीयां न दीणी लोको नदी पारे हो, अपणा न मिलदा बैरी कोई हो-*

अपनी बहन की दशा को देखकर सुझाव देता है कि बहनों की शादी कभी भी नदी पार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वहां पर अपना कहने वाला कोई नहीं होता।

चम्बा में रानी सुनयना के बलिदान के अवसर पर 'सुई मेला' का आयोजन किया जाता है जिसमें केवल औरतें ही भाग लेती हैं। गद्दी महिलाएं घुरैही नृत्य करती हैं। रानी के बलिदान की कहानी को दर्द भरे स्वर में गाती हैं। नगरपालिका चम्बा की ओर से एक बालिका को नये वस्त्र पहनाकर तीन दिनों तक विशिष्ट अतिथि के रूप में माना जाता है। इन दिनों में घर-घर रानी के

बलिदान की कहानी को गाया जाता है–वहीं पिंदड़ी की व्यथा कथा को भी गाया जाता है जिसमें शहर, गांव, नदी, पहाड़ सभी गा उठते हैं–

पिंदड़ी-ता पिंदड़ी भाईया अप्पू खाए/ गुड़े दा गड़ाणी देई भेजे हो- / हो गुड़े दा गुड़ाणी देई भेजे हो- /मरी यो जाणा भाऊआ भाली भाली / पिंदड़ी पुजाणा तू भी आया हो-/पिंदड़ी पुजाणा तू नही आया हो-

इस प्रकार लड़कियों की विविध भावनाओं से भरा बिस्सू प्रतिवर्ष आया करता है चम्बा में। वैसे तो भारत में समय-समय पर अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि उत्सव पर्व, त्योहार और मेले मनाए जाते हैं, परस्पर आदान-प्रदान, खान-पान, मौज-बहार होती है परन्तु चम्बा में बिस्सू, मिंजर, दीपावली, लोहड़ी चार ऐसे दिन हैं जब धियाणों (बहनों, बेटियों) को बड़े प्यार और सम्मानपूर्वक अवश्य बुलाया जाता है और तत्कालीन ऋतु के अनुसार भोज्य दिया जाता है कभी पिंदडी, कभी तली हुई रोटी (बवरू) तो कभी घी खिचड़ी।

इस प्रकार वैशाखी उत्सव मनाने की चम्बा परम्परा में जहां पौराणिक पृष्ठभूमि, प्राचीन भारतीय संस्कृति का उदात भाव– सर्वे भवन्तु सुखिनः का समावेश है वहां आधुनिक सामाजिक परिवेश में पारिवारिक बंटवारे के नाम पर भाई-बहन अथवा मां बाप और बेटी के बीच जो कलह व्यापक हो रही है उसका इन पारस्परिक स्नेह सूत्रों में गूंथे सम्बन्धों में कदाचित भी प्रवेश नहीं हो पाता। इस प्रकार यह परम्परा आधुनिक वैमनस्य के कुहरे को समाप्त कर प्यार और स्नेह का संदेश दे रही है।

❑❑

डी. आर. गुलेरिया निवास
विजयनगर, बी. सी. एस. के पास
न्यू शिमला (हि.प्र.)-171009
अणु डाक- sharmaanand786@gmail.com
मो. 70183-42787

... अध्यक्षीय (पृष्ठ 4 का शेषांश)

'साइंस एण्ड कॉन्शसनेस' पर एक दो-दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई है, आगे भी इस तरह की संगोष्ठियां आयोजित की जाएंगी।

लोक-संस्कृति— हम महानगर के प्रवासी लोग अपनी लोक संस्कृति से दूर हटते जा रहे हैं। मंच पर लोकगीतों की सीमित प्रस्तुति सुनने मात्र से हम लोक संस्कृति से पूरे परिचित नहीं हो पा रहे हैं। अतः लोकगीतों और लोकगाथाओं आदि पर सामग्री एकत्रित करने का प्रयास हो रहा है जो हमारी ई-लाइब्रेरी और पुस्तकालय में भी सुरक्षित रहेगी। प्रबुद्ध विद्वान एवं जिज्ञासु इसका लाभ ले सकेंगे।

पुस्तकालय— पठन की अभिरुचि के विस्तार की गतिविधि के अंतर्गत बीकानेर और कोलकाता में पुस्तकालय स्थापित किए गए थे जो काफी समय से चल रहे हैं। समय-समय पर इन पुस्तकालयों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाशित विभिन्न पुस्तकों को मंगवाकर पुस्तकालय को समृद्ध किया जाता है। यद्यपि आज भले कम ही लोग पुस्तकालय में जाते हैं, लेकिन संदर्भ हेतु ये पुस्तकालय महत्वपूर्ण रहेंगे। एक विशेष पुष्टिमार्गीय पुस्तकालय बनाने की भी योजना है।

उक्त सभी कार्यक्रमों को पांच केंद्रों– 1. लोक संस्कृति अध्ययन केन्द्र 2. पुराण-इतिहास अध्ययन केन्द्र 3. पुष्टिमार्ग और वल्लभ दर्शन केन्द्र 4. अध्यात्म एवं विज्ञान अध्ययन केन्द्र 5. मानवीय मूल्य और नीतिशास्त्र अध्ययन केन्द्र के रूप में गतिमान बनाए रखने का हमारा प्रयास है। अधिक से अधिक विद्वानों, मनीषियों और समाज के प्रबुद्ध लोगों से सहयोग लेने के लिए हम सचेष्ट रहते हैं। हम चाहते हैं कि हमारा युवावर्ग इन कार्यक्रमों से अधिक सक्रियता से जुड़े। आप सबके सहयोग और प्रेरणा से कार्य आगे बढ़ता रहेगा, इसका मुझे दृढ़ विश्वास है। प्रयागराज महाकुंभ के महान पर्व पर हार्दिक बधाई और नव वर्ष की अग्रिम शुभकामनाएं। आप सब स्वस्थ्य और सानंद रहें, यही प्रभु से प्रार्थना है।

– डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

राजस्थान की सामंती संस्कृति में दवा-दारू

राजेन्द्र केडिया

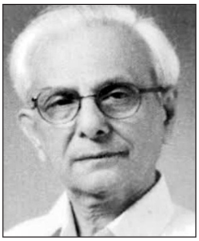

दारू का इतिहास सभ्यता के इतिहास के साथ जुड़ा है। पौराणिक साहित्य में सुरा, सोमरस, वारुणी, पैष्ठी, आसव आदि के उल्लेख हैं। देवगण स्वास्थ्य-सौंदर्य और आनंदवर्धन हेतु सोमरस का पान करते थे, असुर आनंद और उत्तेजना हेतु सुरा-पान करते और मत्त हो जाते थे। ऊर्जा, गर्माहट और आनन्द प्राप्त करने के लिए यूरोप और एशिया के ठंडे मुल्कों में दारू याने शराब आम उपयोग का पेय आज भी है। पाश्चात्य आलेखों से ज्ञात होता है कि मध्यकाल के आरंभ से इटली और लाओडीची की बनी शराब अरब बंदरगाहों को भेजी जाती थी और अरब की खजूरी-शराब हिंदुस्तान के भड़ोंच बंदरगाह पर आती, जहां से बनजारों और व्यापारियों के जरिये उत्तरी भारत के देशी राज्यों में पहुंचायी जाती थी। विदेशी, खासकर इटली की शराब राजा रजवाड़ों की खास पसंद थी। पाणिनी ने भी काबुल और बलूचिस्तान से आने वाली फलों की शराब का उल्लेख किया है। 'बाबरनामा' में उल्लेख है कि बुखारा की चागीर शराब तेज और कड़ियल मानी जाती थी, आग की लपट जैसी लाल रंग की उस दारू को 'शराबे आतशरंग' अथवा 'आतशी' कहा जाता था। गहरे गुलाबी रंग की शराब को 'गुलरंग' कहते। पुरानी शराब का नशा बहुत तेज होता है, उसे 'शराबे कोहना' कहा जाता था। सामंती काल के राजस्थान में दारू का प्रचलन दरबारों और महलों में बढ़ा। इतिहासकार ले. कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है, 'शराब आयात की वस्तुओं में थी, जिससे ज्ञात होता है कि उन दिनों राजपुताना के राजा सामंत दारू के भक्त थे। शुद्ध अंगूर की शराब शीराज, जिसके गीत सुलेमान और हाफिज ने भी गाये, उनकी खास पसंद थी, उसे पानी के जहाजों और जमीन के रास्ते से मंगवाया जाता था'। जेम्स टॉड आगे लिखता है, 'वनवासी लोग महुआ नामक फल एकत्रित करते हैं जिससे व्हिस्की से मिलती जुलती शराब तैयार की जाती है।' महुआ की देशी दारू को 'उतारा-माल' कहा जाता है और देशी दारू पीने को 'उतारा-पीना' कहा जाता है।

दारू फारसी का शब्द है जिसका अर्थ जड़ी-बूटी अथवा दवा है (दवा-दारू)। जड़ी-बूटी, औषधि और सुगंध आदि से मिश्रित शराब को आसव कहते थे जो रोगमुक्ति के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए पी जाती थी। पंजाबी कहावत है, 'बंदा बंदे दा दारू हुंदा एं' अर्थात आदमी ही आदमी की दवा होता है याने उसके काम आता है। संत सम्मन सेऊ की साखी है, 'रोम रोम तन बेधिया, बेदन विषम सरीर, सम्मन दारू तो करूं, एक ठौर हो पीर'। बारूद का भी एक नाम दारू है, तुलसीदास जी दोहावली में लिखते हैं, 'काल तोपची तुषक महि, दारू अनल कराल', कैबत है, 'दारू ना गोळा, तोपची भोळा' और 'बिना दारू सिक्के के फौज अपाहिज होती है।' लोकजीवन में दारू का अर्थ शराब होता है। पंजाबी में दारू को इन्द्रदीधी याने इन्द्र की कन्या कहा जाता है, जिसका आशय आनन्द और गौरव प्रदान करनेवाले पेय से है। प्राचीन

काल में दारू खांड, महुआ, अंगूर (अंगूरी) द्राक्षा, ताड़ के वृक्ष का रस (ताड़ी), मधु (मधुका), काली मिर्च (सैरा) आदि से बनायी जाती थी। राजपुताने में दारू की अपेक्षा अफीम का सेवन अधिक होता था। विदेशी ब्रांडी को 'बिलायती दूध' कहते थे, उसे दवा समझते थे जिसको पीने से जुकाम-खाँसी तथा दिल और दिमाग की परेशानियां दूर हो जाती थीं। 'अरक' या 'रूह' दारू को कहते थे, फारसी भाषा में उसे 'आबे हयात', जामे सलामती, जामे सेहत, 'रूह अफ्ज' आदि नाम से पुकारते हैं। बलख-बुखारे की दारू अंगूरी, उम्दा मानी जाती थी। चमड़े की मशकों में भर कर अथवा आटे से चिपकाये हुए ढकनों वाली मटकी में भर कर लायी जाती थी। 'आईने अकबरी' में लिखा है, 'दोशीन ब-कय मैफरोशां, पैमानए-मै ब-जर खरीदम्, अकनूँ ज-खुमार सरगराम, जर दादम् व दर्दे-सर खरीदम्', अर्थ है रात को शराब बेचने वाले की गली में पैसे से शराब का प्याला खरीदा, अब खुमार से सिर चकरा रहा है, पैसा दिया और सिर का दर्द खरीद लिया। सामंती काल के राजस्थान में अफीम की खेती और व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। कम्पनी सरकार के आने के बाद आबकारी कानूनों की वजह से अफीम की खेती, व्यवसाय और वितरण पर कम्पनी ने अपना एकाधिकार बना लिया।

दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि सन 1613 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इंगलैंड से एक पानी का जहाज सूरत बंदरगाह पर भेजा था, जिसमें नये वर्ष के उपहार स्वरूप देशी राजाओं के लिए कीमती उपहार थे। उद्देश्य भारत में व्यापारिक अनुमति और सहयोग प्राप्त करना था। उन उपहारों में मुगल बादशाह जहांगीर के लिए एक बेशकीमती घड़ी और बेहतरीन शराब की बोतलों से भरी, मखमल से मढ़ी एक खूबसूरत बक्सा भी थी। अंग्रेज हमारे देश में एक हाथ में बाईबिल और दूसरे हाथ में ब्रांडी की बोतल लेकर, पश्चिमी सभ्यता के दूत बनकर आये थे। कलकत्ता-बंबई जैसे बड़े शहरों का धनी-वर्ग, राजपुताना पंजाब आदि रियासतों के राजा-रजवाड़े विलायती स्कॉच व्हिस्की, फ्रेंच वाइन और पर्शिया की उम्दा शराब के मुरीद बन गये। शराब के व्यापार में लाभ के साथ-साथ राजस्व भी प्राप्त होता था, जो अंग्रेजों की व्यापारिक नीति के अनुकूल था। विलायती शराब की देखा-देखी देशी दारू के प्रचलन को भी बढ़ावा मिला, आम लोग सस्ती देशी दारू पीने लगे। बंबई में बनी 'बांबे पंच' तेज शराब अत्यंत तीखी होती थी उसमें धतूरा, सड़ी मछली आदि की मिलावट की जाती थी। उसको पीकर कई बार लोग मौत के मुंह में चले जाते थे। इसी तरह और भी कई प्रकार की देशी शराबें बनती थी। राजा-रजवाड़ों और ठिकानेदारों के घरानों में निजी तौर पर अपनी देशी शराब बनाने और पीने का चलन था, मगर उनके शौक और शराब का स्तर कुछ अलग होता था। घरानों की शान-शौकत और नाम के अनुकूल उनकी शराबें भी उम्दा और महंगी हुआ करती थी। भट्टियों पर भभके से खींचकर नारंगी, केवड़ा सौंफ, गुलाब, दाख और पिस्ते आदि मेवों की नयी-नयी किस्म की बेहतरीन दारू बनायी जाती थी। सामन्ती-वर्ग महंगी दारू का व्यसनी था। उनके ठिकानों में दारू की भट्टियां दिन-रात सुलगती रहती थी, जिनपर नायाब किस्म की दारू कढ़ती रहती थी। पीने वाले शौकीन मदमस्त होकर 'आठ पहर छकिया' बने रहते थे। दारू को कांच के कंटरों अथवा चांदी के छोटे कलशों, तुंगों में भरकर, 'डब्बल मुहर' लगाकर सुरक्षित भंडार में रखा जाता था। खरगोश के ताजा खून जैसे तेज लाल रंग की उदयपुर की 'आशा' दारू और 'गुलाब दारू' विश्व प्रसिद्ध थी। करेहड़ा नामक ठिकाने की 'चरंगट' दारू मशहूर थी जिसको पीते ही ऐसा लगता मानों कानों पर चरंगट (चनपट, थप्पड़) मारी हो। शेखावाटी के महेणसर गांव के दारू बनाने वाले राजस्थान भर में मशहूर थे। किसनगढ़ की 'मनमोहन' को जबान पर रखते ही कलेजे तक झाल पहुंचती थी। बीकानेर की 'केसर-कस्तूरी' और मारवाड़ की 'चौबारा' भी मशहूर थी, जिसके बारे में कहा जाता था कि घूंट पीते ही 'चोटी में डंक लगता है।' मिर्जा गालिब मेरठ कनटोनमेंट की बनी 'ओल्ड टॉम विस्की पीते थे, जो सिर्फ दिल्ली में मिलती थी।' अमल की तरह ही दारू भी मनुहार के साथ समारोह पूर्वक पीयी और पिलायी जाती थी। भट्टी के इर्द-गिर्द दरी बिछाकर लोग बैठ जाते, प्याले में दारू

की 'चखनी' होते-होते मनुहारों का दौर शुरू हो जाता। 'म्हारी सोगन छे, एक और', 'छोटौ सो घूंट', 'पैली आप' जैसे आत्मीयता भरे सत्कार के साथ भुना मांस और कलेजी भी आ जाती। ढोलणें भी पहुंच जाती, कलाली गीत गाने लगती और दोहे देने लगती, 'कै दारू आगरै, कै दारू अजमेर, पीवण वाळौ सायबो, सो रिपियां सेर'। देखते-देखते एक-दूसरे पर रुपये निछावर होने लगते। पीने वालों की आंखों में लाल डोरे खिंच जाते, चेहरा आरक्त हो जाता, दारू के रंग में सुध-बुध खोकर कहने लगते, 'कलाली भर ल्याए, दारूड़ो दाख्यां रो'।

विवाह और पर्व-त्योंहार पर आम घरों में भी दारू पीने-पिलाने का प्रचलन था, पीना शुरू करने के पहले अंगुली से शराब के कुछ छींटे गिलास से नीचे गिराये जाते थे या दीवार पर धार दी जाती, देवार्पण स्वरूप। फिर प्रसन्नचित होकर खुश तबियत से शराब पी जाती थी। शराब अम्लीय द्रव होता है, इसके ज्यादा सेवन से वात, कफ, पित्त, तीनों कुपित होते हैं। ज्यादा शराब पीकर असंयमित व्यवहार करना अनुचित माना जाता था। राजपरिवारों में विशेष अवसरों पर स्त्री-पुरुषों के एक साथ बैठकर दारू पीने का रिवाज था। ऐसे मौकों पर खास शिष्टाचार, तमीज और तहजीब का पालन किया जाता था। शराब पीने-पिलाने की पूरी रस्म बच्चों को बचपन में सिखायी जाती थी। अधिक पीने या मर्यादा के भंग होने का मौका कभी नहीं आता था। महलों में आयोजित महफिलों में रानी साहिबा द्वारा आगंतुकों को शराब बक्शना, खास सम्मान की बात समझी जाती थी। अदब के साथ प्याला लेने और उसे सिर चढ़ाने के कायदे का पूरा ध्यान मेहमानों द्वारा रखा जाता था। दारू के कारण औरतों की मर्यादा में कभी ठेस नहीं लगती थी। उनके सामने कोई पुरुष अनुशासनहीन नहीं होता था और कोई बेअदबी नहीं करता था। सामंतीकाल की महफीलों में दारू से ज्यादा तमीज-तहजीब का नशा होता था। राजपूतों में दारू-मांस भोजन का अभिन्न अंग हुआ करता था। राजपूत महिलाएं विधवा होने के बाद शराब और मांस छोड़ देती थीं। शराब-मांस खाना सौभाग्य की निशानी समझा जाता था इसलिए अक्सर भगवान से वर मांगती थी, 'हे भगवान, म्हारा दारू-मांस अमर कर दीजो।' 'खीची गंगेवनीबात' में दारू पीने का रोचक वर्णन मिलता है, 'तठा उपरायंत दारूरा घड़ा मगायजै छै, सू दारू किण भांतरो छै? अैराकरो वैराक संदलोरो कंदली फूलरो अर बाती बझैधु वाधोर तिवारारो काढियो, बोदी बाड़में नाखिया जग उठै, बापरो पियो बेटो छिके, असवाररो पियो प्यादो छिकै, राजा पीवै परजा छिकै, इण भांतरो पहलड़ो तोडरो धातो, सू दारू केसरिया गुलाबियारां दाव दीजै छै, या मूनहारा हुवे छै मतवाळा हुयजै छै, उपरा उण भतरां सूळांरो थाल बीच में लाया छै, मोछण-ठुंगार हुय रह्यो छै, चोळबोळां हुयजे छै।'

भट्टियों से दारू निकालने का धन्धा और कारोबार कलालों अर्थात कलाल जाति के लोगों के हाथ में था जो उस समय काफी पैसेवाले और प्रभावशाली समझे जाते थे। सामन्त और सम्पन्न लोग भी उनके घरों में बैठकर शराब पीया करते थे। सुराही से दारू को प्याले में डालकर, पिलाने काम उनकी औरतें और दासियां किया करती थी, साथ ही प्रीतिकर बातों और हाव-भाव से उनको आनन्द भी पहुंचाती थी। 'कूजां दारू ले'र कर, सहीयां घेर सुजांण, फेर पयाला पावसां, दे'र गलारी आंण'। कलालिनें सुंदर और चतुर होती थी, दारू पिलाने और पेश करने के बावजूद वे अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को बनाये रखती थी। कई कलालिने इतिहास प्रसिद्ध हुई हैं, जैसे पातूड़ी कलालन, सजना कलालन आदि। उनके नाम से प्रचलित कलाली गीत शराब की महफिलों में गाये जाते थे, कई गीत आज भी लोकप्रिय हैं। कलालों के गांव के नाम पर 'टूंक और टोडा' लोकगीत भी बहुत जनप्रिय है। राजस्थानी लोकगीतों का 'मदछकिया मारू' दूसरा कोई नहीं, दारू पीकर छका हुआ वीर प्रेमी है, 'छलबलियो घोड़ो भलो, अलबलियो असवार, मदछकियो मारू भलो, मरवण नखरेदार।

छबीला घोड़ा और उसपर अलबेला सरदार अच्छा लगता है, वैसे ही मद-छका प्रेमी और नखराली प्रेमिका अच्छी लगती है। लोकवार्ता 'मयाराम दरजी' का प्रसंग है, जिसमें कलालिन 'मालकी दासी' नायक से कहती है, 'ऐक भटीरे ऊपरै, लागे रुपीया लाख, जकण भटीरो म्यारजी, छैल दुबारो चाख', कि आपके लिए दारू की भट्टी कढायी है जिसमें लाख रुपयों की 'टीप' याने मेवा-

मसाला लगा है, इसका दो प्याला पीकर देखें। इसका जवाब नायक मयाराम देता है 'मो लंकाने मुंदड़ी, अबल बतावै आण, ऐक भटीरै ऊपरै, कोड़ करुं कुरबाण', कि यह तो लंका को मूंदड़ी दिखाने जैसी बात है, हम तो एक भट्टी पर करोड़ कुरबान कर देते हैं। बीते हुए जमाने की कलालिन और कोई नहीं, आज की शराब पिलाने वाली 'साकी' है, जो दारू में चिनगारी की तरह नशा भर देती है। इस आशय की कहावत है, 'दारू पुरानी, दारी नयी।'

राजपूतों की गोठ में दारू और मांस अनिवार्य होता था। बाग-बगीचों में डेरे लगते थे, सींकों पर सुळे, मंसाहारी कवाब सिकते रहते थे और ऊंट की खाल से बने कूंपों में दारू भरी रहती थी, 'दारू मीठो दाख को, सूळा मीठी सिकार, खमायची का बाग में, लखपत उतरियाह, सूळा रहिया साट पे, कूंपां मद भरियाह।' दारू के विषय में कई 'मांड' लोकगीत हैं, जैसे- *'सीसी तौ भक-भक करै, प्यालौ करै पुकार, / हाथ प्यालौ धण खड़ी, पीओ राजकुमार।'/ 'म्हारै दारूड़ी रौ प्यालौ पियो नी औ वादीला म्हारी मनवार रौ'।/ दीसै छाक्या दारूड़ी, झाझू तीखा नैण, मन सूं मोह्या मारूड़ै, इस री माझल रेण'।/ दारूड़ो दाखां रो, पीवणवारो लाखां रो, भर ल्या ए म्हारी सुघड़ कलाली, दारूड़ो दाखां रो, पियो उमराव।'/ मदछकिया महाराज, थाने किण पिलाई दारूड़ी, बोलो नी दारू रा मारू, पूछे थारी मारूड़ी।/ भंवर सा बुलाय दारू पावे ओ, दारू दाखां रो/ अमलां में आछा लागो म्हारा राज,/ पीवो नी दारूड़ी, जाये दासी बाग में और सुण राजनरी बात,/ कदेक महल पधारसी तो मतवालो घणराज,/ पीवो नी दारूड़ी।/*

'पातूड़ी कलाळी' गीत है– *चळिया कंवरसा ढळती मांझल रात, रात ओ कंवरसा थे छो कलाळी अधके से रूप, रूप ओ कलाळी कांई घाल हिवड़ै में पातुड़ी ने ले चालां ओ राज।/ हिवड़ा में राखो कंवरसा घर की नार,/ नार ओ कंवरसा कोई नार पराई ओ झगड़ो मांगसी ओ राज।* इसमें राजा का कुंवर कहता है, 'पातुड़ी, मैं तुम्हे अपने हृदय में समाकर रखूंगा।' पातुड़ी जवाब देती है, 'कुंवर जी, आप हृदय में अपनी पत्नी को रखें। क्योंकि पर-स्त्री के प्रेम की कीमत झगड़े में चुकानी पड़ती है।' दारू के संग प्रेम का रंग मिल जाता है, तब नशा और भी प्रगाढ़ हो जाता है– *मद रो समंदर ढाळ,/ बोतल स्यूं अब के वणै सांवतियो सिरदार, राता नैणां सूं कहै/ लट बिखरी, चितराम सी खड़ी कलाळी आज,/ आंख्यां में अचरज भर्यां, आकळ-बाकळ साज।* बोतल के ऊपर बोतल पीने के बाद लाल नशीली आंखों से पीनेवाला कहता है, अरी कलाली, बोतलों से क्या बनेगा, अब तो तुम दारू का समुंदर ही दे दो। हिरणी सी चकित, बीखरी लटों वाली, कलाली सुनकर ठगी-सी रह जाती है। ऐसे भाव-भरे भिति चित्र राजस्थान के सरदार शहर में उन्नीसवी सदी की बनी एक हवेली पर आज भी मंडे हुए हैं।

पुराने राजस्थानी किस्सों और बातों में भी दारू का उल्लेख है। 'बात भिणाय राजा कर्मसेण' का अंश हे है- *दारू दरपण दूसरो, पी देखो सब कोय,/ घट की तो परघट हुवे, परघट की घट होय।* अर्थ है, मदिरा दूसरा दर्पण है, यदि कोई ना माने तो पीकर देख सकता है। इसका नशा छाने पर मनुष्य के मन की छिपी बातें सहज ही प्रकट हो जाती हैं और दूसरे के मन की छिपी बातों को भी जाना जा सकता है। *नायक पूछे सेठ ने, दारू किसो दलाल,/ एकण प्यालो लेवतां, गिरदां उड़े गुलाल।* एक बनजारे ने दारू बनाने वाले कलाल से पूछा, 'मदिरा कैसी है याने कितनी तेज है। इस पर कलाल कहता है, 'यह इतनी तेज है कि एक प्याला पीते ही चारों ओर गुलाल की गर्द उड़ती दिखाई देती है'। अन्य उल्लेख भी हैं– *दारू में नह दोस, दोस जिको थामें नरां, हुवे कठासूं होस, पेली ज्यादा पी लिंयो।* दारू में कोई दोष नहीं है, दोष तो पीने वाले में है। जिसने पहले से ही पी रखी हो, उसके और पी लेने पर भला सुध-बुध कहां रहती है। और ढोली, ढाढ़ी, आदि खुशामदी लोग, दारू की प्रशंसा में गीत गाकर राजा-सामंतों को दारू के नशे का ऐसा चस्का लगा देते थे, जो लाख उपाय करने पर भी नहीं छूटता था– *दारू पीवो रंग करो, राता राखो नेण, बैरी थारा जळ मरे, सुख पावेला सेण। दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर, दारू पीवो साहिबा, सौ रूपया रो फेर।* दारू मध्ययुगीन राजस्थानी संस्कृति का अभिन्न अंग था। जहां दारू है, वहां सुख और सम्पन्नता भी हो,

तब वह सराहनीय होती है, जैसे कि राजस्थान का शहर बीकानेर। वहां की मिसरी और मिठाइयां, सुंदर सोने के गहने, सम्पन्न सेठ-साहूकारों का समुदाय और कोटा से मंगाये हुए अमल के साथ-साथ, तेज उत्तम श्रेणी की दारू भी मिलती थी– *दारू, अमल, मिठाइयां, सोनो गहणों साह, पांच थोक पृथ्वी सिरे, वाह बीकाणा वाह।* दारू के साथ मांस की जोड़ी और मेल को दर्शाता आसाजी बारहठ का दोहा है– *जंह तरवर तंह मोरिया, जंह सरवर तंह हंस, जंह बाघा तंह भारमली, जहं दारू तंह मंस।* छक कर दारू पीना और मांस खाना भाग्यशाली होने की निशानी मानी जाती थी, *'भरै पत्र भैंसां अजां रत्र भोगै, अछक्कां छकां छाक दारू अरोगै।'* रण-बांकुरे सैनिकों में जोश और उत्साह भरने के लिए बोले जाने वाले दोहों में भी दारू का उल्लेख मिलता है– *देख सहेली मो धणी, अजको बाग उठाय मद प्यालां जिम एकलो, फौजां पीवज जाय। कहा जाता था- जे कोई दारू पीवौ तौ बाघै कोटड़ियै पीयौ जूं पीवज्यौ।* संत कवियों ने भगवान और भक्ति के उपमान स्वरूप दारू और कलाल की कल्पना की है और दोहे रचे हैं। संत चरनदास की वाणी है– *अबधू ऐसी मदिरा पीजै/ बैठि गुफा में यह जग विसरै चंद सूर सम कीजै/ जहां कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल परजारी,/ भरि भरि प्याला देता कुलाली बाढ़ै भक्ति खुमारी।* भक्ति-भाव में तड़पता व्यक्ति भक्ति रूपी रंग का प्याला पीता है और भक्ति में मदहोश हो जाता है– *मतवाला झूमै मद भरिया हो जी, रंग भर प्याला पीवा।*

महापंडित राहुल सांकृत्यायन अपनी किन्नर देश-यात्रा में लिखते हैं कि किन्नौर में खुबानी की तरह का फल चूली और आडू की तरह का फल बेमी प्रचुर मात्रा में होता है, जो मीठा होता है और उसका उपयोग तीर्थ-सेवन यानी दारू बनाने में होता है। किन्नौर की भाषा में तीर्थ का अर्थ सुरा अथवा दारू होता है, सेवन का मतलब भभका से अरक उतारना और भाप बनाकर चुवाना है। वे आगे लिखते हैं कि बेमी के तीर्थ याने बेमी की शराब के सामने अंगूरी मदिरा भी कोई चीज नहीं। पाणिनी ने भी कापिशेयी सुरा याने काबूल की अंगूरी मदिरा को अपने सूत्रों में स्थान दिया है। किन्नौर की लाल, उदुंबर-वर्णा अंगूरी शराब किन्नरी सुरा शिबू भी किसी मायने में कम नहीं। पहाड़ी प्रदेशों में शराब को छांग कहते हैं। सुरा-मदिरा-दारू की व्यापकता को दर्शाते दृष्टांत विश्व भर के प्राचीन-अर्वाचीन लोक-साहित्य में मिलते हैं।

भील, बनजारों आदि आदिवासी जनजातियों में नृत्य और गीत की तरह ही दारू पीना भी जीवन का अंग माना जाता है। दिन भर कड़ी मेहनत के पश्चात शाम को परिवार के स्त्री-पुरुष साथ बैठकर शराब पीते हैं। उत्सव और त्यौहार आदि में दारू के बिना रौनक नहीं आती है। देवी-देवताओं और मृत आत्मा को प्रसन्न करने हेतु भी दारू चढ़ाने का रिवाज है। फल, फूल और अनाज को सड़ा कर दारू बनायी जाती है। महुआ और गुड़ शराब बनाने के मुख्य पदार्थ होते हैं। जनजातियों में शराब के कई नाम हैं– रक, अरक, छंग, घंटी, चुल्लु आदि। चुल्लु हथेली भर माप को कहते हैं, चुल्लु याने थोड़ा-सा, एक पेग जितना। थोड़ी सी शराब पीकर नशे में धुत्त हो जाने के लिए मुहावरा है, चुल्लू में उल्लु हो जाना। कुछ लोग दारू पीकर संयमित नहीं रह पाते हैं, अतः दारू को नागा नशा याने नंगा, मर्यादाहीन नशा भी कहा जाता है, जो छिपाये नहीं छिपता है। रहीम का दोहा है– *खैर, खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान/ रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान।*

नशे के प्रचलन ने जनजातियों की लोक-संस्कृति को नुकसान पहुंचाया है और उनके जीवन-यापन को दुष्कर बना दिया है। कैबत है- 'जींरी दुसमण दारू, बीं ने बीजा दुसमण रौ के काम' याने जिसकी दुश्मन शराब है, उसे दूसरे दुश्मन की जरूरत नहीं है। प्रचलित लोकगीत हैं– *'फूटगो करम मारो फुटगो करम/पती मारो दारू पिये वालो',* और *'बाप दादा बिगड़ गे रे जाती पोत रोग, दारू लार मरती आई आपणीर फोज'* और *'कूं लोटू संसारे रो दड़िया, धणी मारो दारू पीदड़या।'* आदि। दारूखोर पति देर रात घर नहीं लौटता है तब उसकी पत्नी 'किन सौतन बिलमायी' जैसे संशय में डूबी इंतजार करती और दुखी होती रहती है। शराबी की पत्नी के लिए दारू सौतन से भी अधिक बुरी होती है

और इसी कारण दारू त्याग देने का आग्रह करती है– 'दारू छोड़ दे भंवर थारी चाकर रेस्यूं जी'। प्रसिद्ध डोगरी लेखिका पद्मा सचदेव लिखती है कि 'किसी औरत के कहने पर किसी शराबी से वह उम्मीद करना कि यह शराब छोड़ देगा, शराबी को सूफी बनाने जैसा बेअक्ली का सोच होता है।

राजस्थान की नारी परंपराओं में जीती है, भाग्य और भगवान पर भरोसा रखती है, इसलिए गणगौर पूजन के गीत में कुंवारी कन्याएं भी गवरजा से वर मांगती हैं, तब कहती हैं कि दारू पीने वाला वर नहीं चाहिए। 'मोड़ो ऊठै दाळदी, खल्ला घींस्या जाय, सेर डोवै री राबड़ी, सोळा रोटी खाय। मेड्यां बैठ्यो मद पीवै, भायां में सिरदार, इस्यो वर टाळी माता गवरजा, म्हे थांनैं पूजण आय।'

मद के प्रेमियों ने इस पारंपरिक गीत को अपने मन-माफिक बिगाड़ कर पेश किया है– *मेड्यां बैठ्यो मद पीवै लीली केरी असवार, खांगी बांधे पागड़ी मधरी चालै चाल, कड़ मोड़ घोड़ै चढै, चाल निरखतो जाय, इस्यो वर देई माता गवरजा, म्हे थांने पूजण आय। नशा कोई भी हो, पीने के बाद अपना असर दिखाकर रहता है, जिसका अपवाद न राजा होता है न रंक। नसा काढ़ लीवी नसां, नसा किया सब नास। नसा न्हाखिया नरक में, अड़ी नसां में सांस।। और मद पीतां मुजरो करे, इणरो कोण विचार, अकल कहे जी ठाकरां, जाती करू ं जुहार और खरचौ बडौ खराब, आमद सूं करणौ इधक, सब दिन पीण शराब, दुख रौ मारग देवसी। और बुध्ध भ्रष्ट, व्याकुल वचन, तन नहीं पावै पोख, इण दारू में कोण गुण, दाम लगे अर दोख और दारू-परदारा हुहूं है तन-धनरी हांण, नर! सांप्रत देखो नजर नफो और नुकसांण।*

नशा दारू का हो, अफीम का अथवा भांग का, उतरता है तब शरीर को तोड़कर रख देता है, शराब का सेवन करने वाले के दांत धातु-विष के कारण काले होकर असमय झड़ने लगते हैं। रात के मद्यपान की खुमारी को दूर करने वाली, सुबह-सुबह पी जाने वाली मसालेदार शराब को 'शुबही' याने सबेरे का जाम कहा जाता था। दारू के बारे में कहावतें हैं, जिनका भाव है कि शराब सारी बुराइयों की जड़ और बर्बादी का कारण होती है। दारू को इस्लाम में 'आबे-हराम' कहा जाता है। कहा भी गया है कि दारू और दरिद्रता बहनों के समान होती हैं, जहां एक होती है वहां दूसरी भी पहुंच जाती है। हिंदी कहावते हैं 'शराब ख्वार हमेशा ख्वार' (शराबी की हमेशा दुर्दशा रहती है), 'शराब से सब नशे नीचे', 'शराब के शरम क्या?', 'शराब कायथों की छुट्टी में', 'शराबी से दूर भले' 'दरिया नहीं डुबोता, दारू डुबोती है', आदि। बंगला कहावत भी है, 'नेशाते बूक फाटे, कूकूरे मूख चाटे'। शराबी-कबाबी और नशेड़ी पुरुष होते ही गंदे हैं, उनके लिए कहावत है, 'जैसन मोर कंता, वैसन उसका भेस'। नशा विवेक और बुद्धि को हर लेता है। मद्यपान की हानि को पूरा घर-परिवार और देश-समाज भोगता है। मौर्य शासन काल में चाणक्य ने मद्यपान की बुराइयों को देखते हुए, दारू की दुकानों पर स्वादिष्ट मिष्ठान्न आदि अत्यंत सस्ते मूल्य पर विक्रय हेतु रखवा दिये थे, ताकि मद्यपान करने हेतु जाने वाले लोग उनको खायें, उनका पैसा खर्च हो जाये और वे मद्यपान न कर सकें। सम्राट अशोक के काल में भी मद्यपान पर अंकुश लगाने हेतु प्रयत्न किये गये। कहा जाता है कि रियासती काल में राजस्थान का शासक-सामंत वर्ग मदिरा पान में डूबा रहता था। शासकों के नवजात बच्चे को दारू की जन्मघूंटी दी जाती थी। लेकिन कुछ ऐसे शासक, राणा-महाराणा भी हुए हैं, जो मदिरा पान को दुर्व्यसन मानते थे और उसके 'कुफायदे' याने हानि और बुराइयों को समझते थे। मेवाड़ के महाराणा स्वरूप सिंह सन् 1842 में सिंहासन पर बैठे तब उन्होंने मदिरा पान का परित्याग कर सिसोदिया राजपूतों में मद्यपान के विरुद्ध निषेध लागू किया। सन् 1845 में उदयपुर के निकट कैलाशपुरी स्थित एकलिंगजी के मंदिर में उन्होंने मदिरा पान नहीं पीने की शपथ ली और मद्य निषेध हेतु एक शिलालेख भी मंदिर में लगवाया, जिसका संक्षिप्त अनुदित अंश हैं– 'धर्मशास्त्र की दृष्टि से मद्यपान को दोष माना जाता है। इसलिए महाराणा स्वरूप सिंहजी ने कार्तिक शुक्ल 9 संवत् 1902 को एकलिंगजी के चरणों में मद्यपान छोड़ने का संकल्प लिया। अब सिसोदिया की चौबीस शाखाओं में कोई शराब पीयेगा तो उसे महाराणा की सौगंध और करोड़ों

गायों के संहार का पाप लगेगा। यह आदेश महाराणा का अन्न-जल खाने वाले सभी कारिंदों पर भी लागू होता है।' महाभारत के उद्योग पर्व में उल्लेख है, 'दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्, मत्तः प्रमत्त उनमत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः', याने जो लोग धर्म को नहीं जानते उनमें से एक नशे में मत्त भी है। राजस्थानी कहावतों में भी दारू और शराब की हानि एवं बुराइयों को ही प्रधानता से दर्शाया गया है, कहा गया है कि 'चाहे पीवो रत्ती, चाहे पीवो सेर, बालम जी तो डूबग्या जेमे हेर न फेर'। दारू के विषय में लोक कथाएं भी प्रचलित हैं। पुराने गांव का एक ठाकर इलाज किया करता था। उसके पास दो ही दवाएं थी, एक पुरानी दारू और दूसरा गर्म लोहे का दाग लगाना जिससे वह ढोरों का ईलाज किया करता था। गांव की एक बूढ़ी माई अपने पोते को लेकर ठाकर के पास खांसी का इलाज कराने के लिए पहुंची, बोली, 'ठाकरां, खांसी पिण्ड ही नहीं छोड़ती है।' ठाकर ने पुरानी दारू की बोतल निकाली और देने लगा, तब बूढ़ी माई ने पूछा, 'ठाकरां, इस दारू दारू से खांसी खळक चली तो जायेगी क्या? ठाकर बोला, 'पगली, इस दारू से बड़े-बड़े राज्य खळक गये, यह बिचारी खांसी क्या चीज है।'

शराब के लती को शराब ढालने की आवाज से ही सकून मिल जाता है। सुराही से प्याले में शराब ढालते वक्त जो हल्की आवाज निकलती है, उसको 'मिरले कुलकुले मीना' याने आनंद का कहकहा कहते हैं। शराब के बारे में हिंदी मुहावरे हैं, 'जाम से जाम टकराना', 'एक जाम आपके नाम', 'नवी बोतल में पुरानी शराब' आदि। दारू के बारे में राजस्थानी कहावते है– 'दारूड़ी दाखां री, मारूड़ी लाखां री' के साथ दारू पीने के बुरे नतीजे बताने वाली कहावतें बड़ी संख्या में प्रचलित हैं, जैसे–
1. *अंब फळै पतवार सूं मह फळै पत खोय, जिणरो पांणी पीवतां, अकल कठा सूं होय।* आम नये पत्तों सहित फलता है किंतु महुवा फलता है तब उसके पत्ते झड़ जाते हैं, ऐसे महुवे का पानी याने शराब पीनेवाले में भला सद्बुद्धि कहां से आयेगी।

2. *गांठ गिरह सूं मद पीवे लोग कवै मतवाळ।*

3. *थे गिया तो छोडी कठे वत्ती सीखने आया।* शराबी किसी तीर्थ में शराब की आदत छोड़ने के लिए गया, मगर वहां दूसरे नशेड़ियों की संगत में उसको ज्यादा आदत लग गयी। तात्पर्य है कि बुरा व्यसन आसानी से नहीं छूटता है।

4. *दारू तो हाथी ने ई ढ़ाय ले।* दारू के नशे में इतना बल होता है कि वह हाथी को भी पटक देती है।

5. *दारू दोगला पिवे, धूळ खावे, धूम मचावे, ओछे घरां करै वास।*

6. *दारू वाळा रे देवाळो कदे ई नीं मिटे।* शराब पीनेवाले का दारिद्य कभी नहीं मिटता है।

7. *दारू दगाखोर, दाय आवे तो पीयो नीं तो राखौ दूर।* दारू का नशा दगाबाज होता है। शराब सोच समझ कर पीनी चाहिए, उससे दूर रहना चाहिए।

8. *मुंडै लागी दारूड़ी झट माथे चढ़ जाय।* एक बार शराब को मुंह लगा लिया जाये तो उसका नशा माथे पर चढ़कर रहता है।

सहायक ग्रंथ :

1. राजस्थानी कहावत कोश, भागीरथ कानोड़िया एवं गोविन्द शर्मा। **2.** राजस्थानी हिन्दी कहावत कोश, विजय दान देथा। **3.** राजपूताने का इतिहास, डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा (1941)। **4.** राजस्थान की जातियां, बजरंगलाल लोहिया (1954)। **5.** 'चांद' का मारवाड़ी अंक, नवम्बर 1929। **6.** दि पिपुल ऑफ इण्डिया, सर हरबर्ट रिजले (1894)। **7.** बनजारा जाति, समाज और संस्कृति, यशवन्त जाधव 1992। **8.** राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, डॉ. चन्द्रमणि सिंह। **9.** राजस्थानी वात-संगह, मनोहर शर्मा, श्रीलाल नथमल जोशी, 1984। **10.** राजस्थानी रनिवास, महापंडित राहुल सांकृत्यायन। **11.** राजस्थान के रीति रिवाज तथा सांस्कृतिक राजस्थान, रानी लक्ष्मीकुमारी चुंडावत। **12.** भारतीय संस्कृति का मुसलमानों पर प्रभाव, मुहम्मद उमर 1996। **13.** मेरी जीवन यात्रा : राहुल सांकृत्यायन 1994। **14.** दि पेरिप्लस आफ एरीब्रियन सी, डब्लू. एच. शाफ, 1912। **15.** ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया, ले. कर्नल जेम्स टाड, हिंदी अनुवाद 1965, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान।

❐❐

सी.जी. 130, साल्टलेक, सेक्टर-2
कोलकाता-700 091
मो. 9831103037

प्राचीन शेषशायी विष्णु मूर्ति : यह मूर्ति पुष्कर से 9 कि. दूरी पर कानबाय, पुष्कर, जि. अजमेर (राज.) में स्थित है। वन क्षेत्र की एक चट्टान काटकर इसका निर्माण हुआ है। कार्बन डेटिंग गणना के अनुसार इसका काल ईसा पूर्व 2000 वर्ष (4000 वर्ष प्राचीन) है। किन्तु मंदिर के महंत के अनुसार यह 41070 वर्ष प्राचीन है। मूर्ति में विष्णु शेषनाग शय्या पर लेटे हुए हैं एवं लक्ष्मी चरण सेवा कर रही हैं। शेषनाग 9 फणों से छाया किये हुए दर्शाये गये है। इस मंदिर का नाम क्षीरसागर है। महंत के अनुसार इस स्थान पर सप्तऋषियों, रावण, ब्रह्मा एवं विष्णु ने तपस्या की थी। त्रेता युग में राम, सीता एवं लक्ष्मण यहां दो बार आये थे, ऐसी मान्यता है और श्री कृष्ण 7 बार आये थे। इसका संदर्भ पद्म पुराण/हरिवंश पुराण में मिलता है, ऐसा बताया जाता है। त्रेता युग में मूर्ति पूजा का प्रारम्भ इसी स्थान से हुआ बताया जाता है। मान्यता ऐसी भी है कि इस स्थान पर मंत्र जाप करने से 1000 गुणा लाभ मिलता है।

बांधवगढ़ किला : यह किला मध्य प्रदेश की उमरिया तहसील, छिन्दवाड़ा में स्थित है, जो कि आरक्षित वन क्षेत्र के अंदर आता है। ऐसी मान्यता है कि इस किले का निर्माण पांद्रो जाति के गोंड राजा ने 10वीं सदी में कराया था। इसके भीतर के क्षेत्र में खुदाई सन् 1938 में की गई थी। इसके उपरान्त सन् 2022 में खुदाई की गई। इसका नाम नारद पंचरात्र एवं शिव पुराण में आया है, ऐसा कहा जाता है। खुदाई में इन राजाओं के काल से इसे जुड़ा पाया गया- भीमसेन महाराज, महाराज भट्टदेव। यहां प्राप्त शिलालेखों में इन नगरों के नाम उजागर हुए थे-कौशम्बी, मथुरा, पावता, वेजाभराडे, एवं सप्तनायरिका। खुदाई में यहां प्राप्त हुए– 1. गुप्तकाल के दरवाजों के भाग, कालेचूरी (9-11 सदी) के 26 मंदिर। 2. महायान मत से सम्बद्ध बौद्ध गुफायें (2-5वीं सदी)। 3. दो बौद्ध मठ, 4. दो वोटिव (votiv) स्तूप, 46 प्रतिमायें, 24 शिलालेख एवं भग्न मूर्तियां जिनमें विष्णु दशावतार मूर्तियां प्रमुख हैं।

देवी मूर्तियां और शिवलिंग : 1. जबलपुर (म.प्र.) से 13 किमी. दूरी पर 1000 वर्ष प्राचीन त्रिपुरसुन्दरी माता का मंदिर स्थित है, यह मूर्ति खुदाई से प्राप्त हुई थी। इस क्षेत्र में पुरामहत्व की कुछ अन्य वस्तुएं भी प्राप्त हुई थीं। मूर्ति के तीन मुख– महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती हैं। मूर्ति काले पत्थर की है। **2.** मुम्बई के प्राचीन महालक्ष्मी में तीन मूर्तियां हैं, जो देवी के उपरोक्त तीन रूप दर्शाते हैं। **3.** थाणे (महा.) के वज्रेश्वरी में वज्रेश्वरी योगिनी मंदिर मंदागिरि पहाड़ी पर स्थित है, यह मंदिर सन् 1739 में निर्मित हुआ था। यहां तीन मूर्तियां एक साथ रखी हुई हैं। बीच में वज्रेश्वरी (महामाया का अवतार), इनके दाहिनी ओर रेणुकाजी (परशुराम की माता), एवं बाईं ओर काली हैं। सभी मूर्तियों पर सिन्दूर का लेप चढ़ा हुआ है। **4.** कोल्हापुर (महा.) का महालक्ष्मी मंदिर अत्यंत प्रसिद्ध है। ऐसी मान्यता है कि लक्ष्मी, विष्णु से रूठ कर तिरुपति से इस स्थान पर रहने चली आई थीं। इस मंदिर को 7वीं सदी का चालुक्य राजा के काल का माना जाता है। इस मंदिर के भंडार में अकूत सम्पत्ति है जिसमें रुपये, आभूषण, कीमती जवाहरात के अलावा विदेशी

मुद्रा हैं। **5.** श्रीनगर, पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखंड) की धारी देवी के संबंध में मान्यता है कि देवी मूर्ति के मुख का भाव दिन में तीन बार बदलता है। प्रातःकाल में यह बाल भाव, दोपहर में युवा एवं संध्या में प्रौढ़ हो जाता है। जब कभी मूर्ति को दूसरे स्थान पर रखने की चेष्टा की जाती है, कोई अनिष्ट घटता है। वर्तमान में मूर्ति अलकनंदा नदी के बीच मंच पर अवस्थित है। पास ही भैरव देव की मूर्ति रखी हुई है। **6.** (क) त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग तीन भाग में है। जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश माना जाता है। (ख) गदग (कर्ना.) के त्रिकुटेश्वर मंदिर में तीन लिंग आसपास स्थित हैं, बीच का शिव है, उनके दोनों ओर ब्रह्मा एवं विष्णु हैं। मंदिर 800-1000 वर्ष प्राचीन है।

अलख भी प्रकट होता है : सभी का कहना है कि ईश्वर दिखता नहीं है, सच है। किन्तु जो भक्त शुद्ध हृदय एवं प्रभु को पूर्णतया समर्पित होते हैं, उनके अनुभव में आते हैं। **1.** एक बार स्वामी विवेकानन्द रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे। समीप के एक सहयात्री ने अपने सामान में से खाने की अनेक वस्तुएं निकाली और खाने लगा, किन्तु स्वामीजी से खाने को नहीं कहा। दो स्टेशन के बाद जब रेलगाड़ी रुकी, एक व्यक्ति उनके डिब्बे में चढ़ा और स्वामीजी से कहा कि यह टिफिन आपके लिए है। स्वामी जी ने कहा कि आप तो मेरे परिचित नहीं हैं! तब उस व्यक्ति ने बताया– मुझे स्वप्न हुआ था कि इस गाड़ी से एक साधु यात्रा कर रहे हैं, उन्हें भोजन कराओ। इसी आधार पर मैं आपके लिए भोजन लेकर आया हूं।

2. आगर मालवा, उज्जैन (म.प्र.) के अंतर्गत एक तहसील है। वहां के कोर्ट में एक सत्यनिष्ठ वकील जय नारायण काम करते थे। वे झूठे मुकदमे नहीं लड़ते थे। एक बार एक केस बहुत दिनों से लम्बित था, मजिस्ट्रेट ने भी उनसे कहा था कि लगता है इस केस में कुछ कमी रह गई है, जांच कर लेवें। जय नारायण कोर्ट जाने से पहले एक शिव मंदिर में जाया करते थे। अगली पेशी तारीख के दिन भी वे मंदिर गये और केस के कागजात शिव प्रतिमा के सामने रख कर वहीं बैठ गये। कोर्ट का कार्य आरम्भ होने का समय 9.30 बजे प्रातः था। कुछ समय उपरांत पुजारी ने शंख बजाया तो उनकी तन्द्रा टूटी। उन्होंने पुजारी से समय पूछा तो पता चला कि 11.30 बजे हैं। जय नारायण ने कोर्ट पहुंच कर मजिस्ट्रेट से क्षमा याचना की एवं अगली तारीख हेतु अनुरोध किया। मजिस्ट्रेट ने कहा कि– आप कैसी बात कर रहे हैं, आप तो आये थे, केस की सुनवाई भी हुई थी और आप केस जीत गये हैं। इस पर जयनारायण ने कहा कि कृपया वह रजिस्टर मंगवा दें, जिसमें केस खत्म होने पर वकील हस्ताक्षर करता है। रजिस्टर मंगवाया गया और तो देखा कि उसमें उनके हस्ताक्षर दर्ज थे। अब जयनारायण को समझ आ गया कि उनके आराध्य देव ने कोर्ट जाकर केस की पैरवी की थी। इसके उपरांत वह मंदिर पहुंचे और उन्होंने वकील की पोशाक उतारकर मंदिर के बाहर रख दी एवं उसके बाद कोर्ट जाना भी बंद कर दिया। उनके देह त्याग के उपरांत उनकी प्रतिमा कोर्ट परिसर में स्थापित की गई।

3. एक गांव में राम मंदिर के समीप एक राम भक्त केवट रहता था। उसने एक साहूकार से कुछ राशि उधार ली थी, बाद में उसे साहूकार को लौटा दी थी। किन्तु लोभी साहूकार ने कोर्ट में मुकदमा चलाया, कि उसने वह राशि वापस नहीं की थी। कोर्ट में पेशी होने पर मजिस्ट्रेट ने केवट से पूछा कि क्या उसका कोई गवाह है। केवट ने उत्तर दिया कि उसके साक्षी तो रामजी है। अगली पेशी पर साक्षी को गवाही के लिए 'रामजी' के नाम से सम्मन जारी कर दिया गया। सम्मन तामील करने के लिए सम्बद्ध कर्मचारी ने गांव जाकर पूछताछ की, वहां के निवासियों ने बताया कि इस नाम का कोई व्यक्ति गांव में नहीं रहता। मजाक में बताया कि रामजी का एक मंदिर अवश्य है। उस कर्मचारी ने अंत में वह सम्मन राम मंदिर के पुजारी को सौंप दिया। कोर्ट की तारीख वाले दिन उस सम्मन को पुजारी ने मूर्ति के चरणों में रख कर विनती की– प्रभु कोर्ट ने बुलाया है, मैंने तो कोई ऐसा-वैसा काम नहीं किया, आप ही देखना। निर्धारित तारीख पर फटे कपड़े पहने एक व्यक्ति मजिस्ट्रेट के सम्मुख प्रस्तुत हुआ एवं उसने अपना नाम रामजी बताया। केवट से पूछा गया कि क्या वह व्यक्ति रामजी है, केवट ने हां कह दी। रामजी ने ऐसे-ऐसे उत्तर दिये, जो कि मजिस्ट्रेट को विलक्षण लगे। केवट केस जीत गया। बाद में मजिस्ट्रेट ने उक्त रामजी की खोज करवाई,

तो वह नहीं मिला। मजिस्ट्रेट को समझ में आ गया कि वह और कोई नहीं साक्षात प्रभु राम थे। घर पहुंचकर उन्होंने पत्नी को केस के बारे में बताया, उसने कहा कि इसमें दुखी होने की क्या बात है। तब मजिस्ट्रेट ने कहा- दुख इस बात का है कि मेरे सामने रामजी खड़े रहे, जबकि मैं कुर्सी पर बैठा रहा। उन्होंने अपना त्यागपत्र कार्यालय में दे दिया और विरक्त हो वृंदावन धाम चले गये।

4. संत सेन का जन्म सन् 1331 में हुआ था, उन्होंने सहज साधना के उच्च सोपान को प्राप्त किया था। पेशे से नाई थे, बांधवगढ़ के राजा के यहां सेवायें देते थे। एक दिन इष्ट की भक्ति में ऐसे लीन हुए कि समय का भान ही नहीं रहा, इस कारण राजा के यहां नहीं जा सके। उन्हें दुख हुआ। अगले दिन राजा के यहां पहुंचकर क्षमा याचना की कि कल आ नहीं सका। राजा को आश्चर्य हुआ क्योंकि कल तो सेन आया था और उनकी दाढ़ी बनाई थी। राजा ने यह बात सेन को बताई। सेन को समझते देर नहीं लगी कि प्रभु ही उसके भेष में उसका दायित्व पूरा कर गये थे।

प्राचीन दशावतार मंदिर : छठी शताब्दी प्रारम्भ का यह मंदिर देवगढ़, झांसी (बुंदेलखंड) में स्थित है। गुप्त शैली का चौकोर संरचना का यह मंदिर विष्णु को सर्मपित है। इसमें शिव, पार्वती, कार्तिकेय, ब्रह्मा एवं इन्द्र की मूर्तियां भी हैं। मुस्लिम आतंकियों ने इसे तोड़ा था, फिर भी यह मंदिर दर्शनीय स्थिति में है। उत्तर भारत का यह पहला मंदिर था जिसमें शिखर की स्थापना की गई थी। ऊंची प्लिंथ के ऊपर विभिन्न स्तरों पर मूर्तियां उकेरी हुई हैं। इसमें पंच पांडव एवं कुछ कामुक मूर्तियां भी देखने को मिलती हैं। गर्भ गृह के द्वार की चौखट अत्यंत सुसज्जित थी, दोनों ओर गंगा एवं जमुना उकेरी हुई हैं। तीन विशाल रथिका पैनल में पौराणिक कथाएं दर्शायी गई हैं– **1.** गजेंद्र मोक्ष, **2.** नर- नारायन तपस्या, **3.** अनंत विष्णु शयन। मंदिर के सामने चट्टान काटकर एक छोटा जलाशय बनाया गया था, जिसे स्थानीय लोग 'सागर मढ़' कहते हैं। एक विदेशी विद्वान के अनुसार- यह मंदिर हिन्दू ग्रंथ विष्णुधर्मोत्तर पुराण (तृतीय खंड) में वर्णित सर्वतोभद्र शैली के अनुसार बना था।

सरस्वती देवी के प्राचीन मंदिर : 1. शारदा (सरस्वती) पीठ– कश्मीर (वर्तमान पी.ओ.के.) का यह मंदिर एवं इससे सम्बद्ध विश्वविद्यालय अत्यंत प्राचीन था, किन्तु इस समय इसके खंडहर ही शेष हैं। इस विश्वविद्यालय में दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। पौराणिक कथा के अनुसार यह वह स्थान था, जहां पर माता सती का हाथ गिरा था। कश्मीर के निवासियों के लिए तीन मुख्य तीर्थ स्थानों में से यह एक था, दो अन्य हैं मार्तण्ड सूर्य मंदिर एवं अमरनाथ। इस विश्वविद्यालय में उच्च कोटि के आचार्यों को आमंत्रित किया जाता था जैसे कल्हण, आदिशंकराचार्य, वैरोतसना, कुमार जीवा, थोन्नई सम्भोता आदि। इस स्थान की प्राचीनता के संबंध में अनेक मत हैं। कुछ की मान्यता है कि यह कुषाणकाल (30एडी-230एडी) का था। कुछ का कहना है कि इसे राजा ललितादित्य (724-760एडी) ने बनवाया था। क्योंकि इसका स्थापत्य मार्तण्डय सूर्य मंदिर से मिलता-जुलता है, जिसे राजा ललितादित्य ने बनवाया था। कुछ अन्य का मत है कि यह 5000 वर्ष प्राचीन था। कहते हैं आदिशंकराचार्य (780 एडी-820 एडी) ने इस मंदिर का शुद्धिकरण किया था। इस पीठ ने उत्तर भारत में शारदा लिपि के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाई थी। 2. शृंगेरी सरस्वती शक्तिपीठ, कर्नाटक– इस मंदिर की स्थापना आदिशंकराचार्य ने 8वीं शताब्दी में की थी, उन्होंने यहां श्रीयंत्र भी स्थापित किया था। प्रारम्भ में चंदन की मूर्ति थी, 14वीं सदी में विजयनगर के राजा ने पीठ के 12वें शंकराचार्य श्री विद्यारण्य के समय स्वर्ण निर्मित मूर्ति की स्थापना की थी। इस मंदिर में 12 खंभे हैं, हिन्दू माह के अनुसार प्रत्येक माह में केवल निर्दिष्ट खम्भे पर ही सूर्य की किरणें पड़ती हैं, यह क्रम 12 महिने चलता है। बाल्मीकि आश्रम, अम्बाजी (गुज.) में भी ऐसा होता होता है, मंदिर में सीता माता की मूर्ति है। 3. सरस्वती मंदिर, पुष्कर (राज.)– मूर्ति को 7वीं शताब्दी का माना गया है, मंदिर का निर्माण सन् 1687 में हुआ था। सरस्वती मूर्ति के साथ गायत्री देवी की मूर्ति भी है (दोनों ब्रह्माजी की पत्नी हैं)। 4. ज्ञानसरस्वती, बासर, तेलंगाना– यह मंदिर गोदावरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। इसे छठी शताब्दी में 'बिजियालुडु'– राजा नंदगिरी (राजधानी नांदेण) ने

बनवाया था। बाद में आक्रमण के कारण मूर्ति क्षतिग्रस्त हुई थी, 17वीं शताब्दी में नवीन मूर्ति की स्थापना नंदगिरि (नांदेण) के मुखिया/प्रमुख ने की थी। मूर्ति पर हल्दी का लेप लगाया हुआ रहता है। छोटे बच्चों को विद्यारम्भ हेतु उनके अभिवाहक यहां लेकर आते हैं। 5. कोल्लूर मूकाम्बिका (सरस्वती), बिण्डूर, उडिपि, कर्नाटक– मंदिर का निर्माण 8वीं शताब्दी में हुआ था। यहां पर मूकाम्बिका की पंचलौह की मूर्ति थी। आदिशंकराचार्य ने यहां श्रीचक्र की स्थापना की थी। यहां पर एक स्वयंभू लिंग भी था, जिसके बायें भाग में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती का संयुक्त वास था, दायें भाग में त्रिदेव थे, ऐसी मान्यता थी। लिंग का विभाजन करने वाली स्वर्णिम रेखा अभिषेक के समय आस्थावान भक्तों को दिखाई देती थी, ऐसा कहा जाता है। महर्षि कोला ने इस स्थान पर तप किया था, इसलिए इस स्थान को कोल्लूर कहते हैं। 6. पंचीक्काडू दक्षिण मूकाम्बिका सरस्वती, उत्तर परोवूर, केरल, 7. कोथानूर सरस्वती मंदिर, तमिलनाडु, 8. विद्या सरस्वती मंदिर, वारंगल (आ. प्र.), 9. त्रिकुटेश्वर सरस्वती, गदग, कर्नाटक।

❑❑

जितेंद्रनाथ जौहरी, ई-234, सेक्टर-14, हिरनमगरी, उदयपुर, मो. 8003188087

दूसरा लंका दहन

वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड में सीता की खोज में लंका गये हनुमान द्वारा लंका दहन बहुश्रुत है। महर्षि वाल्मीकि ने इसका विस्तृत और रोमांचक वर्णन किया है। अन्त में- लंका को भस्मीभूत करने के बाद हनुमानजी ने समुद्र में अपनी पूँछ की आग बुझाई– लङ्कां समस्तां सम्पीड्य लाङ्गूलाग्नि महाकपिः। निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः वा.रा./सु.का./54/49। (इस प्रकार सारी लंकापुरी को पीड़ा देकर, वानर शिरोमणि महाकपि हनुमान ने उस समय समुद्र के जल में अपनी पूंछ की आग बुझाई)। हनुमानजी के इस अपौरुषेय कार्य की राम सहित सुग्रीव आदि सभी वानर वीरों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

दूसरे लंका दहन का वर्णन युद्धकाण्ड में है। राम के सेनासहित लंका आकर युद्ध आरम्भ करने से पूर्व लगभग एक मास में ही रावण, सीता की खोज में आए हनुमान द्वारा उस भस्मीभूत नगर को कितना-सा सँवार पाया होगा? युद्धकाल में तो जीर्णोद्धार वैसे ही सम्भव नहीं होता? युद्धकाण्ड के 75वें सर्ग में वानरराज सुग्रीव वानरों को आदेश देता है– *यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः। नेदानीमुपनिर्हारं रावणो दातुमर्हति।। ये ये महाबलाः सन्ति लघवश्च प्लवंगमाः। लङ्कामभिपतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवगर्षभाः।।* वा.रा.यु.का./75/2-3। (कुम्भकर्ण मारा गया। राक्षसराज के पुत्रों का भी संहार हो गया। अतः अब रावण लंकापुरी की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसलिये अपनी सेना में जो-जो महाबली और शीघ्रगामी वानर हैं, वे सब के सब मशाल ले-लेकर शीघ्र ही लंकापुरी पर धावा करें)।

बस फिर क्या था। वानर वीर मशालें लेकर लंका में प्रवेश कर, भवनों में आग लगाने लगे– *गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु विविधासु च। प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम्।। तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक तदा। प्रासादाः पर्वताकाराः पतन्ति धरणीतले।। अगरुर्दह्यते तत्र परं चैव सुचन्दनम्। मौक्तिका मणयः स्निग्धा वज्रं चापि प्रवालकम्।। क्षौमं च दह्यते तत्र कौशेयं चापि शोभनम्। आविकं विविधं चौर्णं. काञ्चनं भाण्डमायुधम्।।* यु.का./75/6-9। (वे गोपुरों, अट्टालिकाओं, सड़कों, नाना प्रकार की गलियों और महलों में भी बड़े उत्साह के साथ आग लगाने लगे। वानरों की लगायी हुई वह आग, उस समय सहस्रों घरों को जलाने लगी। पर्वताकार प्रासाद धराशायी होने लगे। कहीं अगुरु जल रहा था तो कहीं पर उत्तम चन्दन। मोती, स्निग्धमणि, हीरे और मूंगे भी दग्ध हो रहे थे। वहां क्षौम भी जलता था और सुन्दर रेशमी वस्त्र भी। भेड़ के रोएं के कम्बल, नाना प्रकार के ऊनी वस्त्र, सोने के आभूषण और अस्त्र-शस्त्र भी जल रहे थे)। *नाना विकृतसंस्थानं वाजिभाण्डपरिच्छदम्। गजग्रैवेयकक्ष्याश्च रथभाण्डांश्च संस्कृतान्।। तनुत्राणि*

च योधानां हस्त्यश्वानां च वर्म च। खड्गा धनूंषि ज्याबाणास्तोमराङ्कशशक्तयः।। रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु। मुक्तामणिविचित्रांश्च समन्ततः।। यु.का./75/10-12। (घोड़ों के गहने, जीन आदि उपकरण जो अनेक प्रकार और विचित्र आकार के थे, दग्ध हो रहे थे। हाथी के गले का आभूषण, उसे कसने के लिए रस्से तथा रथों के उपकरण, जो सुन्दर बने हुए थे, सब के सब आग में जल कर भस्म हो रहे थे। योद्धाओं के कवच, हाथी और घोड़ों के बख्तर, खड्ग, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाण, तोमर, अंकुश, शक्ति, कम्बल, चंवर आदि व व्याघ्र चर्म, कस्तूरी, मोती और मणियों से जटित विचित्र महल तथा नाना प्रकार के अस्त्रसमूह- इन सबको सब ओर फैली हुई आग जला रही थी)।

आगे श्लोक 15 से 30 तक दावानल जैसे उस भीषण अग्निकाण्ड का विस्तृत वर्णन किया गया है। ड्योढ़ियों, परकोटों, द्वारों, उपद्वारों से दुर्गम बने अर्धचन्द्र और पूर्णचन्द्र के आकारों के बने सुदृढ़ भवन, दावाग्नि में दग्ध होते पर्वतों के शिखरों के समान जान पड़ते थे। आग की लपेट में आये हुए कितने ही भवन, इन्द्र के वज्र से मारे हुए महान पर्वतों के शिखरों के समान धराशायी हो रहे थे। वे जलते हुए गगनचुम्बी भवन दूर से ऐसे जान पड़ते थे, मानो हिमालय के शिखर सब ओर से जल रहे हों। वानरों द्वारा आग लगाई लंकापुरी दो ही घड़ी में संसार के घोर संहार के समय दग्ध हुई पृथ्वी के समान प्रतीत होने लगी। आदि-आदि।

रामायण में इस वर्णन की भयावहता का अनुमान ही लगाया जा सकता है। लंका को जलते देख रावण रात्रि में ही युद्ध के लिए निकल पड़ा। वह 84 दिनों के युद्ध में प्रथम रात्रि युद्ध था जिसमें अंगद ने अकम्पन और प्रजंघ का, द्विविद ने शोणिताक्ष का, मैन्द ने यूपाक्ष और सुग्रीव ने कुम्भ का वध किया था महायोद्धा निकुम्भ के भयानक परिघ का प्रहार अपने वक्ष पर झेल कर हनुमान ने उसे मुक्कों से ही मार डाला। मकराक्ष का वध राम ने किया।

दो-दो बार भीषण अग्निकाण्ड झेलने के बाद उस स्वर्ण नगरी में सहेजने के लिए अब क्या रह गया था। सब कुछ तो अग्नि की भीषण लपटों की भेंट चढ़ गया था। रावण वध के बाद विभीषण को मिली लंका विधवा राक्षसियों के क्रन्दनों से कम्पित होते, जले हुए भवनों का समूह मात्र रह गयी थी। इन्द्र की अमरावती और नागों की भोगवती से प्रतिस्पर्धा करती उस स्वर्ण नगरी का वैभव तो इतिहास बन चुका था।

❐❐

डॉ. आनन्द शर्मा, 645, किशोर कुंज,
किशनपोल बाजार, जयपुर-302001
मो. 9462312222

[वाल्मीकीय 'रामायण' में वर्णित इस दूसरे लंका दहन की घटना का अनुकरण बाद में महाभारत-पुराणादि में वर्णित रामकथा और तुलसीकृत 'रामचरितमानस' तथा अन्य किसी रामकथा में भी नहीं किया गया है, क्यों? 'रामायण' में महर्षि वाल्मीकि ने लंका के वैभव का प्रचण्ड वर्णन किया है और उसके एक माह में ही दो बार भस्मीभूत हो जाने पर भी फिर उसका वैसा ही वैभवपूर्ण वर्णन करते हैं और दूसरे लंका दहन से मजबूर हुआ रावण रात्रि में पूर्ववत ठाट-बाट से युद्ध के लिए निकलता है? जबकि इन लंका-दहनों में केवल अशोक वाटिका या प्रमदावन, जहां सीता निरुद्ध थी और विभीषण के भवन के बचे रहने की सूचना दी गई है। युद्ध में इस तरह की आगजनी और रात्रि-युद्ध के प्रसंग महाभारत पुराणादि, संस्कृत-भाषाई साहित्य में नहीं मिलते, इतिहास में भी केवल मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा ऐसी घटनाएं की गई मिलती हैं। **—सम्पादक**]

❖ जब सब जीत का जश्न मना रहे हों तब एक नेता को दूसरों को आगे रखकर पीछे से नेतृत्व करना चाहिए। और जब कोई खतरा हो तब एक नेता को आगे आकर नेतृत्व करना चाहिए। तभी लोग आपके नेतृत्व की प्रशंसा करेंगे। ***- नेल्सन मंडेला***

प्रतिस्वर

महोदय! वैचारिकी के जुलाई-अगस्त 2024 अंक के आवरण-चित्र पर स्वरचित कविता

आ मेघ, आओ मेघा!
आ शीतल छुअन-छुअन।
आ सघन घन घन तन
बरस-बरस श्यामल घन।
नदिया-झरने गाएं गुन-गुन
बादल-राग मेघ मल्हार।
तुम आए प्रियतम से
गाँव गाँव वन उपवन
हरियल हरियल उल्लास।
चुहल करत पवन
खिल-खिला गया तन-मन।

ठिठोली बिखरी गाँव गाँव।
आए तुम प्रिय के संदेश से
अंजुरी भरे पुष्प तेरा अभिनंदन।
......और हां सुन-सुन!
तू शामिल होजा
मेरे आजादी के उत्सव में
फहरादे तिरंगा गगन-गगन।

-उत्कर्ष,
100, गणेशम्, नांगल जैसाबोरा,
बौनाड़ रोड, जयपुर-302012, मो.7851831317
ई-मेल : utkarshkaushik71845

वैचारिकी सितम्बर-अक्टूबर 2024 का सम्पादकीय पढ़ा। वस्तुतः खड़ी बोली खड़ी की गई एक भाषा का रूप है। प्रारंभ में, इस पर मुगलों की दरबारी भाषा का प्रभाव रहा। इसका स्वरूप मुगलों के आगमन से प्रारंभ हुआ जो समय की जरूरत थी। मुगलों के लोक से संप्रेषण स्थापित करने के प्रयासों के दौरान इसका प्रारंभिक रूप सामने आया। यह खड़ी बोली का प्रथम रूप है। इसे कौरवी कह कर एक क्षेत्र विशेष से जोड़ना विचारित है। कौरवी का जो उद्धरण दिया गया वह तथाकथित कौरव क्षेत्र में ही नहीं, सम्पूर्ण मुगल शासित क्षेत्रों में कमोबेश एक-सा रहा है। राजस्थान के ही फतेहपुर सीकर क्षेत्र को ले लो! मुसलमानों में यही बोली रही है। जहां नवाबों का शासन रहा है। यह रूप शेखावाटी (सीकर, झुंझुनूं, चूरू) के संपूर्ण क्षेत्र में (क्यामखानियों को छोड़कर) मुसलमानों में देखा जा सकता है। इस खड़ी बोली में मुगल दरबारी कवियों ने रचनाएं की। खड़ी बोली का द्वितीय रूप स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सामने आया। यह देश के स्वतंत्रता आंदोलन की आवश्यकता का था। यह रूप विभिन्न भारतीय भाषाओं से बना रूप था। हिन्दी का भाषा रूप इसी खड़ी बोली से बना है। हिन्दी का आदिकाल, मध्य काल लिखने की आवश्यकता नहीं थी; हिन्दी का केवल आधुनिक काल है। राजस्थानी साहित्य का इतिहास (तीन जिल्द : आदिकाल, मध्य काल, आधुनिक काल) लेखन में मैने पाया है कि हिन्दी के पास पूर्व के दो काल नही है। राजस्थानी स्वतंत्र भाषा है, उसका रचना काल कैसे ले लोगे? लेकिन इसमें दो मत नहीं कि हिन्दी आज देश को जोड़ने वाली समृद्ध भाषा है। इसमें विपुल साहित्य रचा गया है। विभिन्न भारतीय भाषा क्षेत्रों में भी हिन्दी ने देश को एक भाषा रूप में बांधा है।

—बी एल माली 'अशांत', 3/343, मालवीय नगर,
जयपुर (राजस्थान)

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी. आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक- डॉ. बाबूलाल शर्मा।

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

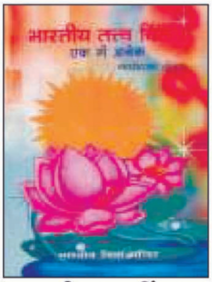

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

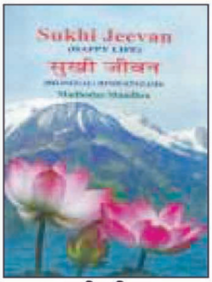

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

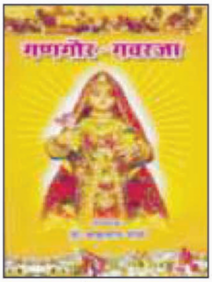

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

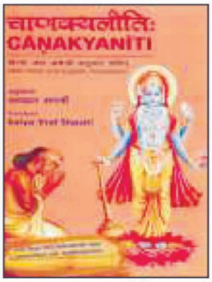

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं.584

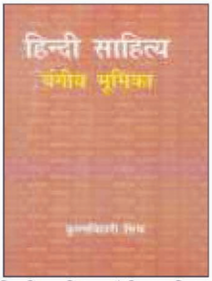

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

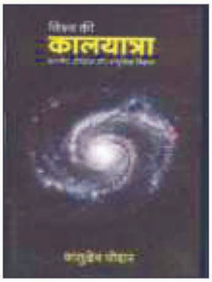

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

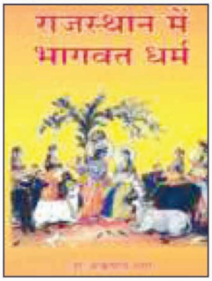

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

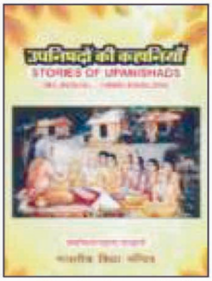

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

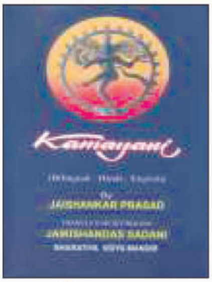

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

एकल श्रीहरि रथ के दाता श्रीमती यमुना देवीजी मूंधड़ा एवं डा. बी. डी. मूंधड़ा के सौजन्य से श्री चैरिटी ट्रस्ट द्वारा ग्रामीण इलाकों में श्रीरामचरित मानस के प्रचार हेतु श्री हरि सत्संग समिति को प्रदान किया गया।

बृन्दावन के प्रमुख कथावाचक स्वामी श्री ऋतेश्वर महाराजजी को माल्यार्पण से अभिनंदन करते हुए डा. बिट्ठलदास मूंधड़ा एवं उनके सहयोगी सचिव श्री शंकरलाल सोमानी परिलक्षित हैं।

एकल श्रीहरि रथ का सनातन विधि से पूजा करते हुए डा. बी. डी. मूंधड़ा, श्री श्रेयस मूंधड़ा, श्री राजीव मूंधड़ा, श्री श्यामजी बागड़ी एवं श्री अम्बरीश दमानी दायीं ओर श्री शंकर सोमानी, श्री विजय दमानी एवं पं. श्री आकाश शर्मा।

डा. बी. डी. मूंधड़ा की प्रेरणा एवं श्री चैरिटी ट्रस्ट के सौजन्य से नागरिक स्वास्थ्य संघ के सहयोग से गंगासागर मेला में प्राथमिक चिकित्सा शिविर का आयोजन शंकरलाल सोमानी के नेतृत्व में किया गया।

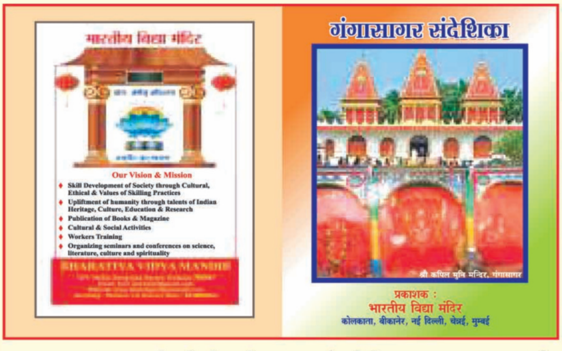

जगत्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठाधीश्वर स्वामी श्री निश्चलानन्द महाराजजी के कर-कमलों से मकर संक्रांति पर्व के अवसर पर गंगासागर मेला में 'गंगासागर संदेशिका' का लोकार्पण किया गया।

जगत्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज का अभिनंदन करते हुए सेवायत श्री शंकरलाल सोमानी एवं दायीं तरफ नाथ संप्रदाय के अघोरी साधु-संतों को गंगासागर शिविर में भोजन कराते हुए।